श्रीमद्-अभयदेवसूरि-ग्रन्थमाला-गुच्छक (३)

द्रव्यानुभव-रत्नाकर ।

कर्त्ता—

प्रातःस्मरणीय-परमयोगीश्वर-जैनधर्माचार्य

श्री १००८

श्रीचिदानन्दजी महाराज ।

॥ प्रथम संस्करण ॥

वीर सम्वत् २४४७ | मूल्य २॥) रूपये । | विक्रम सम्वत् १९७८

प्रकाशक—

कोठारी जमनालाल,

नं० ३, मल्लिक स्ट्रीट,

कलकत्ता।
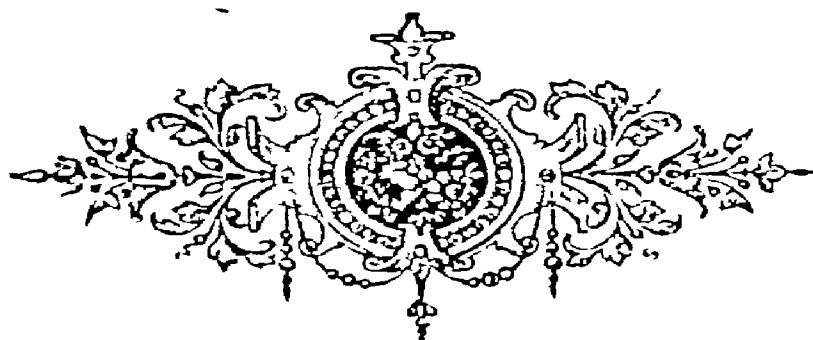
मुद्रक—

डि. एन, दत्त।

ज्ञानोदय प्रेस,

२१ बी, मजदुलाल स्ट्रीट, कलकत्ता।

उपोद्घात ।

यह आनंदका विषय है कि वर्तमानकाल में विद्याकी उन्नतिके साथ ही धार्मिक विषयोंके तरफ भी जन-समुदायकी रुचि होने लगी है। इङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे विद्वान लोगोंके सिवाय साधारण लोगोंमें भी तर्क, वितर्ककी प्रवृत्ति विशेष होती जाती है और विद्वानों को तो तत्व-विचार—पदार्थ-निर्णयके ऊपर विवेक-शक्तिको विशेष काममें लानी पड़ती है, क्योंकि विवेकका लक्षण ही सत्यासत्य-विचार-शीलता है। जब व्यवहारिक विषयोमें भी विवेककी आवश्यकता प्रथम है, तब तत्व-निर्णयमें तो इसकी मुख्य आवश्यकता होनी स्वाभाविक ही है। क्योंकि विवेकी पुरुष ही निष्पक्ष होकर सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यको ग्रहण करता है-और असत्यको छोड़ता है। और यह प्रवृत्ति तब ही होती है कि निर्णयके वख्त यह विचार हृदयमें रक्खे कि 'सच्चा सो मेरा' अर्थात् हेतु-युक्ति की तरफ अपने विचारको ले जावें। ऐसा न करें के 'मेरा सो सच्चा' अर्थात् हेतु-युक्तिको अपने विचारकी तरफ खींचनेकी व्यर्थ कोशिष न करें, क्योंकि ऐसे विचारवालोंको यथार्थ तत्व-ज्ञान होना मुश्किल है।

अब विचार इस बातका करना है कि ऐसा निर्णय करनेका मुख्य साधन क्या है? क्योंकि वर्तमान कालमे हरेक दर्शन.वालोंमें पदार्थके निर्णयमें मत-भेद है। जैन दर्शनमें भी इस पंचम-कालमें केवल-ज्ञानियों, मनपर्ययज्ञानियों, अवधिज्ञानियों और पूर्वधरोंका अभाव है, और यथार्थ सिद्धान्तका रहस्य समझनेवाले महात्माओंका योग मुश्किलसे प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट है कि उसका मुख्य साधन आत्म-तत्वके ग्रन्थ है, जिनसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके पदार्थका निर्णय कर सकते हैं।

ऐसे पदार्थ-विचारके ग्रन्थ प्राकृत-संस्कृत में तो सिद्धान्त, प्रकरणादि अनेक है, परन्तु हिन्दी भाषामें ऐसे ग्रन्थोंका प्रायः अभाव था। इस अभावको दूर करनेके लिये परमपूज्य योगीश्वर जैनधर्माचार्य श्री चिदानंद जी महाराजने यह 'द्रव्यानुभव रत्नाकर' ग्रन्थ स्वानुभव-ज्ञानसे रचकरके जैन समुदायका बड़ा उपकार किया है।

इस ग्रन्थमें छः द्रव्योंका वर्णन इस खूबीसे किया है कि मद-बुद्धि वाला जीव भी सरलता-पूर्वक उसे समझ सकता है और किंचित् विशेष बुद्धिवाला सहज ही समझ कर दूसरोंको बोध करा सक्ता है। प्रारंभमें निश्चय-व्यवहारका स्वरूप समझा कर चारों अनुयोगों पर कारण-कार्य-भाव घटाया है, जिसमें अपेक्षा कारणमें पांच समवायोंका स्वरूप, चार पांच वस्तुओं पर उतारके अच्छी तरह समझाया है। फिर छः द्रव्योंके छः सामान्य स्वभावोंके नाम दिखायकर द्रव्यके लक्षण कहें है। अन्य-दर्शनीकी तरफसे प्रश्न उठाकर प्रमाण और प्रमेयका यथार्थ स्वरूप समझाया गया हैं। इसके पश्चात् छः द्रव्योंका स्वरूप विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है, जिसमें सात नयोंका भी स्वरूप विस्तारसे घता और अन्य-दर्शनके प्रमाणोंका भी स्वरूप दिखाकर उनको युक्ति-सिद्ध करके जैन-दर्शनके प्रमाण सिद्ध किये गये हैं। अंतमें सप्त-ंगीका स्वरूप दिखाकर ८४ लक्ष जीवयोनीका स्वरूप बहुत अच्छी रहसे समझाया है, और आप्तका लक्षण दिखा कर अन्त्य-मंगलाचरणके ाथ यह ग्रन्थ समाप्त किया गिया है।

इस माफिक संक्षेप में इस ग्रन्थका विषय यहां वताया गया है। इसके सिवाय और भी स्व-पर-दर्शनके अनेक ज्ञातव्य विषयोंका भी प्रसंगवश समावेश ग्रन्थकार ने इसमें किया है, जिससे इस ग्रन्थकी उप-योगिता औरभी बढ़ गई है। द्रव्यानुयोगके जिज्ञासुओंके लिए यह ग्रन्थ वास्तव में 'रत्नाकर' ही है यह कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं हैं। यह बात प्रारंभ से अंत तक इस ग्रन्थको पढ़नेसे पाठकोंको स्वयं विदित होगी। इससे इस विषयमें ज्याद. न कह कर एक बार इस ग्रन्थको मनन पूर्वक आद्यन्त पढ़ने का ही मैं पाठकोंको अनुरोध करता हूं।

इस ग्रन्थके प्रकाशन का सम्पूर्ण श्रेय व्याख्यान-वाचस्पति, जङ्गम युगप्रधान, बृहत्खरतरगच्छाचार्य, भट्टारक श्री जिनचारित्रसूरिजी महाराजको है कि जिन्होंने श्रावकोंसे प्रेरणा करके सहायता दिलाकर ग्रन्थ छपाकर प्रसिद्ध करनेका अवसर प्राप्त कराया। करीब २५ बरससे यह ग्रन्थ लिखा हुआ मेरे पास पड़ा था, परन्तु अब उक्त आचार्य महाराजकी कृपासे प्रकट करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थके १७ फोर्म तक भाषाकी अशुद्धि प्रायः रह गई हैं, क्योंकि प्रूफ मुझे ही देखने पड़े थे, और मुझे शुद्धाशुद्धका पूरा ज्ञान न होनेसे यह त्रुटि रह गई हैं सो वाचक वर्ग क्षमा करें। परन्तु जहांसे प्रमाणका स्वरूप चला है वहांसे मेरे मित्र कलकत्ता युनिवर्सिटीके प्राकृत-साहित्य-व्याख्याता, पंडित श्री हरगोविन्द दासजी, न्याय-व्याकारण-तीर्थ ने प्रूफ शुद्ध करनेकी कृपा की है, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

इस ग्रन्थमें जिन जिन महाशयोंने प्रथमसे ग्राहक बनकर सहायता दी हैं उनको मैं धन्यवाद देता हूं। उनके मुबारक नाम इस ग्रन्थमें अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं।

इस जगह मेरे लघु-बंधु श्रीयुत मगनमल कोठारीका नाम विशेष उल्लेख-योग्य है कि जिसने इस ग्रन्थके छपाई-आदिके प्रबंधके लिए प्रथम से आवश्यक रकमको विना सूद देकर अपना हार्दिक धर्म-प्रेम और नैसर्गिक उदारताका परिचय दिया है जिसके लिए वास्तवमे मैं मगरूर हो सकता हूं।

अतमें, मेरे अज्ञान, अनुपयोग या प्रमादके कारण इस ग्रन्थ में जो कुछ त्रुटियां रह गई हों, उनके लिए सज्जन-पाठकोंसे क्षमाकी प्रार्थना करता हूं और आशा करता हूं कि वे इस ग्रन्थको आद्यंत पढ़कर ग्रन्थकारका और मेरा परिश्रम सफल करेंगे।

श्रीसंघका दास—

जमनालाल कोठारी।

॥ परम योगीश्वर जैनधर्माचार्य ॥

॥ श्री१००८श्रीचिदानंदजी महाराज ॥

॥ दीक्षा सम्वत् १८३५
आषाढ शुक्ल २ ॥

देवलोक सम्वत् १८५८
पोष कृष्ण ८ चंद्रवार

Mohila Press, Cal

ग्रन्थकार का जीवनचरित्र ।
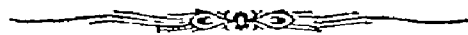
पूर्ण अध्यात्मी योगीश्वर जैनधर्माचार्य श्री श्री १००८ श्री चिदानंदजी महाराज का जीवन चरित्र 'स्याद्वादानुभव रत्नाकर' ग्रन्थमें उन्हों के ही वचनामृत द्वारा लिखा गया है। वह उक्त ग्रथमें छप गया है, तथापि यह जीवन चरित्र आत्मार्थि भव्य जीवों के वास्ते अन्युपयोगी होनेसे इस ग्रन्थमें भी दिया जाता हैं। इन महात्मा के चरित्रसे हरेक आत्म-जिज्ञासुको अपनी आत्माको उन्नत करने का बोध मिलता है। इस कथनकी सत्यता चरित्र पढनेसे ही विदित हो जायगी।

कुछ जिज्ञासुओने श्री महाराजसे पांच प्रश्न किये थे। उन पाचों प्रश्नों के उत्तर स्वरूप 'स्याद्वादानुभव रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना हुई है। उनमें प्रथम प्रश्न यह है कि-"हे स्वामिन्, पहले आपका कौन देश, क्या जाति, और क्या नाम था यह सर्व वृत्तान्त अपनी उत्पत्ति आदिका कहिये? तथा साथ ही यह भी कृपाकर बतलाइये कि किस प्रकारसे आपको वैराग्य उत्पन्न होकर यह गति प्राप्त हुई?

इस प्रश्नका उत्तर उक्त महाराज (ग्रन्थकार) ने जो दिया था, वहो ज्यों का त्यों यहा उद्धृत किया जाता है;—

"भो देवानुप्रिय, प्रथम प्रश्नका उत्तर सुनो कि मैं जिला अलिगढ़ (कोल) व्रज देशमें था। उस कोलके पास एक हरदुवागञ्ज कसवा अर्थात् व्यापारियोंकी मंडी थी। उसमे एक लोहियोंकी जाति अग्रवाल जिसको सम्वत् १७४४ की सालमें गुजराती लोंका गच्छके श्रीपूज्य नगराजजी ने प्रतिवोध करके जैनी श्वेताम्बर बनाये। यती लोगोंके शिथिलाचारी होनेसे वह लोग ढूंढिया (स्थानकवासी) मतमें प्रवृत्त होगये थे। उस लोहियाकी जातिमें गर्ग गोत्रको धारण करनेवाला एक कल्याणदास नाम करके वैश्य उस वस्तीमें प्रसिद्ध और माननीय था। उसकी स्त्री का नाम ललितकुंवरी था, जिसको एक देवकुंवरी नाम कन्या

प्रथम उत्पन्न हुई थी। उसके पश्चात् दो लड़के उत्पन्न हुये, परन्तु वे दोनों अल्प कालही में नष्ट होगये। तव वे पुत्रके लिये अनेक प्रकारके यत्न करने लगे। थोड़े दिन पीछे मैंने उनके घरमें जन्म लिया, परन्तु मैं अनेक प्रकार के रोगोंसे प्रायः दुःखी रहता था। इसलिये मेरे माता पिता कई मिथ्या-देवी-देवतों को पूजने लगे। जो कि इस शरीर का आयुकर्म प्रवल था इस कारण कोई रोग प्रवल नही हुआ। मुझको मागे हुए कपड़े पहनाए जाते थे, इसी कारण मेरा नाम फकीरचन्द रक्खा गया। मेरे पीछे उनको एक पुत्र और हुआ, जिसका नाम अमीरचन्द था। जब मैं कुछ वड़ा हुआ, तो एक पाठशालामें वैठाया गया और कुछ दिनोंमें होशियार होकर अपनी दुकानोंके हानि-लाभ और व्यापार आदिको भली प्रकारसे समझने लगा। स्वामी, सन्यासियों और वैरागियोंके पास अक्सर जाया करता था और गांजा, भांग, तमाखु आदिका व्यसन भी रखता था। गंगास्नान और राम-कृष्णादिकोंके दर्शन करना मेरा नैतिक कर्म था। और हरेक मतकी चर्चा भी किया करता था। एक समय एक सन्यासी मुझको मिला। उस ने कहाकि कुछ दिन पीछे तुम भी साधु हो जाओगे। मैंने यह उत्तर दिया कि मैं वधा हुआ हूं और पैदा करना मुझे याद है, फकीर तो वह वने जो पैदा करना न जाने। इतनी वात सुनकर वह चुप होगया, पर कुछ देर पीछे फिर वोला कि जो होनहार (होनेवाला) है, मिटनेका नही, तुमको तो भीख (भिक्षा) मांग कर खाना ही पड़ेगा। तव तो मुझको उन लोगोंकी संगतिमें कुछ भ्रम पड़ गया। पर जो वात उसने कही थी उसको हृदयमें जमा रख ली। अव ढूंढ़ियो की सङ्गति अधिक करने लगा और इससे जैन मतमें श्रद्धा वधी और मन्दिरके मानने अथवा पूजनेसे चित्त उखड़ गया। थोड़े दिन वितने पर एक रत्न-जी नामके साधु के, जिनको हम विशेष मानते थे, पोते चेले चतुर्भुजजी उस वस्तीमें आये और 'दशवैकालिक' सूत्र वांचने लगे। मैं भी वहां व्याख्यान सुनने जाया करता था। सो एक दिन व्याख्यानमें सुना कि "जिस जगह स्त्रीका चित्र हो वहां साधु नहीं ठहरे, कारण कि उसके देखनेसे विकार जागता है" यह वात सुनकर मैंने अपने चित्तमें

विचार किया कि जो साधुको स्त्रीके देखनेसे विकार पैदा होता है, तो भगवान अर्थात् जिन-प्रतिमाके देखनेसे हमको शक्ति रूप अनुराग पैदा होगा। इतना मन में धारकर फिर ढूंढिये चतुर्भुजजी से चर्चा की, तो उन्होंने भी शास्त्रके अनुसार मूर्ति-पूजा करना गृहस्थिका मुख्य कर्तव्य बताया, और मुझको नियम दिलाया। परन्तु उस देशमें तेरह-पन्थियोंका बहुत चलन था। इस लिये उनके मंदिरमें जाता था और उन्हीकी संगति होने लगी, जिससे तेरह-पंथी दिगम्बरीयोंकी श्रद्धा बैठने लगी। कारण यह कि भगवानने अहिंसा धर्म (अहिंसा परमो धर्मः) कहा है, सो मूर्ति के दर्शन करना तो ठीक है, परन्तु पुष्पादिक चढानेमें हिंसा होती है, ऐसी श्रद्धा हो गई। इसी हालमें सन्यासीका भी कहना मिलने लगा, और बन्धनसे भी छूटने लगा। तब तो मुझको निश्चय हो गया कि मै किसी समयमें साधु हो जाउगा। कुछ दिवस पीछे एक दिन मेरे पिताने मुझे (सादी के विषय में) कुछ कहा सुना, जिसपर मैंने यह कहा कि मुझे तो यथा नाम तथा गुण प्रगट करना है, इसलिये आपकी जाल में नही फसता, मुझे तो फकीर बनना है, फकीरों को इससे क्या मतलब ? उनका कहना न मानकर मैं विदेश (परदेश) को चला गया, और कई महीने तो कानपुरमें रहा, तत्पश्चात् प्रयाग, काशी आदि नगरों में होकर पटने जाकर रहा। कुछ दिन पीछे, पटनेके सदर मुन्सिफ जो दिगम्बरी था, उससे मेरी मुलाकात हो गई। उसके स्नेहसे मैं दो वर्षतक वहां रहा। इसी अरसेमें वे दूसरे शहरको गये तो मैं भी उनके साथ गया, वहां बीस-पन्थियोंका अधिक जोर था सो उनकी संगतसे उनके कुछ शास्त्र भी देखे। उनमेंसे दयानतराय दिगम्बरीकी बनाई हुई पूजन जिससे तेरह-पन्थ की ज्याद प्रवृत्ति हुई। उसमें लिखा था कि भगवत्की केसर, चन्दन, पुष्पादिक अष्ट द्रव्यसे पूजा करना। यह देख कर मेरी श्रद्धा शुद्ध हो गई कि भगवत्का पुष्पादिक से पूजन करना चाहिये। ऐसा तो मेरे चित्तमें जम गया, परन्तु दिगम्बर मतकी कई बातें मेरे चित्तमें नहीं बैठी, जिनका वर्णन तीसरे प्रश्नके उत्तरमें करूंगा।

इसके बाद उन सदर मुन्सिफकी बदली पुर्नियाको होगई, तब मैं भी

वहांसे कलकत्ते चला गया। दो चार महीने निठल्ला बैठे रहनेके पश्चात् बंगाली लोगोंके 'हाउस' में रूई व सोरेकी दलाली करने लगा, और बंगाली लोगोंकी सोहबत पायकर जातिधर्म के सिवाय और धर्मका लेश भी नहीं रहा, कई तरहके आचरण ऐसे हो गये कि मैं वर्णन नहीं कर सकता, कारण कि कर्मो की विचित्र गति है। उन दिनोंमें ही मेरे हाथ एक शोरा रिफाइन करने की कल लगी थी. उसमें दलालोंको रूपया जियादह पैदा होने लगा, जिसका यह प्रभाव हुआ कि बदकामों की तरफ दिल जियादा झुका, सिवाय नरकके कर्म बन्धनके और कुछ न था।

एक दिन रविवार को गोठ करनेको बाहिर गया था, वहां खाना पीना और नशे आदिके पीछे नाच-रंग हो रहा था। उस समय मेरे शुभ कर्म का उदय हुआ, जिससे तत्काल मेरे मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ तो तुरन्त उस रंगमें भंग डाल अपने घर चला आया। दूसरे दिन प्रातःकाल जो कुछ माल असबाब था सो लुटा दिया। फिर जिस बंगाली का मैं काम करता था, उसके पास गया और कहा कि 'मुझसे अब तेरा काम नही होगा, मैंने संसारको छोड दीया, अब मैं साधु बनता हूं, हां, तूने मेरे भरोसे पर यह काम किया था, इस लिये एक दूसरा मातबर दलाल मेरे साथ है सो मैं उससे तुम्हारा सब प्रबन्ध (बन्दोबस्त) करवा देता हूं'। यह सुनकर वह बङ्गाली बहुत सुस्त और लाचार होने लगा। मैं उसको समझाय कर दूसरे दलालके पास लेगया और उसका सब काम दुरुस्त करा दिया।

फिर सम्वत् १९३३ की साल जेठके महीनेमें सायंकाल (शामके) समय कलकत्ते से रवाना हुआ। उस समय जो२ लोग मेरे साथ खाना-पीना, नशा आदिक करते थे, वे सब साथ हो गये। मेरा इरादा पैदल चलनेका था, पर उन लोगोंके जोर डालनेसे बर्द्धवानका टिकट लिया। उसी समय मैंने अपने घरवालोंको चिट्ठी दि की 'मैं अब फकीर हो गया हूं। तुम्हारी जाति कुल सब छोड दिया और जैसा कहना था कर दिखलाया है।' जब मैं साधु हुआ तब एक लोटा जिसमें आध

सेर जल समावे, दो चादर, एक लंगोटा और दो ढाई तोला अफीम, इसके सिवाय कुछ पास नहीं रक्खा, और चित्तमे ऐसा विचार करलिया कि जब तक यह अफीम पास मे है तबतक तो खाउंगा, पश्चात् यह न रहने से और लेकर कदापि न खाउंगा, तमाखु जो पीता था उसी समय छोड़ दी और भाग तथा गाजेके वास्ते यह नियम कर लियो कि कहीं मिल जाय तो पी लेना।

वर्द्धवानमें उतरकर वैरागियोंके साथ माग कर खाने लगा। दो तीन दिन पीछे वह अफीम खोगया, उसी दिनसे खाना वन्द कर दिया। दो तीन दिन पीछे सन्यासियोंके साथ चल दिया, पर यह विचार करता रहा कि कोई मुझे मेरा मत (धर्म) पूछेगा तो क्या वताउंगा। मैंने सोचा कि यती लोग तो परिग्रहधारी और छः काय का आरम्भ करते हैं और ढूंढिये लोग जिन-मन्दिरकी निन्दा करते हैं। इसलिये इन दोनोंका भेष लेना ठीक नहीं, और तीसरे भेदकी हमको खबर नही थी। इसलिये यह विचार किया कि जो कोई पूछे उसे यह कहना कि जैनका भिक्षुक हूं। ऐसा निश्चय करके उनके साथ फिर मकसूदाबाद आया। फिर दो चार दिन पीछे मंदिर की सुनी और दर्शन करनेको गया। और फिर वालुचर बड़ी पोसालमें शिवलालजी यती उस जगहके आदेशी थे उनसे भेट हुई। और उनके पुछने पर अपना सव वृत्तान्त कह दिया, तो उन्होंने यह कहा कि जिस मार्गमें संवेगी लोग पीले कपड़े वाले साधु हैं और उनमे कितने ही पुरुष शास्त्रके अनुसार चलने और पालने वाले हैं, सो उनका सयोग मारवाड या गुजरातमें तुम्हारे वनेगा, परन्तु अव आषाढका महिना आगया, इसलिये चौमासा यहीं कीजिये, वर्षाके पश्चात् आपकी इच्छाके अनुसार स्थान पर आपको वहां पहुचा देंगे। उनके अनुग्रहसे मैंने चार महीने वहा ही निवास किया। सो एक वेर भोजन किया करता, दूसरी वेर गाजा पीनेको वाहर जाता था। यह वात वहाके सव लोग जानते हैं। सिवाय यतिलोगोंके और किसी साधुगण, गृहस्थी, वा शेठ के पास जानेका मेरा प्रयोजन न हुआ, और इसीलिये उन यती लोगो की सोहबतसे शास्त्रकी कई

प्रकार की वातें और रहस्य समझ में आये। चौमासा पूरा होने पर मैंने वहासे चलनेका विचार किया तो शिवलालजी यती वहुत पीछे पड़े कि आप रेलमें वैठकर जाईये, नहीं तो रास्तेमे वहुत परिश्रम भुगना पड़ेगा। पर मैंने उत्तर दिया कि 'मैं पैदल ही जाउगा, क्योंकि एक तो मुझे देशाटन (मुलकोंकी सैर) करना है, और दूसरा यात्रा करनी है, मेरी ऐसी धारणा है कि अन्न और वस्त्र तो गृहस्थीसे लेना, पर किसी भी कामके लिये द्रव्य कदापि न लेना, इसलिये मेरा पैदल जाना ही ठीक होगा, आप इसमे हठ न करीये।'

फिर मैं मकसूदावादसे चला। कर्मोंकी विचित्रतासे वैराग्यकर्म और चित्त चंचल तथा विकारवान् होने लगा, तो मैंने यह प्रण कर लिया कि जव तक मेरी चंचलता न मिटे तव तक नित्य दो मनुष्यको मांस और मछलीका त्याग कराये विना आहार नहीं लेउ। इसी हालतमें शिखरजी तीर्थपर आया, वहां यात्रा की और एक महीने तक रहा। वीस इक्कीस वेर पहाड़के उपर चढकर यात्रा की तथा श्रीपार्श्वनाथजी की टोंक पर अपनी धारना मुजव वृत्ति धारण की। तव पीछे वहांसे आगे चला और ऊपर लिखे नियमानुसार ऐसा नियम करलिया कि जव तक चार आदमियों को मांस और मछलीका त्याग न कराउं तव तक आहार नहीं करूंगा।

इस तरह देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता और नानकपन्थी, कवीर-पन्थी आदि से वाद-विवाद करता गयाजी में पहुंचा। वहांसे राजगिरिमें पहुंचा और पंचपहाड़ की यात्रा की। उस जगह कवीरपन्थी और नानक-पन्थी वहुत थे, जिनमें मिलता हुवा प्रावापुरी में पहुंचा और शासनपति श्रीवर्धमानस्वामीजी की निर्वाण-भूमिके दर्शन किये तो चित्तको वहुत आनन्द हुआ, और इच्छा हुई कि कुछ दिन इस देशमें रहकर ज्ञान प्राप्त करूं।

दो चार दिन पीछे जव मैं विहारमें गया तो ऐसा सुना कि 'राजगिरीमें वहुतसे साधु गुफाओंमे रहते हैं।' इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलूं। ऐसा विचारकर उन पहाड़ोंकी

तरफ रवाना हुआ। फिर दिन में तो राजगिरी में आहारपानी लेता और रातको पाहाड़के उपर चला जाता। सो कई दिन पीछे एक रात्रिमें एक साधूको एक जगह बैठा हुवा देखा। मैं पहले तो दूर बैठा हुआ देखता रहा। थोड़ी देरमें दो चार साधु और भी उनके पास आये। उन लोगोंकी सब बातें जो दूरसे सुनी तो, सिवाय आत्म-विचारके कोई दूसरी बात उनके मुंहसे न निकली, तब मैं भी उनके पास जा बैठा। थोड़ी देरके पश्चात् और तो सब चले गये पर जो पहले बैठा था वही बैठा रहा। मैंने अपना सब वृत्तान्त उससे कहा तो उसने धैर्य दिया और कहने लगा तुम घबराओ मत, जो कुछ कि तुमने किया वह सब अच्छा होगा। उसने हठयोग की सारी रीति मुझे बतलाई, वह मैं पांचमें प्रश्नके उत्तरमे लिखुंगा। 'एक बात उसने यह कही कि जिस रीतिसे बतलाउं उस रीतिसे श्रीपावापुरीमें जो श्री महावीरस्वामीकी निर्वाण-भूमि है वहां जाय कर ध्यान करोगे तो किंचित् मनोरथ सफल होगा, पर हठ मत करना, उस आशयसे चले जावोगे तो कुछ दिनके बाद सब कुछ हो जायगा, और जो तुम इस नवकारको इस रीतिसे करोगे तो चित्तकी चंचलता भी मिट जायगी, और हम लोग जो इस देश में रहते हैं सो यही कारण है कि यह भूमि बड़ी उतम है।' जब मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम जैनके साधु हो? परन्तु लिंग (वेश) तुम्हारे पास नहीं, इसका क्या कारण है? तो वह कहने लगा कि भाई, हमको श्रद्धा तो श्री वीतराग के धर्म की है, परन्तु तुमको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है? जो बात हमने तुमको कह दी है, यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आप ही श्रीवीतराग के धर्मका अनुभव हो जायगा, किन्तु हमारा यही कहना है कि पर-वस्तु का त्याग और स्ववस्तुको ग्रहण करना और किसी भेषधारीकी जालमें न फंसना। इतना कहकर वह वहांसे चला गया। मैं भी वहांसे दिन निकलने पर पाहाड़से नीचे उतरा और आसपासके गांवों में फिरता रहा। पीछे दो तीन महीनेके बाद विहारमें जायकर श्रावकोंसे प्रबन्ध करके पावापुरीमें चौमासा किया। सोवनपाड़े, जो कि पावापुरीका पुजारी था उसकी सहायतासे जिस मालिये (मकान) में 'कपूरचन्दजी'

ने ध्यान किया था, उसीमे मैं भी ध्यान करने लगा। दश दिन तक तो मुझको कुछ भी मालुम न हुआ, और ग्यारहवें दिन जो आनन्द मुझको हुआ सो मैं वर्णन नही कर सकता। मेरे चित्तकी चञ्चलता ऐसे मिट गई जैसे नदीका चढ़ा हुआ पूर एक सङ्ग उतर जाय। उसके बाद ध्यान में विघ्न होने लगे, सो कुछ दिनके बाद ध्यान करना तो कम किया, और "गुरु अवलम्ब विचारत आतम-अनुभव रस छाया जी, पावापुर निर्वाण थानमें नाम चिदानन्द पाया जी॥"

इस नाम को पायकर चौमासेके बाद वहांसे विहार कर घूमता हुआ काशी (बनारस) मे आया और उस जगह की भी यात्रा की तथा उसी जगह रहता था। वहां कुछ दिन पीछे केसरीचन्द गाड़िया जोधपुरवाला मुझे मिला। उसने मुझसे पूछा कि आप किसके शिष्य हो, और आप किधरसे आये? मैंने कहा कि 'मैं श्री शिवजी रामजीका शिष्य हूं' तब उसने कहा कि महाराज, मैं तो श्री शिवजी रामजीके सब शिष्यो से वाकिफ हूं, आप उनके शिष्य कबसे हुए? तब मैंने उत्तर दिया कि भाई, मैं उनकी सूरतसे तो वाकिफ नहीं, परन्तु नामसे गुरू मानता हूं, तब वह जबरदस्तीसे मुझको मारवाड़ में लेगया। फिर उसकी आज्ञा लेकर मैं जयपुर ऊतर गया। वहाँ मुझे श्री सुखसागरजी मिले। आठ दिन वहां रहा, फिर अजमेर होकर नयाशहर पहुंचा, वहां श्री शिवजी रामजी महाराजके दर्शन किये। उस समय मोहनलालजी भी वहां थे। फिर श्री शिवजी रामजीने अजमेर आयकर मुझे फतेमल भड़गतिये की कोठीमें सम्वत् १९३५ के आषाढ़ सुदी २ मङ्गलवारके दिन दीक्षा दी। उस समय जब श्री शिवजी रामजी महाराजने सर्व व्रत उच्चराते समय मुझसे पूछा कि मैं तेरेको सर्व व्रत सामायिक जावजीवका कराता हूं, उस समय बहुत शहरोंके श्रावक श्राविकादि चतुर्विध सघ मौजुद था, जब मैंने कहा कि महाराज साहब, मेरेको इन्द्रियोंके विषय भोगनेका जाव जीवका त्याग है, परन्तु प्रवृत्ति मार्ग अथवा कारण पड़े तो गृहस्थियोंसे कहकर कर्म कराय लेनेका आगार है। इसका वृत्तान्त चोथे प्रश्नके उत्तरमे लिखूंगा। फिर मुझको दिक्षा देकर उन्होंने नयासहरमे चोमासा किया,

परन्तु मेरी और उनकी प्रकृति नहीं मिलनेसे मै अजमेर चला आया। पश्चात् चौमासेके श्री सुखसागरजी महाराज जयपुरसे आये और मैं उनसे मिला। उस वक्त उन्होंने मुझसे कहा कि भाई छः महीनेके भीतर योग नही वहे तो सामायिक-चारित्र गल जाता है। जब मैं उनकी आज्ञा से भगवानसागरजी के साथ नागौर गया और वहां योग-वहन किया, तथा वड़ी दिक्षा ली। उस समय मोहनलालजी मौजूद थे। वड़ी दिक्षाके गुरु मैं श्री सुखसागर जी महाराजको मानता हू। और वहांसे फलोधी जायकर चौमासा किया और उस जगह सारस्वत भी पढ़ी। फिर नागौर में चतुर्मासा किया और उस जगह मैंने चन्द्रिका भी देखी। फिर अजमेरमे आयकर वेद भी पढे और धर्म शास्त्र भी देखे तथा व्याख्यान भी वाचने लगा तथा श्रावकोंका व्यवहार उनको कराने लगा। मैं अनेक स्वामी, सन्यासी, ब्राह्मण लोगोंसे, जो कि विद्वान थे, मिलता रहा और स्वमतके यती वा सम्वेगी लोगोंसे वा ढूंढीये सबसे मिलता रहा। परन्तु उनके आचरण देखे जिसका हाल तो तीसरे वा चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहूंगा, लेकिन यहा कुछ कवित्त कहता हूं॥

चोवे चले छव्वे होन, छवेन की वड़ाई सुन, निश्चयमें दूवे वसे दुवे ही वनावे है। पक्षपात रहित धर्म, भाष्यो सर्वज्ञ आप, सो तो पक्षपात करि, सव धर्मको डुवावे हैं॥ पंचम काल दोष देत, इन्द्रियनकां भोग करे, भीतर न रुचि क्रिया, वाहर दिखलावे हैं। चिदानन्द पक्षपात, देखी अव मुल्क वीच, समझे नहीं जैन नाम, जैनको धरावे है॥ १॥

पांच सात वरस क्रिया, करके उत्कृष्टि आप, वनियोंको वहकाय, फिर माया चारी करत है। मत्र यंत्र हानि लाभ, कहे ताको वहु मान, करे झूठ सुन आये तो आगे लेन जात है॥ शुद्ध परिणति साधु, रञ्जन न कर सके, लोगोंको याते कोई मतलव विन कवहुं पास नहि आवत है। चिदानन्द पक्षपात, देखी इस मुल्क वीच, समझे नही जैन नाम, जैनको धरावे हैं॥ २॥

पञ्चम काल दोप देत, जैणा उन्मत्त भये, थापत अपवाद करे, मौंडेकी कहानीं है। द्विविध धर्म कह्यो, निश्चय व्यवहार लियो, कारण अपवाद

ऐसी प्रभु आप ही बखानी हैं॥ प्रायश्चित करे गुरू, संग शुद्ध होय चित्त, चारित्र धरे श्रद्धा और ज्ञान, यही स्याद्वादकी निशानी है । चिदानन्द सार जिन-आगमको रहस्य यही, आज्ञा विपरीत वोही, नरक की निशानी है ॥ ३ ॥"

यहा तक तो स्वयं महाराज श्री के लिखाये मुजिब जीवन चरित्र संवत् १९५१ को सालमें स्याद्वादानुभव रत्नाकर ग्रन्थमें छपा, उससे लिया गया है। परन्तु इसके पश्चात् जो विषय मेरे अनुभवमें आये हैं उन सबका महाराज साहबको आज्ञा नही होनेसे यहां लिखना योग्य नहीं है। परन्तु मेरा समागम, सम्वत् १९५४ को सालमें जब महाराज साहबका चतुर्मास, परगने जावद, जिलों नीमच, रीयासत गवालियर में था, तब हुआ था, उस समयसे काल धर्मको प्राप्त हुए तकका किञ्चित् वृत्तान्त लिखता हूं—

सम्वत् १९५५ का चातुर्मास कसबा जीरनमें था, वहां करीब १२५ घर जैनियों के हैं जिसमें ११७ घर तो ढूंढ़ियोंके और ८ घर मन्दिर आम्नायके थे। सो महाराज साहेबके उपदेशसे ११० घर वालोंने मन्दिर की श्रद्धा की और वहाँ पर एक प्राचीन जैन मन्दिर बनाकर उसमें सम्वत् १९५५ का माघ शुक्ल १३ को प्रतिष्ठा करके प्रतिमा स्थापन की। उस वखत कई चमत्कार देखनेमें आये थे। तथापि सबसे महत्वकी बात यह हुई कि प्रतिष्ठा के दिन एक हजार अन्दाज मनुष्योंके आनेकी धारणा थी। इसलिये सक्कर मन १० नीमच से, जो कि वहासे पांच कोस है, मंगाई गई थी, क्योंकि जीरनमें विशेष वस्तु नही मिलती, परन्तु सुद १३ को करीब ४५०० स्त्री पुरुष प्रतिष्ठा पर नजदिकके गावों से आगये। इससे जीरणके संघको जीमनके वास्ते सामग्री तैयार कराना असंभव होगया। तब वहाके श्रावकोंने महाराज साहबसे अर्ज करी कि अब तो सामान आ नहीं सकता, इसलिये सघकी लज्जा रखनी आपके हाथ है। इस पर प्रथम तो महाराज साफ इनकार कर गये, तथापि श्रावकोंके विशेष आग्रह करनेसे फरमाया कि कुछ फिकर मत करो। ऐसा कह कर मेरे को वासक्षेप देकर फरमाया कि सामग्रीके स्थानमें विधि

पूर्वक यह वासक्षेप कर दे। उसी मुजब मैंने जाकर वासक्षेप कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि जितने आदमी प्रतिष्ठा-महोत्सव पर आये थे सबको भोजन करा दिया। और जो दश मन शक्करकी सामग्री की गई थी वह भण्डारमे ऐसी ही पड़ी रही। तब महाराज की आज्ञासे दूसरे दिन षड्दर्शनवालों को भोजन कराया गया। यह बात हजारों मनुष्य जो वहा उपस्थित थे, जानकर अत्यन्त आश्चर्यमग्न हुए। यह वृत्तान्त मेरे सन्मुख हुआ इससे लिख दिया है।

बाद महाराज साहब जावरे पधारे वहां चौमासा किया और अनेक भव्य जीवोंको उपदेश देकर प्रतिबोध दिया। कई तीन-थुई के पन्थ-वालो को शुद्ध धर्म मे लाये। फिर वहांसे रतलाम पधारे। वहां शरीरमें असाता-वेदनीय का उदय होनेसे दो चतुर्मास किये। फिर तकलीफ बढ़नेसे सं० १९५९ के मार्गशिर शुक्ल १४ को मेरे पास रतलामसे मेरे एक मित्रका पत्र आया (उस वक्त मैं रियासत उदयपुर दरबार के यहां मुलाजिम था), जिसमें लिखा था कि श्री चिदा-नन्दजी महाराज ने फरमाया है कि, अब हमारा आयु-कर्म बहुत थोड़ा बाकी है, सो तेरेको अवकाश होय तो अवसर देख लेना। इस पत्रके आनेसे मैं श्रीमान् महाराना साहेब से ६ रोजकी छुट्टी लेकर रतलाम गया और श्रीमहाराजके दर्शन कीये। उस बखत मेरे चित्तको जो खेद हुवा उसका वर्णन लेखनी द्वारा नही कर सकता, क्योंकि मेरेको शुद्ध जैनधर्मकी प्राप्ति श्रीमहाराजके ही अनुग्रहसे हुई है। परन्तु कालचक्रके आगे किसीका जोर नहीं चलता। महाराज साहबने मेरेको धैर्य बन्धाया और धर्मोपदेश देकर शान्त किया। मैं पराधीन था इसलिये पीछा उदयपुर चला आया। बादमें महाराज साहबके बिमारीकी वृद्धि होने लगी सो जावरेके श्रावक रतलाम आयकर पालकीमें जावरे ले गये। वहा सम्वत् १९५९ का पोस कृष्ण ६ सोमवार को फजर में १० बजे श्रीचिदानन्द स्वामीका स्वर्गवास हो गया। उसके स्वर्गवास होनेका समाचार उदेपुर आनेसे जो कुछ दुःख मुझे हुवा, वह मेरी आत्मा जानती है। क्योंकि इस पंचमकालमें प्रवृत्ति मार्ग बिगड़ जानेसे

यथार्थ-धर्मका प्राप्त होना बहुत मुशकिल हो गया है। ऐसे समयमें मेरे जैसे अज्ञानीको शुद्ध धर्म प्राप्त होना यह उनकी कृपा का ही फल था। श्रीमहाराजके उपकार को हृदयमें स्मरण करके यथार्थ बात थी सो संक्षेप में लिखी है।

यह तो हुई उनकी निजकी लिखी हुई संक्षिप्त जीवनी और कई एक घटनाएं। इसके सिवाय वही ग्रन्थ (स्याद्वादानुभव रत्नाकर)में जिज्ञासुओं ने अपनी शंकाओं के रूपमें, और उनके समाधानके रूपमें उन्होंने प्रसङ्गोपात्त कई बाते कही हैं जो कि उनकी लघुता, निरभिमानता, सरलता और स्पष्टवादिता आदि गुणोंको प्रकट करनेके साथ साथ उनके जीवनकी पवित्रता पर अच्छा प्रकाश डालती है। इससे उपयुक्त जानकर उन अंशों को उक्त ग्रन्थ से ज्यों का त्यों यहां पर उद्धृत करता हूं,—

"अब मैं तुम्हारे सन्देह को दूर करनेके वास्ते कहता हू कि मैं ३५ की सालमें (विक्रम सम्वत् १९३५ में) पावापुरीको छोड़कर इस देशमे आया हूं। और जो ३५ की सालसे पहिले पावापुरी आदिक मगध देशमें ऊपर लिखे चक्रोंका किञ्चित् अनुभव जो मैंने किया था उस अनुभवसे मेरे चित्तकी शान्ति और मेरा गुण मालुम होता था। सो अब वर्तमान कालमें जैसे मोहरमेंसे घटते २ एक पैसा मात्र रह जाता है, उससे भी न्यून मुझे मेरा गुण मालूम होता है। उसका कारण यह है कि जब मैं उस देशसे इस देशकी शोभा सुनकर यहां आया तब मुझे शास्त्र वांचने पढ़नेका इतना बोध न था, परन्तु किञ्चित् ध्यानादि गुणके होनेसे मैं जो शास्त्रादि-श्रवण करता था उनका रहस्य सुनते ही किञ्चित् प्राप्त हो जाता था। और फिर मैं जिनके पास आया था उनकी प्रकृति न मिलनेसे मुझ पर जो २ उपद्रव हुए हैं सो या तो ज्ञानी जानता है या मेरी आत्मा जानती है। और जो उन भेष-धारियोंके दृष्टिरागी श्रावकोंने मेरे चरित्र भ्रष्ट करनेके वास्ते उपद्रव किये हैं सो ज्ञानी जानता है, मैं लिखा नहीं सकता। और मैंने भी अपने चित्तमें विचारा कि श्री संघ मोटा है और जो मैंने अपने भावसे निष्कपटतया इस कामको किया है तो जिन धर्म मेरी रुचि मुवाफिक मुझको फल देगा। इन

उपद्रवो का वर्णन क्या करूं ? एक दृष्टान्त देकर समझाता हू कि * *
"इन उपद्रवोंसे मेरा पिछला ध्यानादि तो कम होता गया और आर्त-ध्यानादि अधिक होता रहा। आर्त-ध्यान होनेसे मेरी ध्यान आदि पुंजी भी कम होती गई, उससे भी मेरा चित्त विगड़ता गया। क्योंकि देखो—जो जन धन पैदा करता है और उसका धन जव छीज जाता है तव उसको अनेक तरहके विकल्प ऊठते हैं। इसी रीतिसे मेरे चित्तमे भी हमेंशां इन वार्तोका विचार होता रहा कि मैंने जिस कामके लिये घर छोड़ा सो तो होता नही किन्तु आर्त-ध्यान से दुर्गतिका वन्ध-हेतु दीखता है। क्योंकि मै अपने चित्तमें ऐसा विचार करता हू कि मेरी जातिमें आज तक किसीने सिर मुंड़ायकर साधुपना न अङ्गीकार किया और मैंने यह काम किया तो लौकिक अज्ञान दशामें तो लोगोंमें ऐसा जाहिर हुआ कि 'फलानेके वेटे फलाने को रोजगार हाल करना न आया इससे और वहन वेटियोंके लेने देनेके डरसे सिर मुंड़ाकर साधु हो गया'। लोगोंका यह कहना मेरे आत्म-गुण प्रकट न होनेसे ठीक ही दीखता है। क्योंकि देखो किसीने एक शेर कहा है—

"आहके करनेसे, हौल दिल पैदा हुआ।
एक तो इज्जत गई, दूजे न सोदा हुआ।"

ऐसा भी कहते हैं—

"दोनों खोई रे जोगना, मुद्रा और आदेश"

इस रीतिके अनेक ख्याल मेरे दिलमे पैदा होते हैं। और वर्तमान कालमे सिवाय उपद्रवके सहायता देनेवाला नही मिलता * * * * इसी वास्ते मैं कहता हू कि मेरेमें साधुपना नही है।"

"शङ्का—अजी महाराज साहव, इस वातको हमने लिख तो दिया, परन्तु अव हमारा हाथ आगेको नही चलता और हमारे दिलमें ताज्जुव होता है और आपसे अर्ज करते हैं सो आप सुनकर पीछे फरमावेंगे सो लिखेंगे। सो हमारी अर्ज यह है कि आप की वृत्ति लोगोंमें प्रसिद्ध है, और हम प्रत्यक्ष आखोंसे देखते हैं कि आप एक वख्त गृहस्थके घरमें आहार लेने को जाते हो, और पानी भी उसी समय आहारके साथ लाते हो, और

एक पात्र रखते हो उसीमें रोटी, दाल, खीच, साग, पान अर्थात् आहारकी सर्व वस्तु साथ लेते हो, और एक दफे ही आहार करते हो और सिय.ले में ऊनकी एक लौमड़ी से ही शीतकाल काटते हो, क्योंकि चनात, कम्बल, लौंकार, अरंडी आदिका आपको त्याग है। और पुस्तक पन्नाका भी आपको संग्रह नही है अर्थात् वांचनेके सिवाय अपनी निश्रामें (अधीन) नही रखते हो। और प्रायः करके आप वस्ति के वाहर अर्थात् जङ्गल में रहते हो और हर सालमें महीना, दो महीना अथवा चार महोना जिस शहरमे रहते हो उस शहरके तोल (वजन) का एक सेर दूधके सिवाय और कुछ आहारादि नहीं लेते हो। ज़िन दिनोंमें दूध पीते हो उन दिनों भी सातदिनों में एक दिन वोलते हो, और वाकी मौन रहते हो। ऐसे भी महीना, दो महीना, चार महीना तक रहते हो, और मौनमें ध्यान भी करते हो इत्यादि आपकी वृत्ति प्रत्यक्ष देखते हैं, जो प्रायः करके अन्य साधुओंमे नहीं दिखती हैं। फिर आप कहते हो कि "मेरेमें साधुपना नही है" इससे हमको ताज्जुव होता हैं।

'समाधानः—भो देवानुप्रियों, यह जो तुम मेरी वृत्ति देखते हो सो ठीक हैं। परन्तु मैं मेरी शक्ति मुवाफिक जितना वनता हैं उतना करता हूं। परन्तु वीतराग का मार्ग वहुत कठिन है। देखो श्री आनन्दघनजी महाराज १४ वें भगवानके स्तवनमें कहते हैं कि,—

"धार तरवारनी सोहली, दोहली चौदमा जिन तणी चरण सेवा।
धारपर नाचता देख वाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा॥"

ऐसे सत पुरुषोंके वचनको विचारता हूं तो मेरी आत्मामें न देखने से और ऊपर लिखे कारणोंसे तथा नीचे भी लिखता हूं उन वातोंसे मैं अपनेको साधु नही मानता हूं क्योंकि साधुका मार्ग वहुत कठित है। देखो प्रथम तो साधुको अकेला विचरना मना है। श्री उत्तराध्ययनजी में अकेले विचरनेवालेको पाप-श्रमण कहा है और मैं अकेला फिरता हूं। दूसरा, शास्त्रोंमें आदमी सङ्गमें रखने की मनाई है। सो भी पहले तो इस देशमें असेंधा होनेसे आदमी रक्खा था, परन्तु अव भी कभी कभी आदमीको साथ रखना पड़ता है। तीसरा यह है कि गर्म पानी प्रायः करके

साधुओं के निमित्त ही होता है, सो मुझको वही पानी पीना पडता है। कारण यह है कि मैं सदासे अपनी धारणा मुजब व्रत रखता आया हूं। जब मारवाड़ में मैंने जावज्जीवका सामायिक उच्चारण किया, उस समय इन्द्रियोंके विषय भोगने का त्याग किया, परन्तु कारण पड़े तो किसी गृहस्थको अपना कारण बता देना, और जब मैं किसी जगह मौका पड़े अथवा ध्यानादिक करूं तो एक जगहसे ही लायकर दूध पान करूं और अन्नादिक न खाउं, क्योंकि पहले मुझे ध्यानका परिचय था। पांचवां, साधु लोग अन्य मतके ब्राह्मण लोगोंसे विद्या पढ़ते हैं, तो उसको गृहस्थों से द्रव्य दिलाते हैं, ये कोई व्रत में बाकी नही रखते हैं, परन्तु मुझसे जहां तक बना अन्यमतके साधुओंसे पढ़ता रहा कि जिससे धन न दिवाना पड़े, परन्तु अजमेरमें आनेसे किंचित् धन पढ़नेके लिये दिवाना पड़ा। यह पांचमा कारण है।

"इत्यादि अनेक तरहके कारण मुझको दीखते हैं। इसी वास्ते मैं कहता हूं। क्योंकि जिन आज्ञा अपनेसे न पले तो जो वीतरागने मार्ग परूपा है उसको सत्य सत्य कहना और उसकी श्रद्धा यथावत् रखना। जो ऐसा भी इस कालमें बनजाय, और पूरा साधुपना न पले तो भी शुद्ध श्रद्धा होनेसे आगेको जिन धर्म प्राप्त होना सुगम हो जायगा। इसलिये मेरा अभिप्राय था सो कहा, क्योंकि मैं साधु बनूं तो नहीं तिरूंगा किन्तु साधुपना पालूंगा तो तिरूंगा। * * * *

"उपर लिखे कारणोंसे मैं अपनेमें यथावत् साधुपना नहीं मानता हूं, क्योंकि श्रीयशविजयजी महाराज 'अध्यात्मसार'में लिखते हैं कि जो लिंग के रागसे लिंगको न छोड़ सके वह संवेग पक्षमें रहें, निष्कपट होकर जो कोई शुद्ध चरित्रका पालनेवाला, गीतार्थ, आत्मार्थी निष्कपट-क्रिया करता हो, उसकी विनय, वेयावच्च, भक्ति करे। सो मेरे भी चित्तमें यही अभिलाषा रहती है कि जो कोई ऐसा मुनिराज मिले तो मैं उसकी सेवा, टहल, बंदगी करूं, न तु दम्भी कपटियोंके साथ रहनेकी इच्छा है। और जो श्री जिनराजकी आज्ञासे संयुक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका हैं उस चतुर्विध संघका दास हूं। और जिनधर्मके लिङ्गसे मेरा राग

होनेसे मैं अपनी धिठाई करके भाड़ चेष्टासे कुत्तेकी तरह पेट भरता हूं, और मेरेमें साधुपना नही मानता हूं, क्योंकि वीतराग का मार्ग बहुत कठिन है, सो मेरेमें नहीं है। और ऐसा भी नही कहता हूं कि वर्तमान कालमें कोई साधु-साध्वी नहीं है, क्योंकि श्री वीरभगवानका शासन छेड़ले आरे तक रहेगा। और जो साधु साध्वी भगवतकी आज्ञामें चलने वाले हैं उनको मैं वारम्वार त्रिकाल नमस्कार करता हूं। परन्तु मैं जिन-मार्गकी घोलना करने और शुद्ध २ जिन मार्गमें प्रवृत्त होनेकी इच्छा करता हूं। सो भो देवानुप्रियो, जो तुमने सन्देह किया सो मैंने सब हाल कहा।

"प्रश्नः—आपने अपने मध्ये कारण लिखाया सो तो ठीक है, परन्तु हम जब किसी साधुसे कहते हैं कि महाराज अपनेमें यथावत् साधूपना नहीं वतलाते हैं, उस वक्त वह साधु लोग कहते है कि स्वांग भरकर बहु-रूपियापनसे क्यों डोलते हैं? क्या इस स्वांगके विदुन पेट न भरेगा? इस वातको सुनकर हम चुप हो जाते हैं, इसका उत्तर आप लिखाइये।

'उत्तरः—इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि स्वांग तो मैंने भरलिया, परन्तु मुझसे यथावत् रूप न दरसाया गया, इस वास्ते मैं यथावत् साधु भी न बना। जैसा कुछ मेरेमें गुण-अवगुण था सो जाहिर किया, क्योंकि अपने मुखसे आपही साधु वनने से कुछ कार्यकी सिद्धि न होगी, किन्तु निष्कपट होकर भगवद्-आज्ञासे जो साधुपना पालेगा वही साधु है और उसीका कार्य्य सिद्ध होगा। और मुझको यथावत् कहनेका कारण यही है कि जिस पुरुषको जिस वस्तुमे ग्लानी वैठती है उस वस्तुमें फिर प्रवृत्ति नही होती। सो मैंने भी अनादि कालसे झूठ, कपट, दंभ, छल आदि किये हैं, और इस जन्म में जो मैंने धूर्तता, दंभ कपट, छल आदि किये हैं सो मेरी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने, क्योंकि जो सप्त व्यसन के सेवनेवाले हैं उससे कोई वात वाकी नही रहती। सो मैं अपने कर्मोंको कहां तक लिखू? परन्तु मेरे शुभ कर्मका उदय आया तव इन चिजोंमें ग्लानी वैठनेसे इनको छोडकर यह काम किया अर्थात्

भेष लेकर धीरे धीरे त्याग पच्चखानको बढाता हुआ निष्कपट होकर उसे करता चलता हूं, नतु किसीके उपदेश या संग सोहवतसे मैंने भेष अंगीकार किया है * * * * *

"स्वमतमे तो मेरी प्रसिद्धि कम है, परन्तु अन्य मतके बड़े बड़े विद्वान, स्वामि, सन्यासी, बैरागी, कनफटा, दादू-पंथी, कवीरपंथी, निर्मले, उदासी जोकि उन मतोंके अच्छेर महात्मा वाजते हैं उन लोगोंसे मेरी वार्तालाप हुई, और उसीके घरोंका प्रमाण देकर उसके घरकी न्यूनता दिखाकर और जैनी नामसे उन लोगोंमें प्रसिद्ध हो रहा हूं सो यह लिंग छोडनेसे जिनधर्मकी हंसी वे लोग करेंगे उस धर्मकी हंसीसे लाचार होकर भेष नहीं छोड सकता। और जो लोग मेरे वास्ते ऐसा कहते हैं तो मैं उसका उपगार मानता हूं, क्योंकि वे लोग गृहस्थि वगैरः से ऐसा कहते रहेंगे तो मेरे पास गृहस्थियोंकी आमद-रफत कम होगी। सो वे ऐसा कहेंगे तो मैं बहुत राजी रहूंगा। और तुम्हारा चुप होना ही अच्छा है क्योंकि जैसा मैं कहता हूं ऐसा ही वे लोग भी कहते हैं। इसलिये तुम्हारा जवाब देना ठीक नहीं, क्योंकि मेरा तुम्हारा धर्म सम्बन्ध है, न तु दृष्टिराग"

ये उपरके प्रश्नोत्तरवाले अंश यहापर उपयुक्त होनेसे संक्षेपमें उद्धृत करके दिखाये गये हैं। विस्तारसे देखनेकी जिनको इच्छा हो वे 'स्याद्वादानुभव रत्नाकर' के २६६ पृष्ठसे देखें।

जमनालाल कोठारी।

प्रथम से ग्राहक बन कर आश्रय देनेवाले महाशयों के मुबारक नाम।

पुस्तकसंख्या	नाम	शहर का नाम
११	श्री जिनदत्त सूरिजी ज्ञान भंडार, मा० श्री जिन कृपाचंद्र सूरिजी	सूरत
५	उपाध्याय श्री सुमतिसागरजी मणीसागरजी	रतलाम
५	मुनिराज श्री हरिसागरजी	ब्यावर
५	साध्वीजी श्री सोनश्रीजी	जेपुर
१०१	बाबू बहादुरमलजी रामपुरीया	कलकत्ता
५१	बाबू रायकुमार सिंहजी राजकुमार सिंहजी मुकीम	„
२५	बाबू समीरमलजी सूराणा	„
२५	बाबू नरोत्तमदास जेठाभाई	„
२५	बाबू जेवतमलजी रामपुरिया	„
२५	बाबू रतनलालजी मानकचंदजी बोथरा	„
२५	बाबू रिद्धकरनजी बाठीया	„
२५	बाबू किसनचंदजी बाठीया	„
२५	बाबू मुन्नालालजी हीरालालजी जोहरी	„
२५	बाबू माधोलालजी रीखबचंदजी डुगड़	„
२५	बाबू शिखरचंदजी नथमलजी रामपुरिया	„
२१	बाबू पूनमचदजी दीपचन्दजी सावनसुखा	„
२१	बाबू राजरूपजी देवीचदजी नाहटा	„
२१	बाबू गोपालचदजी बाठीया	„
२१	बाबू भेरूदानजी हाकिम कोठारी	„
२१	बाबू प्रेमसुखदासजी पूनमचदजी	„
२१	बाबू डालचंदजी बहादुरसिंघजी	„

पुस्तकसंख्या	नाम	शहर का नाम
१५	बाबू भेरूदानजी शिखरचंदजी गोलेछा	कलकत्ता
१५	बाबू अमरचंदजी कोठारी	"
१३	बाबू उदेचंदजी राखेचा	"
११	बाबू रतनलालजी ढढ्ढा	"
११	बाबू गेबरचंदजी पारख	"
११	बाबू भगवानदासजी हीरालालजी जोहरी	"
११	बाबू माणकचंदजी चुन्नीलालजी जोहरी	"
११	बाबू बागमलजी राजमलजी गोलेछा	"
११	बाबू रिद्धकरनजी कनैयालालजी डागा	"
११	बाबू उदेचंदजी कोठारी	"
११	बाबू हसराजजी सुगनचन्दजी बोथरा	"
११	बाबू सरदारमलजी जसराजजी हीरावत	"
११	बाबू चम्पालालजी पेमचन्दजी	"
११	बाबू मोतीचन्दजी नखत जोहरी	"
११	बाबू सरधसुखजी पुनमचन्दजी कोठारी	"
११	बाबू पनेचन्दजी सिंगी	"
१०	बाबू पूरणचन्दजी नाहार	"
७	बाबू भीखणचन्दजी बगसो	"
७	बाबू सूरजमलजी सोभागमलजी	"
५	बाबू मोहनलालजी जतनमलजी सेठीया	"
५	बाबू केशरीमलजी छाजेड़	"
५	बाबू मुकनचन्दजी ढढा	"
५	बाबू रावतमलजी हरिश्चन्द्रजी बोथरा	"
५	बाबू मूलचन्दजी शेठीया	"
५	बाबू रतनलालजी लूणिया	"
५	बाबू चम्पालालजी कोठारी	"
५	बाबू तेजमलजी नाहटा	"

पुस्तकसंख्या	नाम	शहर का नाम
५	बाबू बाबूलालजी रामपुरिया	कलकत्ता
५	बाबू रिद्धकरनजी कनैयालालजी कोचर	”
५	बाबू अजितमलजी आसकरणजी नाहटा	”
५	बाबू बगसीरामजी रिद्धकरणजी सेठीया	”
५	बाबू मोतीलालजी सुजाणमलजी जोहरी	”
५	बाबू सिद्धकरणजी पेमचन्दजी नाहटा	”
५	बाबू धरमचन्दजी डोसी	”
५	बाबू लक्ष्मीचन्दजी सीपाणी	”
५	बाबू धनराजजी सिपाणी	”
५	बाबू मुनीलालजी दुगड़	”
५	बाबू अमीचन्दजी छोटमलजी गोलेछा	”
५	बाबू समीरमलजी पारख	”
५	बाबू सितावचन्दजी बोथरा	”
५	बाबू भेरूदानजी बोथरा	”
५	बाबू पानमलजी जतनमलजी नाहटा	”
५	बाबू बगसीरामजी केसरीमलजी पारख	”
५	बाबू भेरूदानजी चोपडा कोठारी	”
४	बाबू मेघराजजी कोचर	”
४	बाबू पुनमचन्दजी शेठीया जोहरी	”
२	बाबू बागमलजी पुगलिया	”
२	बाबू कल्लुमल जी पालावत	”
२	बाबू तेजकरनजी राखेचा	”
२	बाबू मगलचन्दजी खजानची	”
२	बाबू मंगलचन्दजी वेगाणी	”
२	बाबू किसनचन्दजी कोचर जोहरी	”
२	बाबू मानकचन्दजी नाहटा	”
१	बाबू आसकरनजी सूराना	”

पुस्तकसंख्या	नाम	शहर का नाम
१	बाबू जोरावरमलजी सेठीया	कलकत्ता
१	बाबू जेठमलजी सिंगी	”
१	बाबू बुधमलजी कोचर	”
१	बाबू अमीचन्दजी दफतरी	”
१	बाबू दलपत प्रेमचन्द कोरडीया	”
१	बाबू हमीरमलजी दुगड़	”
१	बाबू उमेदचन्दजी सूराणा	”
१	बाबू जडावचन्दजी ढढ्ढा	”
२५	बाबू सालमचन्दजी गोलेछा	बेंगलोर की छावनी
११	बाबू हीरालालजी रिखवचन्दजी	बेंगलोर
२१	श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, मारफत बाबू डालचन्द जी जोहरी	आगरा
२१	बाबू विरधीचन्दजी चोपडा	रतलाम
२१	बाबू धनसुखदासजी लूनीया	बीकानेर
१५	महताजी लक्ष्मणसिंहजी हाकिम	उदेपुर
११	बाबू बीजराजजी कोठारी	मिरजापुर
५	बाबू हजारीमलजी बोथरा	तेजपुर
५	बाबू हमीरमलजी गोलेछा	जेपुर
५	बाबू बुधकरनजी देवकरनजी वेद	अजमेर
५	बाबू छगनमलजी बाफना	उदेपुर
५	बाबू जेठमलजी सुराणा	बीकानेर
५	बाबू गोपालचन्दजो दूगड	जीयागज
५	बाबू राजाजी रूगनाथजी	गंटूर (मद्रास)
४	बाबू गजराजजी अनराजजी सिंगी	सोजत
४	बाबू लक्ष्मीचन्दजी घीया	परतापगढ
२	बाबू सूरजमलजी उमेदमलजी	विजयानगरम्
२	बाबू परतापमलजी कोठारी	अजमेर

पुस्तकसंख्या	नाम	शहर का नाम
२	बाबू केसरीचन्दजी दीपचन्दजी लूणीया	अजमेर
१	मारवाडी पुस्तकालय, मारफत श्री जिन कृपाचन्द्र सूरिजी महाराज	बड़ोदा
१	बाबू जगतसिंहजी लोढा	जीयागंज
१	बाबू गंगारामजी केसरीमलजी	जावरा
१	बाबू भवरसिंहजी बोथरा	जीयागंज
१	बाबू अमरचन्दजी दीपचन्दजी बांठीया	उजैन
१	बाबू परतापमलजी सेठीया	मन्दसोर
१	बाबू रूपचन्दजी लूणीया	आगरा
१	श्री जैन श्वेताम्बर वाचनालय	ईन्दौर
१	बाबू गुलाबचन्दजी भूरा	जीयागंज
२	बाबू गनेशलालजी नाहटा	"
२	रायबहादुर सिरेमलजी बाफना होम मिनिस्टर	पटियाला
२	शेठ हेमचन्द अमरचन्द तलकचन्द	बम्बई
१	बाबू जुहारमलजी सहसमलजी	ब्यावर (नयासहर)
५	बाबू लखमीचन्दजी साहेला	"
४	बाबू प्रसनचन्दजी बछावत	अजीमगंज
२	श्री जैनपाठशाला मो० श्रीजिन कृपाचन्द्रसूरिजी	इन्दौर
५	बाबू नथमलजी बोथरा	"
५	बाबू मूलचन्दजी पारख	"

विषयानुक्रमणिका।

श्रीवीतरागाय नमः

अथ द्रव्यानुभव-रत्नाकर ।

❀ दोहा ❀

प्रणमूं निजरूपको, श्रीमहावीर निजदेव ।
गुरु अनुभव श्रुत देवता, देहु श्रुत नितमेव ॥१॥

प्रथम इस ग्रन्थमें हमको यह विचार करना है कि, वर्त्तमान कालमें कोइ तो निश्चयको पकड़ बैठे हैं, और कोई व्यवहारको पकड़ बैठे हैं। परन्तु इनका असल रहस्य नहीं जानते हैं कि, निश्चय क्या चीज है और व्यवहार क्या चीज है। इन दोनोंके रहस्य नहीं जाननेसे ही झगड़ा करते हैं। जो इन दोनों शब्दोंका अर्थ यथावत् जान जावें तो कार्य्य कारणको समझकर साध्य साधनसे अपनी आत्माका कल्याण करें।

इसलिये इस जगह हमको इस निश्चय, व्यवहार शब्दके अर्थको जाननेके वास्ते प्रथम इसका निर्णय करना आवश्यक मालूम हुआ कि निश्चय, व्यवहार क्या वस्तु है और इन शब्दोंका अर्थ क्या है।

प्रथम निश्चय शब्द किस धातुसे बनता है और यह धातु किस अर्थमें है। तो देखो कि (चिञ् चयने धातु है।) चयनं अर्थात् "राशी

करणम्" इसका अर्थ क्या हुआ कि इकट्ठा करना, अर्थात् वस्तु मात्रको समेटना, अथवा वस्तुके अवयव मात्रको एकी करण अर्थात् इकट्ठा करना है। यह धातुका अर्थ हुआ। अब यहां कौन शब्दके सङ्ग होनेसे निश्चय शब्द बनता है सो दिखाते हैं कि, "निस्" उपसर्ग है और 'चिंञ' धातु है। इन दोनोंके मिलनेसे निश्चय शब्द बनता है, और इसकी निरुक्ति ऐसी है कि निर्णीत अर्थात जानना तिसको निश्चय कहते हैं। सो इस शब्दको कई प्रकारसे कहते हैं। एक तो वस्तु सद्भावसे, अथवा तद्ज्ञानसे, जहां वस्तु सद्भावसे कहेंगे उस जगह तो वस्तुके अवयव समेत वस्तुको लेंगे, और जहाँ तद्ज्ञानसे कहेंगे उस जगह ज्ञानके अवयवोंको लेंगे। इसरीतिसे जिसके सङ्गमें निश्चय शब्द लगेगा उस वस्तुके अवयव समेत अर्थात् समुदायको एकत्रित करके मानना अर्थात् एकरूप कहना सो निश्चय है। सो और भी दृष्टान्त देकर दिखाते हैं कि जैसे निश्चय आत्मस्वरूप जानो। तो निश्चय शब्दके कहनेसे आत्माके जो अवयव असंख्यात् प्रदेशोंका समुदाय, अथवा ज्ञानादि चार गुण, और पर्याय आदि समूहको जानना। अर्थात् सबको एकरूप करके जानना उसको निश्चय आत्म जानना कहेंगे। और जिस जगह निश्चय शब्द ज्ञानके संगमें लगावें तो निश्चय ज्ञान ऐसा कहनेसे ज्ञानके जो अवयव उसको निश्चय ज्ञान कहेंगे, अथवा निर्णीत अर्थात् निस्सन्देह ज्ञानको निश्चय ज्ञान कहेंगे। इसीरीतिसे सब जगह जान लेना।

अब व्यवहार शब्दका अर्थ करते हैं कि इस शब्दमें उपसर्ग कितने हैं और धातु कौन है और किस धातु वा उपसर्गसे व्यवहार शब्द बनता है और उस धातुका अर्थ क्या है। देखो—हृज 'हरण' धातु है। यह धातु हृज हरण अर्थात् जुदा करनेमें है। अब इसके पीछे (वि) उपसर्ग और दूसरा (अव्) उपसर्ग और फिर 'हृज' धातुसे 'घञ' प्रत्यय होनेसे तीनों मिलकर व्यवहार शब्द बनता है। इसकी निरुक्ति ऐसी है कि, विशेषण अवहर्त्ति विनासयेति चित्त आलक्ष्यं अनेन इति व्यवहारः" इस रीतिसे व्यवहार शब्द सिद्ध

हुआ। अब प्रथम शुद्ध शब्दको भी धातु प्रत्ययसे दिखाते हैं। जैसे " शुद्ध-त-शु-शुद्ध " शुद्ध धातु शुद्धी अर्थमें ए क्त् प्रत्यय कर्मवाचक है। शुद्ध अर्थात् निर्लेप जिसमें कोई तरहका लेप न हो। " शुद्धते असौशुद्धा शुद्धश्चासौ व्यवहार शुद्ध व्यवहार।" शुद्ध व्यवहारका निषेध अर्थात् अशुद्ध व्यवहार कहता है। इस रीतिसे व्यवहार और शुद्ध और अशुद्ध शब्द सिद्ध हुआ, सो श्री जिन आगममें व्यवहारके दो भेद कहे हैं। एक तो शुद्ध व्यवहार, दूसरा अशुद्ध व्यवहार। सो प्रथम शुद्ध व्यवहारका अर्थ आगमानुसार दिखाते हैं कि, शुद्ध व्यवहारका तो कोई तरहका भेद नहीं किन्तु जिज्ञासुओंके समझानेके वास्ते ज्ञान, दर्शन, चारित्रको जुदा २ कहना, अथवा नीचेके गुणठानेसे ऊपरके गुणठानेको चढ़ाना, इस रीतिके जिज्ञासुओंके समझानेके वास्ते भेद हैं। परन्तु असल शुद्ध व्यवहार तो जो शुक्लध्यानके दूजे पायेमें निर्विकल्प ध्यान कहा है उस ध्यानका करना है और वही शुद्ध व्यवहार भी है। उस शुक्ल ध्यानका तो वर्णन हम आगे करेंगे, अब अशुद्ध व्यवहारके भेद कहते हैं।

यहां अशुद्ध व्यवहारके चार भेद दिखाते हैं। (१) एकतो शुभ व्यवहार (२) दूसरा अशुभ व्यवहार (३) तीसरा उपचरित्र व्यवहार (४) चौथा अनुपचरित व्यवहार। इस रीतिसे व्यवहारके भेद हैं। परन्तु शुद्ध व्यवहार और निश्चय इन दोनोंका मतलब एक ही है। क्योंकि निश्चय शब्दका धातु प्रत्यय हम ऊपर लिख आये हैं। उस हिसाबसे तो वस्तु जो बिखरी हुई पड़ी हैं, उसके इकट्ठा (जमा) करनेका नाम निश्चय है। और शुद्ध व्यवारके कहनेसे निर्मल नाम मल करके रहित ऐसी जो वस्तु पृथक (जुदा) की हुई वस्तु उसको शुद्ध व्यवहार कहेंगे। इसलिये शुद्ध व्यवहार और निश्चयका मतलब एक ही है। दूसरी रीतिसे और भी देखो कि, जो ऊपर लिखी धातु प्रत्यय है उसी रीतिसे अर्थ करें तो बिखरी हुई वस्तुका इकट्ठा करना भी एक तरहका व्यवहार हुआ। बिना व्यहारके निश्चय कुछ नही ठहरता। क्योंकि

जो जिन आगमके रहस्यसे अनभिज्ञ हैं और जिन्होंने गुरुकुलवास नहीं सेवन किया, और अन्य मतके पण्डितोंसे न्याय व्याकरणादि पढ़कर बुद्धिमतासे पंडित बन बैठे उनको कुछ स्याद्वाद जिन आगमका रहस्य प्राप्ति न होगा, इसका रहस्य तो वेही जानेंगे कि जिन्होंने गुरुकुलवासको सेया होगा। इसलिये हे भव्य प्राणियों यदि तुमको जिनमार्गकी इच्छा हो तो जिन आज्ञाकी आराधना करो जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

(प्रश्न) अजी आपने तो निश्चय और शुद्ध व्यवहारको एक ठहराकर व्यवहारकी मुख्यता रक्खीं और निश्चयको उसके अन्तर्गत कर दिया। परन्तु शास्त्रोंमें तो निश्चय और शुद्ध व्यवहार जुदा जुदा कहा है। फिर आप निश्चयको उठाकर व्यवहारको ही मुख्य क्यों कहते हैं ?

(उत्तर) भो देवानुप्रिय ! हमने तो धातु प्रत्ययसे शब्दका अर्थ करके तुमको दिखाया है, और निश्चयको तुमलोग पकड़कर व्यवहारको उठाते हो। इसलिये हमने तुम्हारे वास्ते निश्चय व्यवहारकी व्यवस्था दिखाई है, क्योंकि व्यवहारके अतिरिक्त निश्चय कुछ वस्तु ही नहीं ठहरती। क्योंकि देखो व्यवहारसे तो वस्तुको पृथक (जुदा) किया और निश्चयने उस जुदी जुदी वस्तुको इकट्ठा कर लिया। इस हेतुसे निश्चय और शुद्ध व्यवहार एक ही है कुछ भिन्न भिन्न नहीं हैं। हाँ अलबत्ता जिस निश्चयको तुमलोग पकड़ बैठे और व्यवहार अर्थात् शुद्ध व्यवहारके अज्ञान शुभ व्यवहारके उठानेवाले भोले जीवोंको त्याग पचखानका भङ्ग कराकर मालखाना और इन्द्रियोंके विषय भोगकर मोक्ष जाना, बतलानेवाली होनेसे इस तुम्हारी निश्चय गधाके सींग न होनी वस्तुको क्योंकर माने, सो इसके उठजानेसे तो हमारे कुछ हानी नहीं, और श्रीसर्वज्ञदेव वीतराग जिनेन्द्र भगवान अर्हन्त श्रीवर्द्धमान स्वामीकी कही हुई निश्चय और व्यवहार तो उठी नहीं किन्तु उनके कहे हुए आगम अनुसार प्रतिपादन करी है। नतु स्वमति कल्पनासे।

(प्रश्न) अजी आपतो कहते हैं परन्तु देखो तो सही कि, आगमोंके जानेकार निश्चय तथा व्यवहारको जुदा जुदा कहते आये हैं। वलिक थोड़ेकाल पहले श्रीयसो विजयजी उपाध्याय महाराजने सोलहवें श्रीशान्तिनाथजी भगवान्की स्तुती करी है उसमें उन्होंने पृथक् पृथक् (जुदा २) निश्चय, व्यवहार दिखाया है। फिर आप क्यों नहीं मानते हैं ?

(उत्तर) भो देवानुप्रिय, श्रीयसो विजयजी महाराजके कहनेका तुम्हारेको अभिप्राय न मालूम हुआ। जो तुम्हारेको अभिप्राय मालूम होना तो उनके कथनपर कदापि विकल्प न उठाते। देखो श्रीउपाध्यायजीने प्रथम तो निश्चय और व्यवहार जुदा २ दिखाया, और शेपमें जाकर दोनोंको एक कर दिया। वे जुदा २ समझते तो दोनोंकी एकता कदापि न करते। इसलिये उन्होंने दोनोंको मिलाकर स्याद्वाद सिद्धान्त शेपमे प्रतिपादन कर दिया। यदि तुम इस जगह ऐसी शङ्काकरो कि एक ही था तो फिर श्रीउपाध्यायजी महाराजने जुदा २ कहकर जिज्ञासुओंको क्यों भ्रममें गेर ? तो इसका समाधान हमारी वुद्धिमें ऐसा आता है कि, श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवकी वाणीका ही इस रीतिसे कथन है कि, पेश्तर पृथक २ कथन करके फिर एकता करना उसीका नाम स्याद्वाद है। इसलिये श्रीउपाध्याजी महाराज जुदा २ कथन करके फिर एकताकर गये। जो इस रीतिसे आचार्य्य लोग पदार्थोंकी विवक्षा न कहेंगे तो जिज्ञासु गुरु आदिकोंको कौन माने ? इसलिये इस स्याद्वाद रहस्यकी कूंची गुरुके हाथ है। गुरु योग्य जाने तो दे और अयोग्य जाने तो न दे। क्योंकि अयोग्य होनेसे अनेक अनर्थका हेतु हो जाता है। इसलिये जो जिनमतके रहस्यके जानकार हैं वे लोग आगमकी श्रेणीसे अन्य व्यवस्था नहीं करते हैं।

(प्रश्न) अजी आप व्यवहार२ कहते हो पन्तु निश्चयवालेको जो प्राप्त है सो घ्यवहारवालेको नहीं। क्योंकि जो कोई मजूरी, नौकरी, गुमास्तगीरी, इत्यादिक अनेक व्यवहार करे तो चार आना ।), आठ

आना ॥), रुपया १) ,पांच रुपया, रोजकीपैदावारी होती है, और जो फाटका (अफीमका सौदा) के करनेवाले हैं वे हजारों लाखों एक दिनमेंही पैदा करलें। इसलिये व्यवहारमें कुछ नहीं और निश्चयहीमें सब कुछ है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय, तुम विवेक रहित हो और वुद्धि विचक्षणपना तुम्हारा मालूम होता है। इसलिये तुमने मालखाना मोक्ष जाना अंगीकार किया दीखे है। अरे भोले भाई कुछ वुद्धिका विचार करो कि व्यवहार क्या चीज है और इसके कितने भेद हैं। देखो कि जिस रीतिसे तुम्हारा प्रश्न है उसी रीतिके दृष्टान्तसे तेरेको उत्तर देते हैं। सो तूं चित्त देकर सुन कि, इस लौकिक व्यवहारके भी तीन भेद हैं। एक मन करके व्यवहार, दूसरा काय करके व्यवहार और तीसरा वचन करके व्यवहार। तो जो काय करके व्यवहार करनेवाले हैं। उनको तो ।) चार आना, ।≈) छः आना ॥) आना हो मजूरीका मिलता है, और जो काय और वचन करके व्योपार करते हैं उनको भी १)रुपया, २) रुपया, ५)रुपया रोज मिल जाता है। परन्तु उस काय और वचनके व्यापारमें वुद्धिकी भी विशेषता है। जैसी २ वुद्धिकी विशेषता होगी वैसा ही लाभ होगा। और जो वुद्धि सहित मनका व्यवहार करने वाले हैं उनको हजारों लाखों ही एक दिनमें पैदा हो जायगा। परन्तु वुद्धिके विना जो केवल मनका व्यवहार करनेवाले हैं उनको कुछ भी न होगा। अथवा जो मनके व्यापार करके रहित हैं उनको कदापि कुछ नहीं होगा, इसलिये व्यवहारकी मुख्यता है। विना व्यवहारके किसी वस्तुकी प्राप्ति नहीं। इसलिये कुछ वुद्धिसे विचार करो कि जो वह हजारों लाकों रूपये एक दिनमें पैदा करनेवाला व्यक्ति वुद्धि सहित मनका व्यवहार न करे और हजारों लाखों पैदा कर ले तबतो तुम्हारा निश्चयका भी कहना ठीक हो जाय। नहीं तो हमारा प्रतिपादन किया हुआ व्यवहार सिद्ध हो गया। इसलिये जिस रीतिसे हम ऊपर निश्चय, व्यवहार लिख आये हैं उसका मानना ठीक हैं नतु अन्य रीतिसे।

(प्रश्न) अजी आप व्यवहार कहते हो सो तो ठीक है परन्तु व्यवहारमें कुछ फल नही, क्योंकि देखो श्री मरु देवी माताको हाथी पर चढ़े हुये केवल ज्ञान हुआ। और भर्त महाराजको भी आरीसा भवन (काचके महल) में केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो उन्होने तुम्हारा व्यवहार रूप चारित्र किस रोज किया था? इसलिये व्यवहार कुछ चीज नहीं।

(उत्तर) भोदेवान् प्रिय! श्री मरु देवी माता और भर्त्त महाराजका जो नाम लेकर व्यवहारको निषेध किया सो तेरेको श्री जिन भगवानके कहे हुवे आगमकी खबर नही जो तेरेको इस स्याद्वाद आगमके रहस्यकी खबर होती तो ऐसा विकल्प कभी नहीं उठता। और जो तू दृष्टान्त देकर निश्चयको कहता है सो निश्चयतो गधाकी सींग है। और जो श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने जिस रीतिसे निश्चय व्यवहार कहा है उस निश्चयको तो तू जानता ही नही है, यदि वीतरागके निश्चयको समझता तो इन्द्रियोंके भोग करना और त्याग पच्चखानका भंग करना ऐसा कदापि न होता। अत. अब तुम को हम किञ्चित रहस्य दिखाते है। व्यवहार श्रीमरु देवी माता अथवा भर्त महाराजने किया था उसका रहस्य तेरेको न जान पडा। सो तेरेको हम समझाते हैं कि, देखो व्यवहार चारित्रके दो भेद हैं। एकतो शुद्ध व्यवहार चारित्र, दूसरा शुभ व्यवहार चारित्र। अब प्रथम शुद्ध व्यवहारके लौकिक और लोकोत्तर करके दो भेद हैं। लोक उत्तरका तोकोई भेद है नही, और वह चारित्र शुद्ध व्यवहार सिद्धके जीवोंमे है। और लौकिक शुद्ध व्यवहार चारित्रके दो भेद हैं, एकतोलिङ्गादि करके रहित, दूसरा लिङ्गादि संयुक्त। तो जो लिङ्गादि करके रहित शुद्ध व्यवहार चारित्र है उसमें गृहस्थ, अन्य लिङ्गादि शुद्ध व्यवहार चारित्र को पालते हुये केवल ज्ञान (अथवा सिद्ध) को प्राप्त होते हैं। इस लिये मरू देवी माता और भर्त्त महाराज लिङ्ग करके रहित शुद्ध व्यवहार चारित्रको अङ्गीकार करते हुये, उसीसे उनको केवल ज्ञान उतपन्न हुआ था। सो अब हम उनका शुद्ध व्यवहार दिखाते हैं कि

उन्होंने क्या शुद्ध व्यवहार किया। देखो कि जिस वक्त श्री ऋषभदेव स्वामीको केवल ज्ञान उतपन्न हुआ उस वक्त भर्त महाराजने आकर श्रीमरू देवी मातासे कहा कि हे माताजी आपके पुत्र श्री ऋषभदेव स्वामीजी पधारे हैं। सो मेरेको आप रोजीना उलाहना देती थीं सो आज चलो। ऐसा कहकर श्री मरु देवी माताको हाथी पर विठलाकर चले और रास्तेमें देवता देवी अथवा मनुष्योंका कोलाहल सुनकर उनकी माता भर्त महाराजसे कहने लगीं कि हे पुत्र! यह कोलाहल किसका है। तब भर्त महाराज बोले कि हे माताजी! आपके पुत्र श्री ऋषभदेव स्वामी की सेवामें देवी देवता मनुष्यादि आते हैं सो आप आँखे खोलकर देखो कि आपके पुत्र कैसी शोभा संयुक्त विराजमान हैं। उस वक्त मरु देवी माताजीने अपने हाथोंसे अपनी आखोंको मला। मलनेसे आँखोंमें जो धुन्धका पटल था सो दूर हुआ और श्रीऋषभदेव स्वामी की रचनाको यथावत देखकर जो मोहनी कर्म अज्ञान दशाका जो पुद्गलीक दलिया संयोग सम्बन्धसे तदात्मभाव करके खीर नीरकी तरहसे मिला हुआ था उस को पृथक करनेके वास्ते शुद्ध व्यवहार परिणाममें प्रवृत हुई। किस रीतिसे विवेचन करती हुई पृथक अर्थात् जुदा करने लगी कि रे जीव मैं तो इस पुत्रके ताईं दुख करती २ आँखोसे अन्धी होगई और इस पुत्रने मेरेको कहलाकर इतना भी न भेजा कि हे माता मैं खुशी हूं। तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना। सो कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी माता, औरमैंने एक तरफका ही स्नेह करके आंखों को गँवाया, यहतो निःस्नेह है, इसलिये मेरेको भी इससे स्नेह करना वृथा है। मेरी आत्मा एक है। मेरा कोई नहीं, मैं किसीकी नहीं, इत्यादि अनेक रीतिसे जो अपनी आत्माके संग ज्ञाना वरणादि कर्म संयोग सम्बन्धसे तदात्मभावसे आत्म प्रदेशोंसे मिले हुये थे उनको पृथक (जुदा) करनेका शुद्ध व्यवहार किया। तब निर्मल अर्थात् पुद्गलरूपी मल करके रहित अपने आत्म प्रदेशोंको शुद्ध करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्रगट करके मोक्षको प्राप्त हुई। इसलिये हे भोले

भाइ! श्री मरुदेवी माताने भी लिङ्गादि रहित शुद्ध व्यवहार चारित्र अङ्गीकार किया। जवतक वे शुद्ध व्यवहार न करतीं तब तक कदापि मोक्ष न होता। इसलिये अभी तेरेको जिन आगमकेरहस्य बताने वाले शुद्ध उपदेशक गुरु न मिले। इसलिये तेरेको निश्चय अच्छा लगा कि माल खाना और मोक्ष जाना। अब तेरेको भर्त महाराजका व्यवहार दिखाते हैं, कि देख जिस वक्तमें श्री भर्त महाराज आरीसा महलमें वस्त्र आभूषण पहिने हुये विराजमान थे उस वक्तमें एक हाथकी छेड़ली (कनिष्ठका) अङ्गुलीमें से अंगूठी गिर पड़ी उस वक्तमें औरतो सब अंगुली अच्छी दीखती थी और वह अंगुली बुरी मालूम होती थी। उस वक्त भर्त महारजने दिलमें विचारा कि यह अंगुली क्यों बुरी दीखती है। औरतो सब अच्छी लगती हैं। इसलिये मालूम होता है कि दूसरेकी शोभासे इसकी शोभा हैं ऐसा विचार करके और धीरे २ सब वस्त्र और आभूषण उतार करके अलग रख दिये। तब कुल शरीर उस वक्त आभूषणके विना कुशोभा रूप दीखने लगा। उस वक्त भर्त महाराज अपने प्रणामो में विचार करने लगे कि रे जीव, पर वस्तुसे शोभा हैं सो पर वस्तु की शोभा किस कामकी, निज वस्तुसे शोभा होय वही शोभा काम की है। इसलिये उन्होंने पर वस्तुसे स्वय वस्तुका पृथकभाव (जुदा भाव) कर्ण रूप व्यवहार करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न किया। इस पृथक व्यवहारके विना जो केवल, ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न किया हो तवतो तेरा आख्यान (दृष्टान्त) कहना और निश्चय जुदी ठहराना ठीक था। नहींतो अब हम जिस रीतिसे निश्चय व्यवहार का अर्थ ऊपर लिख आये हैं उसीरीतिसे निश्चय व्यवहार मानो। जिससे तुम्हारी आत्माका कल्याण हो, नतु तुम्हारी रीतिका निश्चय मानना ठीक है। और शुभ चारित्रका जो भेद लिखा है सो तो प्रसङ्गात नाम मात्र दिखाया है। परन्तु इसकी विशेष व्यवस्था आगे कहेंगे।

और जो अशुद्ध व्यवहारके भेद चार कहे थे उसमें शुभ व्यवहार तो उसको कहते हैं कि, जो पुण्यादिक की क्रिया करता है और लोग जिसको कोई बुरा नहीं कहते, बल्कि अन्य मतमें भी जो लोग पुण्य, दान, व्रत, उपवास, वा नियम, धर्मादिक करते हैं, सो भी सब शुभ व्यवहारमें किसी नयकी अपेक्षासे गिना जायगा। अशुभ व्यवहारमें जो अशुभ क्रिया अर्थात् चोरी करना, जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, जीव हिंसादिक अनेक व्यापार हैं, जिनको लौकिकमें बुरा कहे और परलोकमें खोटा फल मिले, उसको अशुभ व्यवहार कहते हैं। उपचरित व्यवहार उसको कहते हैं कि जो उपचारसे पर वस्तुको अपनी करके मान लेना, जैसे स्त्री, पुत्र, धन, धान्यादि अपनी आत्मा तथा शरीर आदिक से भिन्न है और दुःख सुखका बटाने वाला भी नहीं, तो भी जीव अपना करके मानता हैं। इसलिये इसको उपचरित व्यवहार कहते हैं, यद्यपि वह वस्तु जीवात्मा शरीर से जुदी है तो भी अपना करके मानलिया हैं। इसलिये वह उपचरित व्यवहार है। अब अनुपचरित व्यवहारको कहते हैं कि, यद्यपि शरीर आदिक पुद्गलीक वस्तु आत्मासे भिन्न है, तो भी इसको अज्ञान दशाके बलसे संयोग सम्बन्ध तदात्मभाव लौलीभूतपनेसे जीव अपना करके मानता हैं। यद्यपि यह शरीरादिक स्त्री, पुत्र, धनधान्यकी तरह अलग नहीं हैं, तथापि ज्ञानदृष्टिसे विचार करे तो यह शरीर आदि आत्मासे भिन्न है और पुत्र कलत्र आदिकसे भीभिन्न है। सो इस भिन्न शरीरादिमें जो व्यवहार करना उसका नाम अनुप चरित व्यवहार है। इसरीतिसे जिन आगम अनुसारसे निश्चय और व्यवहारका भेद कहा। सो हे भव्य प्राणियों जिन आगम सयुक्त निश्चय व्यवहारको समझकर और हठकदाग्रहको छोड़कर अपनी आत्माका कल्याण करो। क्योंकि देखो "श्रीउत्तराघयन" सूत्रमें कहा है कि, मनुष्यपना मिलना बहुत दुष्कर (मुश्किल) है। और उस जगह दस दृष्टान्त भी इसीके ऊपर दिखाये हैं। कदाचित् मनुष्यपना मिला भी तो आर्य्य देश मिलना बहुत कठिन है। कदाचित् आर्य्य देशभी

मिले तो उत्तम कुल जाति मिलना बहुत कठिन हैं। कदाचित् उत्तम कुल जाति भी मिले तो जैन धर्म की प्राप्ति होना बहुत कठिन है। यद्यपि जिन धर्म की भी प्राप्ति होजाय तो शुद्ध गुरू उपदेशकका मिलना बहुत कठिन हैं, कदाचित् शुद्ध गुरू उपदेशकका संयोग भी मिले तो उसका उपदेश श्रवण करना बहुत दुर्लभ, (मुश्किल) हैं। शायद उसका उपदेश भी श्रवण करे तो उसमें प्रतीति आनी बहुत कठिन हैं। जो प्रतीत भी होगई तो उसमें प्रवृति अर्थात् पुरुषार्थ करना बहुत ही कठिन है। इसलिये हे भव्य प्राणियों! इस जिन धर्म रूपी चिन्तामणि रत्नको लेकर इस राग, द्वेष रूपी कागलाके पीछे क्यों फेंकते हो? क्योंकि ऐसा सयोग बड़े प्रबल पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हुआ हैं। फिर इसका मिलना कठिन होगा। इसलिए चेतो, चेतो, चेतते रहो। इसरीतिसे निश्चय व्यवहारकी व्यवस्था कही।

अब कार्य कारणकी पहिचान कराते हैं कि, कारणके विना कार्य उत्पन्न नहीं होता इसलिये कारण कहने की अपेक्षा हुई। सो कारण दिखाते हैं कि, कारण कितने हैं सो शास्त्रोंमें कारण बहुत जगह दो कहे हैं, एकतो उपदान कारण, दूसरा निमित्त कारण, और विशेष आवश्यकके विषे समवाई कारण ऐसा कहा हैं इसीका नाम उपादान कारण हैं। और आप्त मींमांसामें कारण तीन कहे हैं। "समूवाई असमूवाई, निमित्त भेदात्" समवाई कारण और उपादान कारणतो एकहीं हैं, कुछ भेद नही, और असमवाई कारणको नामन्तर भेद करके असाधारण कारण भी कहते हैं। तत्वार्थ सूत्रकी टीकामें निमित्त कारणके दो भेद कहे हैं। एकतो निमित्त कारण, दूसरा अपेक्षा कारण, तथा ही "अपेक्षा कारण पूर्व मित्यनेन उच्यते यथाघट-स्योत्पत्तावपेक्षा कारणं व्योमादि उपेक्षते इति उपेक्षा" इसरीतिसे कारणोंका नाम कहा। अब इन कारणोंका जुदा २ लक्षण कहते हैं।

प्रथम उपादान कारणका ऐसा लक्षण हैं कि: कारण कार्य को उत्पन्न करे और अपने स्वरूपसे बना रहे, और कारणके नष्ट होने

से कार्य भी नष्ट होजाय, और शास्त्रोंमें भी इसरीतिसे कहा है, उक्तंच महाभाष्ये "तहव कारणं तं, तवो पडस्से हजेणतम्मइया ॥ विवरीय मन्न कारण, मित्थवोमादओतस्स ॥" इस गाथाके व्याख्यानमें ऐसा कहा है कि, "यदात्मकं कार्य्यं दृश्यते तदिह तदद्रव्य कारणं उपादान कारणं यथा तंतवपटस्य इति ।" इसरीतिसे जब कर्त्ता पट (वस्त्र) बनानेका व्यापार करे तब तंतु उपादान कारण है सो तंतु ही कर्त्ताके व्यापारसे पट रूप होजाते हैं। इसलिये पटका उपादान कारण तन्तु है, यह प्रथम उपादान कारणका लक्षण कहा ।

अब दूसरा निमित्त कारणका लक्षण कहते हैं कि, उपादान कारणसे भिन्न अर्थात् जुदा हो और कार्य्यको उत्पन्न करे, कारणके नष्ट होनेसे कार्य नष्ट नहीं होय उसका नाम निमित्त कारण हैं। उस निमित्त कारणमें कर्त्ताके (व्यवसाय कहता) करता जो उद्यम करे तो निमित्त कारण कहना, क्योंकि देखो जहाँ घट कार्य्य उत्पन्न होय तहां चक्र, चीवर, दंडादिकसो सर्व भिन्न हैं, और निमित्त बिना मिले मिट्टीसे घट होय नहीं, तैसे ही चक्रादिकसे भी उपादान कारण (मिट्टी) के बिना घट कार्य होवे नही, और जब तक कुम्भार घट कार्य करने रूप व्यापार न करे, तब तक उनको कारण नहीं कहना, परन्तु जब (समवाई कारण कहता) उपादान कारण तिसको नेमा कहना। अर्थात् कर्ता (कुम्भकार) जब उपादान कारणसे कार्य्य रूप घट बनानेकी इच्छा करे तब जो २ घट बनानेके काममें लगे सो सो सर्व निमित्तकारण जानना। जिस वक्तमें जो कार्य उत्पन्न करे उस वक्तमें जो जो चीज उस कार्यके काममें आवे सो सो निमित्त कारण, और कार्य करने के बिना कोई निमित्त कारण नहीं है। जेसे घटका निमित्त कारण चक्र, चीवर, दण्डादिक हैं, तैसे ही पट (वस्त्र) कार्य्यका निमित्त कारण तुरी, व्योमादिक। इसरीतिसे जैसा कार्य हो उस कार्यके उपादान कारणसे भिन्न वस्तु जो कार्यके होनेमें काम आवे सो सब निमित्त कारण हैं इस रीतिसे दूसरा निमित्त कारण कहा ।

(३) अब असमवाई कारण अर्थात् असाधारण कारणका स्वरूप कहते हैं कि जो वस्तु उपादान कारणसे अभेदरूप हो परन्तु कार्य जिससे न हो, और किञ्चित् कार्य हो तो रहे नहीं, जैसे घट कार्य उत्पन्न हो उस घटमें मिट्टीपना रहा, तिस रीतिसे न रहे। उसीका नाम असाधारण कारण है, जैसे घटरूप कार्य्य उत्पन्न होता हैं उस वक्त स्थास, कोस, कुशलाकार होय है सो वह मिट्टी पिण्डरूप उपादान कारणसे अभेद हैं। परन्तु घटकार्य्य उत्पन्न भयेके बाद वो स्थास, कोस, कुशलाकार रहे नहीं, इसलिये ये सब असाधारण कारण जानना। उक्तञ्च "प्रमाण निश्चयेन उपादानस्य कार्यत्वाप्राप्तस्य अवांतरावस्था असाधारणं इति।"

अब चौथा अपेक्षा कारण कहते हैं कि जैसे उपादान कारण वा निमित्त कारणका व्यौपार करते हैं तिस रीतिका व्यौपार न करना पड़े और कार्य्यसे भिन्न भी हो परन्तु जिसके बिना कार्य पैदा न हो ऐसा नियामक (निश्चय है) उसके बिना कोई कार्य नहीं होता। और इसलिये इसको कारण कहकर अपेक्षा कारण लिया है। क्योंकि देखो जैसे भूमि (पृथ्वी) तथा आकाशादि बिना कोई घटादि कार्य्य नहीं हो सकता, इस वास्ते इसको अपेक्षा कारण मानना अवश्यमेव है। क्योंकि इसको तत्वार्थादिक ग्रन्थोंमें कहा है "यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षा कारण व्योमादि अपेक्षते तेन बिना तद् भावा भावात् निर्व्यापारमपेक्षा कारण इति तत्वार्थ वृतौ ॥" तथा विशेषावश्यके अवधिज्ञानाधिकारे "इहां द्वार भूतशिला तलादि द्रव्यानुत्पद्यमानस्यावधिः सहकार कारणानि भवन्ति अत्र सहकार कारणं गवेष्य इति।" इस रीतिसे चार कारणोंका स्वरूप कहा।

परन्तु कारणमें कारणपनेका जो गुण है सो मूल धर्म नहीं किन्तु कारणपना उत्पन्न होता है। क्योंकि देखो जब कर्त्ता कार्य्य उत्पन्न करनेकी इच्छा करके तो जो वस्तु (उपकरण) रूप कार्य्यपनेमें प्रवृत्तावे तिस वक्त उन वस्तुओंमें अर्थात् कारणमें कारणपना उत्पन्न हो; । जैसे काष्ठमें दंडादिक अनेक पदार्थ होनेकी शक्ति है परन्तु उस

काष्ठमें कोई कर्त्ता तो दंडरूप कारणको उत्पन्न करे, कोई पुतली आदिकका कारण उत्पन्न करे, इत्यादिक अनेक रीतिसे एक काष्ठमें कर्त्ताओंके अभिप्रायसे अनेक तरहके कारण उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि देखो उसी एक दंडसे कर्त्ताघटध्वंस (फोडना) करनेकी इच्छासे दंडको प्रवृत्तावे तो घट फूट जाय। अथवा कर्त्ता उस दंडसे घट बनानेकी इच्छा करके जो उस दंडसे चक्रादिक घुमावे तो घट बननेका कारण दंड हो जाय। इसलिये कर्त्ता जिस कार्य्यको करनेकी इच्छा करे उस वस्तुमें कारणपना उत्पन्न कर लेता है। कर्त्ताके विना कारणमें कारकपना नहीं। यदि उक्तं श्रीविशेषावश्यके "येकारकाः कर्त्तुराधीना इति कारणं कार्योत्पादक तेन कार्योत्पत्तौ कारणत्वंनचकार्यकिरणे।" इसलिये कारणपना उत्पन्न धर्म है।

अब इस जगह कोई ऐसा कहे कि, वस्तुमें कोई कार्य्यका कारण तो स्वाभाविक होगा फिर तुम उत्पन्न क्यों कहते हो?

इसका उत्तर ऐसा है कि, विवक्षित कार्य्यके कारणता उत्पन्न हो। क्योंकि देखो जिसकालमें कर्त्ता कार्य्य उत्पन्न करनेकी इच्छा करे उसी कालमें कार्य्यपना उत्पन्न होय और कार्य भयेके बाद कारणतापना रहे नहीं। क्योंकि देखो जैसे अनादि मिथ्यात्वि जीव, अथवा अभव्य जीव सतावंत हैं परन्तु उनका उपादान सिद्धतारूप कार्य्यका करनेवाला नहीं, क्योंकि उनको सिद्धतारूप कार्य्य करनेकी इच्छा नहीं, इसलिये उस उपादान कारणमें कारणतापना नहीं। जब कोई उत्तम जीव सिद्धतारूप कार्य्य उत्पन्न करनेकी इच्छा करके अपनी आत्माको उपादान और अर्हनादिक निमित्त मानकर कर्त्तापनेमें परिणमे तो कार्य्य करे। इसलिये कारणता उत्पन्न हुई और वह कार्य्य सिद्ध भयेके पीछे कारणतापना रहे नहीं। कदाचित् सिद्धतामें साधकता माने तो सिद्ध अवस्थामें साधकतापना कहना पड़े सो सिद्ध अवस्थामें साधकतापना है नहीं। इसलिये कार्य्य होनेके बाद कारणता रहे नहीं। इसी रीतिसे सब जगह जान लेना।

इस रीतिसे कारण कार्य्यको गुरु आदिकसे जाने। जवतक कार्य्य कारणकी पहचान न होगी तवतक जिन धर्मका रहस्य मिलना मुश्किल है; और इन वार्तोंकी परीक्षा वही करावेंगे कि, जो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका सत्य उपदेश देनेवाले करुणानिधि जिन आज्ञाके रहस्यके जानने वाले हैं, नतु दुख गर्भित, मोह गर्भित, उपजीवी, मालखानेवाले। अव इस जगह परीक्षाके ऊपर दृष्टांत देकर दार्ष्टान्तको उतारकर समझाते हैं।

एक शहरमें एक साहूकार रहता था उसके यहां नाना प्रकारके रोजगार हाल, हुण्डी, पुरजा, जवाहिर, आदिके होते थे। और सैकड़ों मुनीम गुमाश्ते आदि नौकर रहते थे और जगह २ देशावरोंमें कोठी दुकानों पर काम होता था। साहूकारके एक पुत्र भी था, उस पुत्रको साहूकारने वचपनसे लाड़में रक्खा और उसको कुछ वनिज व्यापार जवाहिरादिककी परीक्षाओंमें होशियार न किया और उसका व्याह शादी भी कर दिया। जव वह लड़का अपनी यौवन अवस्थापर आया तव खेल, कूद, नाच, रङ्ग, मेला, तमाशा, इन्द्रियोंके भोग विषयमें लगा रहे और दुकान वणिज व्यापार रोजगार हालका किञ्चित् भी खयाल न करे और उसका पिता वहुत उसको समझावे परन्तु किसी की न मानें। क्योंकि वालकपनमें उसके खेल, कूद, नाच, रंगके संस्कारतो दृढ़ हो गये और वणिज व्यापारके संस्कार वालकपनमें न हुए।

इस कारणसे वो वणिज व्यौपारमें मूर्ख रहा और किसीकी शिक्षा न मानी तव उसका पिता भी शिक्षा देनेसे लाचार होकर चुप हो गया। कुछ दिनके वाद उस साहूकारका अन्त समय आया तव साहूकारने अपने पुत्रको एकान्तमें वुलाकर उससे कहा कि हे पुत्र आज तक तैंनें कोई वात मेरी नहीं मानी और अपने वणिज व्यौपारमें मूर्ख रहा, इसलिये मैं तेरेको समझाता हूं कि मेरे मरेके वाद यह गुमास्ते लोग सव धन खा जायेंगे, क्योंकि तेरे रोजगार आदि व्यौपार न समझनेसे। इसलिये मैं तेरे भलेके वास्ते यह चार रत्न तेरेको

देता हूं सो इन रत्नोंको तूं अपने पास यत्नसे रखियो और किसीसे इनका जिक्र न करना और किसीको दिखाना भी नहीं। जब तेरे ऊपर आयकर किसी तरहका कष्ट पड़े उस वक्त इनमेंसे एक रत्न बेच-कर अपना निर्वाह करियो, परन्तु जो तू किसी हरएकको अथवा किसी मुनीम गुमास्ता आदिकको बतावेगा तो वे लोग इसको कांचका टुकड़ा बताय कर तेरे पल्ले एक पैसा भी न पड़ने देवेंगे, इसलिये तूं अपने मामाके पास जाकर इन रत्नोंको दिखावेगा और मेरी शिक्षाका सब हाल कहेगा, तो वो तेरे सगमें कोई तरहका छल कपट न करे-गा। इस रीतिसे कहकर और चार रत्न डिब्बीमें रखकर उस लड़-केको वह डिब्बी दे दी। उस डिब्बीको लेकर उस लड़केने यत्नसे अपने घरमें छिपायकर रख दीनी, और कुछ दिनके बाद वह साहू-कार तो मर गया और इधर उस लड़केकी नासमझ होनेसे मुनीम गुमास्ता थोड़े ही दिनमें कुल धन खा गये और वह साहूकारका ल-ड़का महा दुःखी होगया, तब अपने पिताकी शिक्षा याद करके रत्नोंकी डिब्बी लेकर अपने मामाके पास गया, और वह डिब्बी मामाको दि-खायकर और जो कुछ पिताने कहा था सो सब कह दिया। तब उसके मामाने उस डिब्बीमें रत्नोंको देखकर अपने चित्तमें विचारने लगा कि यह रतन तो हैं नहीं कांचके टुकड़े हैं अभी तो इसको अ-गाड़ीका ही धोखा बैठा हुआ है मेरी बातको सत्य न मानेगा इसलिये अब ऐसा उपाय करूं कि जिससे इसको इसकी बुद्धिसे ही मालूम हो जाय कि ये कांचके टुकड़े हैं रत्न नहीं। ऐसा विचार कर उससे कहने लगा कि हे भानू (भानजे) ये अपने रत्नोंको तो तू अपने पास रख क्योंकि अभी इन रत्नोंका ग्राहक कोई नहीं और बिना ग्राहकके चीजकी कीमत यथावत् मिलती है नहीं। इसलिये ग्राहक होनेपर इसको बेंचना ठीक है सो तूं इस जगह रह और दुकान पर रोजीना आया जाया कर अर्थात् दुकान पर तूं हरदम बैठा रहाकर न मालूम कि किस वक्त कौन व्यापारी आ जाय। इसलिये तेरा बैठना दुकान पर हरदमका ठीक है। तब वो साहूकारका लड़का कहने लगा कि

मैं तो इस जगह रहूं परन्तु मेरे घरका खर्चा क्योंकर चले, तब उसने कहा कि तू इस जगह रह और घरके वास्ते जो खर्चा चाहिये सो भेज दे। तब उस साहूकारके लड़केने घरको तो खर्चा भेज दिया और आप उसी जगह रहने लगा। जब उसके मामाने उस लड़केको थोड़ा थोड़ा वाणिज्य व्यापारमें लगाया और जवाहिरातकी परीक्षा उससे कराने लगा, तब वह लड़का थोड़े ही दिनोंमें जवाहिरातकी परीक्षामें ऐसा चतुर हुआ कि सब लोग उसकी सलाहसे जवाहिरात लिया बेंचा करते, और वह साहूकारका लड़का हजारों रुपये व्यापारमें पैदा करने लगा। एक दिन वह लड़का जब दुकानपर आया तब उसके मामाने उसको एक रत्न दिखाया। वह लडका रत्नको देखकर कहने लगा कि मामाजी इसमें तो आपने धोखा खाया। उसने उस रत्नके भीतर दाग बताया, उस दागके देखनेसे मामा भी शर्माया और बुद्धिसे विचारने लगा कि अब यह सब तरहसे होशियार हो गया और कहो न ठगावेगा। ऐसा विचार कर चित्तमें खुशी हुआ और दो चार दिनके बाद कहने लगा कि भानजा वह जो तेरे पास रत्न है सो तू घरसे लेआ एक व्यापारी आया है। अभी अच्छे दाममें उठ जावेंगे। तब वह घरमें रत्न लेनेको गया और उस डिब्बीको खोलकर रत्नोंको देखने लगा तो उस डिब्बीमें चार कांचके टुकड़े निकले। उनको देखकर चित्तमें सुस्त हो गया और मनमें कहने लगा कि पिताने तो रत्न बताये थे परन्तु यह तो काचके टुकड़े हैं, इसीलिये मामाजीने अपने पास न रक्खे और मेरेको दे दिये। इनकी परीक्षा कराने और व्यापार सिखानेके वास्ते मेरेको अपने पास रक्खा और इन्होंने मुझे सब तरहसे होशियार कर दिया इसी हेतुसे मेरे पिताने चार काचके टुकड़े देकर मामाजीको भुलावा दिया था। यदि वे ऐसा मेरेको न समझा जाते तो मैं कदापि होशियार न होता। यही सब विचार करके उन कांचके टुकड़ोंको फेंककर दूकानपर आया और उन रत्नोंका सब हाल कह सुनाया और बोला कि हे मामाजी, आपकी कृपासे अब मैं रोजगार हाल वाणिज्य व्यापारमें समझने लगा और अब कहीं न ठगाऊंगा।

इसलिये अब मैं अपने घरको जाता हूं। और वह साहूकारका लड़का अपने घरपर आकर अपना रोजगार हाल करता हुआ आनन्दसे रहने लगा।

अब इसका द्राष्टान्त उतारते हैं कि देखो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव भव्य जीवोंके वास्ते भलावण देते हैं कि जो मेरी आज्ञा पर चलनेवाले प्रणती धर्मके जाननेवाले आत्मार्थी वैराग्य संयुक्त आत्म अनुभव शैलीसे विचरते हैं, और परभवसे डरते हैं, जिनको मेरे और मेरे वचन पर प्रीति सहित विश्वास, है वही पुरुष तुमको यथावत् परीक्षा करायकर उपादान और निमित्त करणादिको बताय आत्म स्वरूप अनुभव करावेंगे। उनके विना जोलिङ्ग लेकर दुःख गर्भित, मोह गर्भित लिङ्गधारी, उपजीवी आजीविकाके करने वाले, मालके खाने वाले, बाह्यक्रियाके दिखाने वाले, मुनीम गुमास्ताके बतौर हैं, वो कदापि मेरे आगमका कहा हुआ मार्ग न कहेंगे। किन्तु उलटा मेरे आगमका नाम लेकर भ्रम जालमें गेर देंगे। इसलिये उनका सङ्ग न करना। इसरीतिसे द्राष्टांत हुआ।

अब चार अनुयोगोंका नाम कहते हैं कि, प्रथमतो द्रव्यानुयोग, दूसरा गणितानुयोग, तीसरा धर्मकथानुयोग, चौथा चरण करणानुयोग। प्रथम अनुयोगमें तो द्रव्यका कथन है, दूसरे अनुयोगमें गणित अर्थात् कर्मोंकी प्रकृतिका कथन है। और खगोल भूगोलका वर्णन है। सो खगोल भूगोल का वर्णनतो मेरेको यथावत् गुरुगमसे याद हैं नहीं, इसलिये इसका वर्णनतो मैं नहीं कर सक्ता। तीसरे अनुयोग में धर्म की कथा वगैरः कही हैं, और चौथे अनुयोगमें चरण कहतां चारित्रकी विधि कही हैं। इसरीतिसे चारों अनुयोगोंका वर्णन शास्त्रों में जुदा २ कहा है। परन्तु इस जगह कार्य कारणकी व्यवस्था दिखाने के वास्ते कहते हैं कि इन चारों अनुयोगोंमें कारण कौन है और कार्य कौन है। सो ही दिखाते हैं।

जिस जगह चार कारण अङ्गीकार करें उस जगह द्रव्यानुयोग तो उपादान अर्थात् समवाई कारण, और गणितानुयोग असमवाई

कारण, और धर्म कथानुयोग निमित्त कारण, और कालादि पाँच समवाय अपेक्षा कारण और चरण कर्णानुयोग कार्य्य है।

और जिस जगह दो ही कारणको अङ्गीकार करे, उस जगह द्रव्यानुयोगतो उपादान कारण और गणितानुयोग निमित्त कारण, और चरण करणानुयोग कार्य है।

(शङ्का) तुमने अनुयोगोंको कारण कार्य ठहराया परन्तु कार्यतो मोक्ष मार्ग है ?

(समाधान) कार्य ही कारण होजाता है। सो ही दिखाते हैं कि, देखो पहलेतो कार्य्य होता है, फिर वह अन्य कार्यका कारण हो जाता है। क्योंकि देखो जैसे मिट्टीका पिन्ड थासका कारण है, और थास कार्य है। तैसे ही थास कारण है और कोष कार्य है। तैसे ही कोष कारण है और कुशल कार्य है। कुशल कारण है, कपाल कार्य है। तैसे कपाल कारण और घट कार्य हैं। इसी रीतिसे जब चारित्र रूप कार्य सिद्ध होकर मोक्षका कारण होजायगा तब मोक्ष प्राप्त रूप कार्य्य हो जायगा। इस लिये इस शङ्काका होना ठीक नहीं है।

(प्रश्न) शास्त्रोंमें काल, स्वभाव आदि पाच समवायोंको तो कारण कहा है। परन्तु अनुयोगोंको तो कारण नहीं कहा ?

(उत्तर) भो देवानु प्रिय ! तुम्हें जिन शास्त्रोंके जानकार गुरुओंका परिचय यथावत न हुआ, इसलिये तुम्हें सन्देह उत्पन्न होता है। सो तुम्हारा सन्देह दूर करनेके वास्ते प्रथम तुमको समवायोंका स्वरूप दिखाते हैं। यह जो कालादि पञ्च समवाय हैं सो जगत्के कुल कार्योंमें अपेक्षित हैं। क्योंकि देखो जबतक यह पांच समवाय न मिलेंगे, तब तक जन्म, मरण, खाना, पीना, व्याह (शादी), रोजगार, पुण्य, पापादि कोई कार्य न बनेगा। इसलिये यह पाच समवाय संसारी कार्य और मोक्ष कार्य सबमें ही अपेक्षित है। और चारित्र मार्ग साधनमें केवल इन्हींकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि यह पाच

समवाय निमित्त आदि अपेक्षा कारणमें गिने जायंगे, परन्तु उपादान कारणतो द्रव्यानुयोग ही ठहरेगा। इसलिये हमने इन पांच समवायों को छोड़कर अनुयोग आदिमें ही कार्य, कारण दिखाया हैं। क्योंकि जब अनुयोगोंमें कार्य कारण जिज्ञासु अच्छी तरहसे समझ लेंगे तो इनकी रीति सुगमतासे समझमें आजायगी। जो गुरु आत्मबोधके कराने वाले है वे लोग जैसे कर्ता, कर्म, करण, आदि षट् कारकोंको सर्व वस्तु पर उतार कर बताते है, वैसे ही इन पांच समवायोंका भी पेश्तर ही से जिज्ञासुको अभ्यास करा देते हैं। इसलिये जिज्ञासुको इनके समझनेकी कांक्षा नही रहतो। सो दुःख गर्भित, मोहगर्भित वैराग्य वाले गुरुकुल वासके विना अन्यमतके पंडितोंकी सहायतासे, अथवा अपनी बुद्धि बलसे आचार्योंके अभिप्रायको जाने विना मन-मानी कल्पना करके भव्य जीवोंको अपने जालमें फँसाकर केवल झांझ मजीरा बजवाते है, और अपना आडम्बर लोगोको दिखाते है। उन की कुतर्कका निराकरण करने के वास्ते और भव्य जीवोंका उद्धार होनेके वास्ते उनके जालमें न फँसनेके वास्ते किञ्चित पांचो समवायों का स्वरूप दिखाते हैं, सो प्रथम पांचो समवायोंका नाम कहते हैं। १ काल, २ स्वभाव, ३ नियत, ४ पूर्वकृत ५ पुरुषाकार। अब इन पांचो समवायोंका अर्थ करते हैं कि, कालतो उसको कहते हैं कि जिस काल अर्थात् जिस समयमें जो काम प्रारम्भ करे अथवा होने वाला हो। (स्वभाव) उसको कहते हैं कि जिसमें पलटन पना अर्थात् बदलना हो। (नियत) अर्थात् निमितका मिलना। पूर्वकृत अर्थात् पूर्व उपार्जन किया हुआ सत्तामें हो। (पुरुषाकार) अर्थात उद्यम करना। इस रीतिसे इनका अर्थ हुआ। अब दो चार वस्तुके ऊपर उतार कर दिखाते हैं।

प्रथम खानेके ऊपर पांचो समवायोंको उतार कर दिखाते हैं। कालतो साधारण दोपहर वा शामके वक्त अथवा जिस वक्तमें भूख (क्षुधा) लगे, उस समयको काल कहना। स्वभाव अर्थात् खानेका जिसमें स्वभाव हो, किन्तु जीव मात्र कर्म अर्थात् वेदनीकर्मके प्रसङ्गसे

संसारी जीव मात्रमें क्षुधाका अर्थात् खानेका स्वभाव होता है, अजीव में नहीं। इसलिये क्षुधाका स्वभाव सो ही स्वभाव जानना। तीसरा निमित कहता जो २ कारण रसोई जीमने की थाली, पत्तल, अथवा हाथ आदि पर रखकर खाना, उसका नाम नियत अर्थात् निमित कारण विदून कार्य की सिद्धि नहीं होती हैं। इसलिए तीसरा नियत समवाय हुआ। अब चौथा पूर्वकृत समवाय कहते हैं कि, पूर्व नाम पहिले जन्ममें जो जीवने भोगादि बांधा है उसीके अनुसार उस को प्राप्ति होगा। क्योंकि देखो जो पूर्व जन्ममें उसदिन उसी समय में उसके खानेका संयोग न होगा तो उस वक्त अनेक तरहके विघ्न आकर पड़े होंगे अर्थात् कोई न कोई ऐसा कारण होगा कि उस वक्तमें वह न जीम सकेगा। इसलिये पूर्वकृत समवाय हुआ। अब पांचवां पुरुषार्थ अर्थात् उद्यम करना, क्योंकि जब तक हाथसे कौर (ग्रास) मोहे (मुख) में न देगा और मुखसे अथवा दांतोंसे विगद कर गलेसे न उतारे तब तक वह भीतर न जायगा, इत्यादि क्रियाका करना सो ही पुरुषार्थ है। इसरीतिसे यह पांच समवाय हुए।

इस जगह दुःख गर्भित, मोह गर्भित वैराग्य वाले जिन आगमके रहस्यके अजान तीसरे नियत समवायके ऊपर ऐसी तर्क करेंगे कि नियत नाम निश्चयका अर्थात् भवितव्यताका है ऐसा शास्त्रोंमें लेख है। फिर तुम नियतको निमित कारणमें क्यों मिलाते हो?

तब उनसे कहना चाहिये कि हे भोले भाइयो, कुछ गुरुकुल वासका सेवन करो जिससे तुमको शास्त्रका रहस्य मालूम हो, क्योंकि देखो जब नियत कहता निश्चयको अङ्गीकार करें, तब तो सर्वज्ञ देवका कहा हुआ पूर्वकृत और पुरुषाकार व्यर्थ होजायगा। क्योंकि निश्चय जो वस्तु होने वाली होती तो पूर्वकृत और पुरुषाकारको कदापि सर्वज्ञ देव न कहते। इसलिए गुरूके विना जिनआगमका रहस्य नहीं मालूम होता। यदि स्वतः प्राप्त होता तो जिनधर्ममें इतना कदाग्रह कदापि न चलता और जुदे २ गच्छ आमना बाँधकर अपनी २ जुदी २ कल्पना न करते। इसलिये नियत कहनेसे निमित्त कारण ही मानना

ठीक हैं। इसका कथन विशेष आवश्यक, अथवा स्याद्वाद रत्नाकर, वा नयचक्र आदि ग्रन्थोंमें है सो वहाँसे देखो, और इसी अपेक्षासे श्री देवचन्द्रजीने आगमसारमें पाँच समवायका वर्णन किया है। उस जगह नियतमें निश्चयको छोड़कर समकितको अङ्गीकार किया है सो ही दिखाते हैं, कि प्रथमकाल कहकर चौथा आरा लिया, फिर अभव्यको टालनेके वास्ते स्वभाव लिया, सब भव्योंको मोक्ष न जानेके वास्ते नियत करके समकित नही पाया। फिर श्रीकृष्ण और श्रेणिकके वास्ते मोक्ष न जानेमें पुरुषार्थ अङ्गीकार किया, फिर सालभद्रको पुरुषार्थसे मोक्ष न हुआ तब पूर्वकृत अङ्गीकार किया। इस रीतिसे उस आगमसारमें पाँच समवायका वर्णन है। इसलिये जो आत्मार्थी भव्य प्राणी हो तो वह वाद विवादको छोड़कर अपनी आत्माका कल्याण करे, और सर्वज्ञके वचनको अङ्गीकार करे, संसारसे डरे, झगड़ेमें न पड़े, मुक्ति पदको जायवरे गुरूके वचन हृदयमे धरे, कुगुरुओंका संग परिहरे।

अब गर्भाधानके ऊपर पांच समवायोंको उतारकर दिखाते है कि, काल कहता जो स्त्री ऋतु धर्मपर आकर पांच सात दिन तक गर्भ रहनेका शास्त्रोंमें कहा है। अथवा जिस काल जिस वक्तमें गर्भ रहे सो काल लेना। दूसरा समवाय कहते हैं कि जिस स्त्रीके गर्भ धारणका स्वभाव होगा वही गर्भ धारण करेगी। क्योंकि ऋतु कालतो वन्ध्याके भी होता है। परन्तु उसमें गर्भ धारण करनेका स्वभाव नही हैं। इसलिये वह गर्भवती कदापि न होगी। ३ नियत कहता निमित्त स्त्रीको पुरुषका होना चाहिये। जबतक पुरुषका निमित्त न होगा तब तक भी गर्भाधान न रहेगा। चौथा पूर्वकृत जिसने पूर्व सतान होनेका कर्म उपार्जन किया होगा उसीके संतान अर्थात् गर्भ रहेगा। क्योंकि पुरुषका निमित्ततो वन्ध्याको भी मिलता है परन्तु गर्भ धारण नहीं होता। इसलिये पूर्वकृत चौथा समवाय हुआ। पांचवा पुरुषाकार अर्थात् उद्यम जो २ स्त्रियोंके गर्भ रहेके बाद यत्न कहे हैं सो २ यतन करना उसीका नाम पुरुषाकार हैं।

अब दोनोंके ऊपर पाच समवायोंको उतार कर दिखाते हैं, कि कालतो यह है कि जिस कालमें जो बीज बोई है, और ऋतुमें होनी है, जैसे मोठ, बाजरा, मूंग, जेठ आषाढ़में बोये जाते हैं, और जौ, गेहूं, चना आदि आसोजकार्तिकमें बोये जाते हैं, इसलिये उनको उन्हीं कालमें बोये जाय तो वे बीजें उगती हैं, कदाचित् जेठ आषाढमें जौ, गेहूं बोया जायतो ऋतुके विना यथावत न होय, तैसे ही सर्व वस्तु जिस २ कालमे बोयेसे उगे और यथावत हों उसका वही काल है। अब दूसरा स्वभाव समवाय कहते हैं कि जिस जमीन और जिस बीजमें उगनेका स्वभाव होगा वही वस्तु उगेगी, इसलिये बीजका और जमीनका स्वभाव लेनेसे स्वभाव समवाय बनेगा, क्योंकि जो ऊसर भूमि आदिक होय उसमें बीज गिरे तो कदापि न ऊगेगा, और जो बीज यथावत अर्थात् सड़ा व पुराना अथवा घुना हुआ स्वभाव जिनमें ऊगनेका नहीं है उनको खेतमें गेरनेसे कदापि न ऊगेगा, इस रीतिसे जमीन और बीजमें स्वभाव समवाय हुआ। अब ३ नियत कहना निमित्त कारण पानी, मेंह आदि या वायुका यथावत निमित्त जमीन और बीजको मिले तो वो बीज उसमें उगे, इसलिये तीसरा नियत समवाय हुआ। चौथा पूर्वकृत कहते हैं कि पूर्व नाम पेश्तर जमीनको सस्कार किया होगा क्योंकि जब तक पेश्तर जमीनको हलादिसे जोतकर साफ अर्थात् खातादि संस्कार यथावत न करेगा तो उसमें वस्तु यथावत न होगी, इसलिये पूर्वकृत अवश्य होनी चाहिये। दूसरी पूर्वकृत इस रीतिसे भी कोई घटावे तो घट सक्ती है कि, जो खेती आदिक करने वाले जीव अर्थात् किसानने पूर्व जन्ममें अच्छा कर्म उपार्जन किया होगा तभी उसके पुण्यसे अन्नादि होगा, इस रीतिसे भी कोई घटावे तो घट सक्ता है, परन्तु पहली रीति पूर्वकृतमें यथावत घटती है। अब पाचवा पुरुषाकार समवाय कहते हैं कि उद्यम करना अर्थात् मेंह आदि न बरसे तो कुआ आदिकका पानी देना, अथवा जब बीज उगता है तो उसके साथमें घासादि ऊगता है उसको उखाड़ना, इत्यादि नाना प्रकारका उसमें

उद्यम करना वही पुरुषाकर है, इस रीतिसे खेतीके ऊपर पांच सम्वाय कहें ।

अब विद्या पढ़नेके ऊपर भी पाँच सम्वायोंको उतारते हैं कि, कालतो बुद्धिमानोंको इस जगह ऐसा लेना चाहिये कि जिस वक्त लड़का पढ़ानेके लायक अर्थात् पाँच सात-दस वरषका होजाय, अथवा जिस कालमें जो विद्या पढ़नेका आरम्भ करे उसको काल सम्वाय कहेंगे । अब दूसरा स्वभाव सम्वाय कहते हैं मनुष्य जातिमे ही पढ़नेका स्वभाव है और पशु आदिकोंमें नहीं. इसलिये विद्यामें मनुष्यका ही स्वभाव गिना जायगा। ३ नियत सम्वाय कहते हैं कि नियत कहता निमित्त कारण विद्या अध्ययन करानेवाला गुरू आदि जिस विद्यामें यथावत निपुण होगा उस विद्याको यथावत पढ़ावेगा। अब चौथा पूर्वकृत कहते हैं, जिस जीवने पूर्वजन्ममें विद्याके संस्कार उपार्जन किये होंगे उसी जीवको विद्याध्ययन होगा, क्योंकि देखो सैकड़ो भीलादि ग्रामीण लोग हजारों, लाखों विना विद्याके ही रह जाते हैं, क्योंकि उनके पूर्वकृत नहीं हैं, इस रीतिसे पूर्वकृत सम्वाय हुआ। अब पांचवा पुरुषाकार सम्वाय कहते हैं कि, जो मनुष्य पुरुषाकार अर्थात् उद्यम विशेष करके पठन पाठन वाँचना पूछना परावर्तना आदि वारम्वार करते हैं उनको यथावत विद्या प्राप्त होती है, इस रीतिसे विद्या पढ़नेमें पाँच सम्वाय कहे ।

अब इस जगह ग्रन्थ बढ़जानेके भयसे किंचित् प्रक्रिया दिखाय दीनी है, पन्तु जो इन वातोंके जाननेवाले गुरू हैं वे लोग जिज्ञासुको हर एक चीज पर उतारनेके वास्ते पाँच सम्वायका बोध कराय देते हैं, सो वो यथावत बोध होना गुरुकी कृपा और जिज्ञासुकी बुद्धि और पुरुषार्थसे आप ही होजाता है। कदाचित् पुस्तकोंमें विस्तार भी लिखदें और गुरु यथावत समझाने वाला न मिले तो भी जिज्ञासुको यथावत बोध न होगा, इसलिये जो गुरु यथावत जिन आगमके रहस्यके जानकार हैं वे लोग जिज्ञासुकी परीक्षा करके

आपही यथावत बताते हैं, क्योंकि जब तक वे लोग जिज्ञासुको ग्लानी और रुचि न दरसावें, तब तक उसको यथावत बोध न होगा, इस हेतुसे वे सतपुरुष पेस्तर पदार्थ अर्थात् हर एक चीजमें ग्लानी और रुचि दिखाय कर यथावत बोध कराते हैं, सो इस जगह ग्लानी और रुचिका दृष्टान्त लिखकर दिखाते हैं क्योंकि दृष्टान्तसे द्राष्टान्त यथावत समझमे आजाता है, इसलिये प्रथम दृष्टान्त कहते हैं।

एक साहुकार था उसका लड़का वेश्या गमनमें पड़ गया अर्थात् वेश्या गमन करता था (उसके बापने अनेक उपाय किये और जो उस लड़केके पासमें बैठने वाले अथवा और अड़ोसी पड़ोसी सगे सम्बन्धियोंकी मार्फत उसको समझवाया, परन्तु वो लड़का किसीका समझाया नहीं समझता था, हजारों लाखों रुपया बर्बाद करता था, तब उसके बापने अपने दिलमें विचारा कि यह मेरा पुत्र इस रीतिसे तो न समझेगा, परन्तु इसको वेश्याकी सुहबतमें ग्लानी और इसकी स्त्रीमें इसको रुचि होय तो इसका यह व्यसन छूटे, जब तक इसको वेश्याके सग ग्लानी और अपनी स्त्रीके संग रुचि न होगी तब तक वेश्याका संग कदापि न छूटेगा, ऐसा विचार कर अपने पुत्रसे कहने लगा कि हे पुत्र तू चार छः घड़ी दिन रहा करे उस वक्त सैर करनेको बेशक जाया कर और दुबका चोरी जानेमें लोग बीचवाले धन बहुत खाजाते हैं, इसलिये तेरेको जो शौक अच्छा लगे उस शौकको उजागर करो और किसी तरहकी चिन्ता मत करो, जो तुम्हारेको रुपया खर्चको चाहिये सो रोकड़ियासे ले जाया करो, अपने घरमें रुपया बहुत है ओर इसीके वास्ते इन्सान धन पेदा करता है, कि खाना पीना ऐश मौज करना। सो तुम सब चिन्ताको छोड़कर अपनी इच्छा मूजिब ऐश मौज करो। इत्यादि अपने पुत्रको समझाय कर और आप उसको ग्लानी उपजानेके उद्यममें लगा। इस रीतिकी बातें पुत्रने सुनकर गुप्तपनेसे जो वेश्याओंके यहां जाता था सो उजा-गार जाने लगा, और कोई तरहकी चिन्ता न रही, और जब शामका

वक्त होय तव उसका पिता कह दिया करे कि अव तुम्हारा सैर करनेका वक्त होगया सो तुम जाओ, इस रीतिसे कुछ रोज बीतनेके वाद एक दिन साहूकार अपने लड़केसे कहने लगा कि हे पुत्र ! कुछ आज दुकान पर काम है सो इसके वदले में प्रातःकाल सैर कर आना, आज इस वक्त न जायतो अच्छी वात है, इतना वचन अपने पिताका सुनकर वो कहने लगा आज इस वक्त नहीं जाऊंगा शुवह चला जाऊंगा। फिर वह दूकानका काम काज करता रहा, जिस वक्तमें प्रातःकाल दो घड़ीका तड़का रहा उस समय उसके पिताने उसे जगाकर कहा कि, हे पुत्र ! कल तू शामके वक्त नहीं गया था सो इस वक्त जाकर अपना शौक पूराकर, तव वो लड़का घरसे वेश्याके यहां गया। इधर उस साहूकारने उस लड़केकी स्त्रीसे कहा कि, तू अपना श्रृङ्गार करके अपने घरमें अच्छी तरहसे वैठ जा और तेरा पती वाहरसे आवें उस वक्तमें तू उसका अच्छी तरहसे सत्कार आदि विनय पूर्वक वात चीत करना। इस रीतिसे समझा कर साहूकार तो अपने और धन्धेमें लगा। उधरमें जो साहूकारका पूत्र वेश्याओंके घरमें गया तो उस समय वेश्याओंको पलङ्गके ऊपर सोती हुई देखीतो कैसा उनका ढङ्ग हो रहा था उसीका वर्णन करते हैं कि, शिरके केश तो विखरे (फैले) हुये थे, आंखोंसे गीड़ आय रही थी, कज्जल आंखोंमें लगा हुआ ढलका था, उससे मुंह काला हो गया था, होठ पर पान खानेसे फेफडी जमी हुई थी, दांत पीले खराव लगते थे, इस रीतिका उन वेश्याओंका रूप देखकर डांकिनके समान चित्तमें ग्लानी उत्पन्न होगई और विचारने लगा कि छी २ छी हाय, हाय कैसा मैंने लोगोंमें अपना नाम वदनाम कराया और हजारों लाखों रुपया वर्वाद (नष्ट) करे, परन्तु मेरेको आज मालूम हुआ कि इनका रूप ऐसावुरा भयङ्कर है, केवल शामके वक्तमें ऊपरका लिफाफा वनायकर मेरा माल ठगती थी, ऐसा विचारता हुआ वहांसे चलकर अपने घरमे आया, उस वक्त उसकी स्त्री सामने खड़ी हुई, नजर आई, उस वक्त उस लड़केने अपनी स्त्रीके स्वरूपको देखकर चित्तमें आनन्दको प्राप्त

हुआ और कहने लगा कि देखो मैंने ऐसी स्वरूपवान् स्त्रीको छोड़कर उन डाँकिनोके पीछे अपने हजारों लखों रुपये वर्वाद (नष्ट) कर दिये और कुछ आगे पीछेका विचार न किया, खैर हुआ सो हुआ अबमैं कदापि उनके घर पर न जाउंगा, अपने घरमें जो स्त्री है उसीसे दिल लगाऊंगा, नाहक लोगोंकी बदनामी न उठाऊंगा, अपना रुपया नाहक न गमाऊंगा, पिताकी आज्ञा सिरपर उठाऊंगा । इत्यादि नाना प्रकारके विचार करता हुआ अपने दुकानदारीके कार व्यवहार करता रहा । फिर जब शामका वक्त हुआ, तो उसका पिता कहने लगा कि हे पुत्र तेरा सैर करनेका वक्त हो गया अब तू जा । तब वह लड़का इस वचनको सुनकर चुप होगया और कुछ न बोला, थोड़ीसी देरके बाद फिर उस साहूकारने कहा तबभी वो लड़का न बोला, फिर थोड़ी देरके बाद तिसरी बार फिर भी उस साहूकारने अपने पुत्रसे कहा, तब वो लड़का कहने लगा कि हे पिताजी आप मेरेसे बार २ कहतेहो मेरेको शरम आती है क्योंकि उस जगहसे मेरेको ग्लानी उत्पन्न होगयी, इसलिये उस जगह जानेका मेरा चित्त कदापि न होगा, मैं उस जगह कदापि न जऊंगा, अपनी स्वस्त्रीसे ऐस मौज उड़ाऊंगा । इस रीतिसे उस साहूकारके लड़केका वेश्यागमन छूट गया, और अपने घरके रोजगार हाल धन्धेमें निपुण होकर अपने घरका कार व्यवहार करने लगा, इसरीतिसे यह दृष्टान्त हुवा ।

अब द्राष्टान्त कहते हैं कि जैसे उस साहूकारके लडके को पेश्तरतो सब लोगोंने वेश्याके यहाँ जानेको मना किया परन्तु किसीका कहना उस लड़केने न माना, तब उसके पिताने विचार कर उसको मना न किया, और वेश्वाओं की बुराई दिखानेका उपाय किया था, और जब उस लड़केको उन वेश्वाओंकी बुराई बैठकर ग्लानी उत्पन्न होगई तब उसके पिताने उसको जानेकी आज्ञा भी दी परन्तु तो भी वेश्वाओंके यहाँ फिर न गया। इसीरीतिसे जो वर्तमान कालमें यथावत जैन आगमका रहस्य नही जानने वाले पदार्थ को ग्लानी विदुन त्याग पचखान कराते हैं वे लोग जिज्ञासुओं को विश्वास हीन करके त्याग

पच्चखानोसे उलटा भ्रष्ट कर देते हैं, परन्तु जो जिनआगमके रहस्यके जानकार आत्मार्थी सतपुरुष हैं वे लोग जैसे उस साहूकारने अपने पुत्रको वेश्याओं को बुराई देखाकर उसका वेश्यागमनपना छुड़ा दिया, तैसेही जो सतपुरुष उपदेश देने वाले हैं, वे भी जिज्ञासुओंको पदार्थकी बुराई दिखायकर उन पदार्थोंका त्याग कराते हैं, तब वे जिज्ञासु पदार्थ की बुराई जानकर यथावत त्याग पच्चखानोंको विश्वास सहित पालते हैं, और जिन धर्मके रहस्य को पायकर अपनी आत्माका कल्याण करते हैं।

पदार्थोंका वर्णन।

अब इस ग्रन्थमें पेश्तर पदार्थोका निरूपण करते हैं कि, जगत्मे कितने पदार्थ हैं और कौन २ पदार्थमें जिज्ञासु रुचि करे और कौनमें ग्लानी करे, इस हेतुसे प्रथम सामान्य स्वभाव जो कि श्री सर्वज्ञ देव वीतरागने कहे हैं उसीके अनुसार निरूपण करते हैं। सो सामान्य स्वभाव छ. हैं उन्हींका नाम कहते हैं। १ अस्तित्वं, २ वस्तुत्वं, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्वं, ५ सत्यत्वं, ६ अगुरु लघुत्व । यह सामान्य स्वभाव हैं। इनको सामान्य स्वभाव इसलिए कहा है कि यह छवों स्वभाव सर्व जगह अर्थात् जगत्मे जो पदार्थ वा द्रव्य हैं उन सबों में यह छओं स्वभाव पाये जावें। ऐसी वस्तु जगतमें कोई नहीं है कि जिसमें यह छओं न मिलें अर्थात् मिलेही। इसलिये इनको सामान्य स्वभाव कहा। दूसरा इस सामान्यके कहनेसे विशेष की कांक्षा रहती है, इस कांक्षाके भी जतानेके वास्ते इनको सामान्य स्वभाव कहा।

(शका) इन छओं सामान्य स्वभावमें पेश्तर अस्तित्वं क्यों कहा पेश्तर वस्तुत्वं अथवा द्रव्यत्व ऐसाही नाम क्य न कहा।

(समाधान) पेश्तर अस्तित्वं कहनेसे जिज्ञासुको कांछा होती हैं कि इसको अस्तित्वं क्यों कहा, इस हेतुसे

पेश्तर अस्तित्वं कहा. दूसरा इस अस्तित्वं कहनेसे सर्वज्ञ देवका यही अभिप्राय है कि नास्तिक मतका निराकरन होगया इस हेतुसे पेश्तर अस्तित्वं शब्द कहा । दूसरा वस्तुत्वं कहनेसे वस्तुका प्रतिपादन किया, जब वस्तु कहनेसे जिज्ञासुको कांक्षा हुई कि वस्तु क्या चीज हैं. जिस के वास्ते द्रव्यत्वं शब्द, कहा । द्रव्यत्वंको स्वतह सिद्ध न होनेसे प्रमेयत्वं कहा । प्रमेयत्वंके कहनेसे प्रमाण की कांक्षा होगई जब प्रमाणसे प्रमेय सिद्ध हुआ तो फिर जो जगतको मिथ्या मानने वाले हैं उनका निराकरन करनेके वास्ते और जगतकी सत्यता ठहरानेके वास्ते सत्यत्वं कहा । इस सत्यत्वमे जो हमेंशा उत्पाद, वय होता है इसलिये अगुरु लघुत्वं अर्थात् षट्गुण हानि वृद्धि उत्पाद वय रूप अगुरु लघुत्वं कहा, इसरीतिसे यह छ. सामान्य स्वभाव कहे । अब अस्तित्व रूपजो जगत उसको क्रमसे प्रतिपादन करते हैं ।

१ अस्तित्वं ।

प्रथम अस्तित्व शब्दका अर्थ करते हैं कि, जो जगत् अर्थात् लोकाकाशमें जितने पदार्थ वा द्रव्य हैं (जिनके नाम हम आगे कहेंगे) सो पदार्थ अस्ति रूप हैं अर्थात् कभी उनका नाश न होय, क्योंकि देखो इस जगत्में जितने पदार्थ हैं वो कब उत्पन्न हुवे ऐसा कभी नहीं कह सक्के, अथवा कभी नष्ट हो जायगे सो भी नहीं कह सक्के, इसलिये जो जगतमें पदार्थ हैं वे सदाकाल जैसेके तैसेही बने रहेंगे, इसलिये सर्वज्ञ देव वीतरागने उन पदार्थोंको अस्तिरूप कथन किया, इस अस्तिपनेसे नास्तिक मतका निराकरन होगया ।

२ वस्तुत्वं ।

दूसरा वस्तुत्व स्वभावका अर्थ करते हैं कि, जो जगतमें पदार्थ हैं वो एक जगह इकट्ठे अर्थात् आपसमें अनादि संयोग सम्बन्धसे मिले हुये इसलोकमें है (जिनके नाम हम आगे कहेंगे), वो पदार्थ अपने गुण, पर्याय, प्रदेश आदिकोंकी सत्ता लिये हुये अपने स्वभावमें रहते हैं, दूसरे पदार्थमें मिले नहीं, इसलिये उसमें वस्तुत्वपना हुआ । जो आपस

में माहु माही मिलकर एक होजाय उसको जुदा नहीं कह सक्ते, इस लिये इस जगत्में उन पदार्थोंकी जुदी २ सत्ता और स्वभाव अथवा क्रिया और लक्षण जुदा २ होनेसे वो आपसमें सव जुदे ही हैं, इसलिये उनको वस्तुत्व कहा। क्योंकि देखो लौकिकमें भी जिस वस्तुका गुण, स्वभाव जुदा २ देखते है उन २ वस्तुओंको जुदा २ ही कहते हैं, इस-लिए सर्वज्ञदेव वीतरागने भी जुदा २ गुण स्वभाव देखकर जुदी २ वस्तु कहनेके वास्ते 'वस्तुत्व', इस शब्दको कहा।

३ द्रव्यत्वं।

अव तीसरा द्रव्यत्व शब्दका अर्थ और पदार्थों का नाम, लक्षण, प्रमाण आदि युक्तिसे शास्त्र अनुसार किञ्चित दिखाते हैं, सो प्रथम द्रव्यत्वका अर्थ करते हैं कि द्रव्य कितने हैं और द्रव्यका लक्षण क्या है, सो पेश्तर लक्षण कहकर द्रव्योंके नाम कहेंगे। इस जगह प्रश्न, उत्तरसे पाठकगण समझे (प्रश्न) या शङ्का वादीकी तरफसे और (उत्तर) या समाधान शिद्धांती की तरफसे जान लेना।

(प्रश्न) आप द्रव्यका लक्षण कहते हो फिर उस लक्षणका भी लक्षण कहना पड़ेगा और फिर उस लक्षणका भी लक्षण पूछेगा तो फिर इस रीतिसे पूछते २ आवस्ता दोष होजायगा, इसलिये लक्षण ही नहीं वनता तो फिर लक्ष कहांसे वनेगा।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय अभी तुम्हारेको पदार्थोंके कहने-वाले गुरूका संग नहीं हुआ दीखे, इसलिये तुम्हारेको ऐसा अनावस्था दोषका सन्देह हो रहा है, इस तुम्हारे सन्देह दूर करनेके वास्ते लक्ष-णका स्वरूप कहते हैं कि जो आचार्य्य लक्षण करते हैं उस लक्षणका क्षलण अर्थात् निकृष्ट रहस्य यह है कि, आचार्य्य प्रथम ही अति व्याप्ति, अथवा अव्याप्ति वा, असम्भवादि यह तीन दूषण करके रहित जो लक्षण उसको यथावत लक्षण कहते हैं, इसलिये फिर जिज्ञासुको लक्षणका लक्षण पूछने की कांक्षा ही नही रहती। इसलिये अव तुम्हारेको तीनों दूषणोंका स्वरूप दिखाते हैं, कि अति व्याप्ति

उसको कहते हैं कि, किसी चीजका लक्षण कहा और वो लक्षण लक्षको छोड़कर अन्य चीजमें चला जाय, उसको अति व्याप्ति कहते हैं। और अव्याप्ति उसको कहते हैं कि जिसका लक्षण कहे उस लक्षको सम्पूर्णको न समेटे अर्थात् इकट्ठा न करे, एक देश रहकर अपने सजाती लक्षको छोड़ देय, उसका नाम अव्याप्ति है। तीसरा असम्भव उसको कहते हैं, कि किसीका लक्षण किया उस लक्षणका अन्श लक्षमें किंचित् भी न आया, लक्षण कह दिया और लक्षका पता भी नहीं, इसलिए इसको असम्भव दूषण कहा। अब इन तीनों दूषणोंका दृष्टान्त भी देकर दिखाते हैं, कि जैसे गऊ (गाय) का लक्षण किसीने किया कि सींग वाली गऊ होती है जिसके सींग होगा वो गाय है। इस लक्षणसे अति व्याप्ति हो गई, क्योंकि देखो सींग भैंसके भी होता है, और बकरीके भी होता और सींग हिरनके भी होता है, जो सींग वाले पशु हैं उन सबमें लक्षण चला गया, केवल गायमे न रहा, इसलिये इसको अति व्याप्ति दूषण कहा। दूसरा किसीने गऊका लक्षण कहा कि "नीलत्व गोत्व" नील रङ्गकी गाय होती है, जब इस लक्षणसे अव्याप्ति होती है, क्योंकि देखो गाय सफेद भी होती है, गाय पीली भी होती है और गाय लाल भी होती है, तो वो भी लक्षण गायका सर्व गऊरूप लक्षको न बताय सका, इसलिये एक देश होनेसे अव्याप्ति रूप दूषण होगया। अब असम्भव दूषण इस रीतिसे होता है, कि किसी चीजका लक्षण किया और उस लक्षणका एक अश भी लक्षमें न पहूंचा' क्योंकि देखो किसीने कहा कि (एक सापत्वं गोत्व) अर्थात् एक खुरवाली गऊ होती है, तो देखो एक खुर गधा वा घोड़ाके होता है, गायके तो एक पगमें दो खुरी होती है, इसलिये गायमें लक्षणका संभव न हुआ, इसलिये इसलक्षणको असम्भव कहा। इन तीनों दूषणोंसे रहित गायका क्या लक्षण होता है सो ही दिखाते हैं कि, लक्षणका कहने वालाबुद्धिमान पुरुष गायका लक्षण इस रीतिसे कहेगा कि (सासनादि मत्वे सतीसिगत्व लांगत्वं गोत्वं) अर्थात् सासन अर्थात् गलेका चमड़ा लटके और सींग जिसके होय और

पूंछ होय उसका नाम गऊ है। इस लक्षणसे गायका लक्षण यथावत हो गया, क्योंकि देखो गायके गलेमे ही चमड़ा लटकता है और किसी बकरी, भैंस, हिरन आदि पशुके गलेमें चमड़ा नही लटकता, इसरीतिसे जो विद्वान पुरुष हैं वे लक्षणको कहकर जिज्ञासुके वास्ते लक्षको यथावत बताय देते हैं। इसलिये लक्षणका कहना अवश्यमेव सिद्ध हो गया, विना लक्षणके लक्षकी प्रतीत कदापि न होगी। इस रीतिसे आचार्य्य प्रथम लक्षणका स्वरूप कहते हैं। इसलिये तुमने जो अन अवस्था आदि दूषण लक्षणमें दिया सो न बना और हमारा लक्षणका कहना सिद्ध होगया सो अब लक्षण कहते हैं।

(द्रवती द्रव्यं) अर्थात् जो द्रावण चीज होय उसका नाम द्रव्य है। ऐसा लक्षणतो नैयायिक वैशेषिक आदि ग्रन्थोंमें कहा है सो वहाँसे देखो।

अब जैन मतकी रीतिसे द्रव्यका लक्षण कहते हैं (गुण परियाय वत्व इति द्रव्यत्वं) अथवा (क्रिया कार्यत्व इति द्रव्यत्वं) अथवा (उत्पादव्यय किंचित् ध्रुवत्वं इति द्रव्यत्वं) शास्त्रोंमें तो और भी लक्षण कहे हैं, परन्तु जिज्ञासुको इतनेसे ही बोध हो जायगा, और ज्यादा लक्षण कहनेसे ग्रन्थ भी बहुत बढ़ जायगा, इसलिए इन तीन लक्षणोंका अर्थ दिखाते हैं। प्रथम लक्षणका अर्थतो यह है, कि गुण पर्यायका भाजन अर्थात् जिसमें गुण पर्याय रहे उसका नाम द्रव्य है, क्योंकि गुणीको गुण छोड़कर कदापि अलग नही रहता और गुणके विना गुणी भी नहीं कहा जाता, इसलिये गुणका जो समूह सो ही द्रव्य हुआ, इसका विशेष अर्थ आगे कहेंगे। अथवा क्रिया करेसो द्रव्य, इसलिये क्रियाकारित्व द्रव्यका लक्षण कहा। अथवा 'उत्पादव्यय ध्रुव' इसका अर्थ ऐसा है कि उपजना और विनसना और किंचित ध्रुव रहना सो सदा द्रव्यमें होरहा है। जिसमें उत्पादव्यय न होय वो द्रव्य नहीं, इस उत्पादव्यय लक्षणका विशेष कथन आगे कहेंगे।

अब इस जगह श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने मुख्य करके दो राशि अर्थात् दो पदार्थ कहे हैं, अथवा इन्हीको दो द्रव्य कहते हैं, फिर जिज्ञासु के समझानेके वास्ते इन दोनों पदार्थोंके और भी भेद किये हैं सो प्रथम

दो पदार्थोंका नाम लिखते हैं, एकतो जीव पदार्थ, दूसरा अजीव पदार्थ, अब जीव पदार्थका तो कोई भेद है नहीं और अजीव पदार्थके चार भेद तो इसरीतिसे हैं, कि आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय ओर पुद्गलास्तिकाय, यह चारतो मुख्य द्रव्य हैं, और कालको उपचार से जिज्ञासुको समझानेके वास्ते पाँचवा द्रव्य माना हैं, इसरीतिसे अजीवके पांच भेद कहे और छठा भेद जीवका इसरीतिसे छः भेद अर्थात् छः द्रव्य जिन आगममें कहे हैं, इसरीतिसे इन छओं द्रव्योंके नाम कहे।

अब इस जगह वादी प्रश्न करता है (प्रश्न) तुमजो छः पदार्थ मानते हो सो स्वतह सिद्ध हैं अथवा किसी प्रमाणसे

(उत्तर) स्वतह सिद्धतो कोई पदार्थ बनता हैं नहीं, क्योंकि प्रमाणके विदून कोई अङ्गीकार नहीं करता इसलिये जो पदार्थ ऊपर लिखें हैं वो प्रमाणसे सिद्ध हैं।

(प्रश्न) जो प्रमाणसे सिद्ध हैं तो वह प्रमाण इन पदार्थोंके अन्त रगत हैं या इनसे जुदा हैं, जो तुम कहो कि जुदा हैं तो तुम्हारे वीत-राग सर्वज्ञ देवने छः द्रव्य माने हैं, उनका मानना ही असङ्गत होगया, क्योंकि प्रमाण सातवाँ पदार्थ अलग ठहरा, क्योंकि वो जो अलग होगा तभी उन छः पदार्थोंको सिद्ध करेगा, इसलिये तुम्हारे माने हुए पदार्थ न बने, कदाचित् उस प्रमाणको छ. द्रव्योंके अन्तरगत मानोगे तो वो भी प्रमेय होजायगा, तबतो वो प्रमाण भी प्रमेय होगया तो फिर उसके वास्ते तुमको कोई और प्रमाण मानना होगा, तब वो प्रमाण भी तुम्हारे माने हुए पदार्थोंके अन्तरगत होगा और वो भी प्रमेय ठहरा और इस रीतिसे प्रमाणके वास्ते प्रमाण जुदा २ मानें तो अनावस्ता दूषण हो जायगा, और माना हुआ प्रमाण माने हुए पदार्थोंके अन्तर्गत हुआ तो वो भी प्रमेय हो गया जो वो प्रमाण भी प्रमेय होगया तो फिर तुम्हारे माने हुए पदार्थ किससे सिद्ध करोगे क्योंकि जो प्रमेय होता है वो प्रमाण नहीं होता, क्योंकि देखो चक्षुका घट विषय है तो चक्षु घटको विषय करता हैं अर्थात् देखता है, इसलिये घट प्रमेय है और चक्षु

प्रमाण हैं, इसलिए घट प्रमेय हुआ, तो प्रमेय जो घट वा चक्षु को पदा करे ऐसा कदापि न बनेगा, इसलिए तुमने जो प्रमाण माना वह तो तुम्हारे माने हुए पदार्थोंके अन्तरगत होनेसे प्रमेय होगया, इसलिये वो तुम्हारा प्रमाण न बना, तो तुम्हारे माने हुए पदार्थ अप्रमाणिक ठहरे, अप्रमाणिक होनेसे कोई पुरुष बुद्धिमान अङ्गीकार न करेगा।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय यह तुम्हारा प्रश्न कोई प्रबल युक्ति वाला नही किन्तु बालोंकी तरह हैं, क्योंकि अभी तुम्हारेको प्रमाण और प्रमेयकी खबर नहीं हैं, इसलिये तुम्हारी बुद्धिमत्तासे शुष्क तर्क उत्पन्न होतो है, इसलिये तुम्हारेको प्रमाणका लक्षण सहित समभाय कर तुम्हारा सन्देह दूर करते हैं कि, एकतो प्रमेय ऐसा है कि प्रमाण रूप होकर आपही प्रमेय होता है दूसरा केवल प्रमेय रूप है। जो प्रमाण प्रमेय रूप है वो पहले अपनेको प्रकाश अर्थात् जानकर पश्चात् दूसरे प्रमेयको जानता है, क्योंकि जो स्वय प्रकाश होगा वही परको प्रकाश करेगा, इस हेतुसे ही श्री वीतराग सर्वज्ञने कहा है सो ही दिखाते है कि, "प्रमाण नय तत्वालोक अलङ्कारके प्रथम परिच्छेदमे प्रथम सूत्र ऐसा है, (स्वय पर व्यवसाई ज्ञानंप्रमाण") इस सूत्रका अर्थ ऐसा है कि, स्वय नाम अपना, पर नाम दूसरेका, व्यवसाई कहता निश्चय करना अर्थात् निःसन्देह जानना, ऐसा जा ज्ञान उसोका नाम प्रमाण है इसलिये सर्वज्ञ देव वीतरागने पेश्तर जीव द्रव्यको कहा सो वह जीव द्रव्य प्रमाण और प्रमेय रूप है। क्योंकि जीव अपने ज्ञानसे प्रथम आपको जानता है पीछे अजीव प्रमेयको जानता है, क्योंकि जो स्वयं प्रकाश होगा वही परको प्रकाश करेगा, जैसे सूर्य पेश्तर अपनेको प्रकाश करता है, पश्चात् दूसरेको प्रकाश करता हैं। तैसेही जीव द्रव्य भी पहले अपनेको प्रकाश कर पश्चात् दूसरेका प्रकाश करता है, इसलिये पदार्थ प्रमाणसिद्ध होगये। जब प्रमाणसिद्ध हुए तो प्रमाणीक ठहरे, इसलिये तुमने जो अप्रमाणीक ठहराये सो सिद्ध न हुए किन्तु प्रमाणीक ठहरे। जब पदार्थ प्रमाण सिद्ध होगये तो अब इनका वर्णन अवश्यमें करना उचित ठहरा, इसलिये द्रव्योंका वर्णन करते हैं

कि कितने द्रव्य हैं सो प्रथम द्रव्योंके नाम कहते हैं, कि जीव द्रव्य अर्थात् जीवास्तिकाय, धर्मद्रव्य अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मद्रव्य अर्थात् अधर्मास्तिकाय, आकाशद्रव्य अर्थात् आकास्तिकाय, पुद्गलद्रव्य अर्थात् पुद्गलास्तिकाया, कालद्रव्य, इस रीतिसे यह छद्रव्य कहे।

(प्रश्न) पाच द्रव्यतो अस्ति काय कहे और कालको अस्ति कायक्योंन कहा।

(उत्तर) पाच द्रव्यतो अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशवाले हैं इसलिये उनको अस्तिकाय कहा , और कालमें प्रदेशादिक है नही इसलिये कालको अस्तिकाय न कहा, दूसरा कालद्रव्य जिज्ञासुके समझानेके वास्ते उपचारसे द्रव्यमान है, क्योंकि उत्पादवयकाही नाम काल है, सो उत्पादव्य ऊपर लिखे पाचद्रव्योंमें ही होती है इसलिये काल द्रव्यको अस्तिकाय न कहा। और इस काल द्रव्यकी मुख्यता और उपचारके ऊपर विशेष चर्चा हमारा किया हुआ "स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर" तीसरे प्रश्नके उत्तरमें विशेष करके लिखी है, सो जिसकी खुशी होय सो वहासे देखलेय ग्रन्थ बढ़जानेके भयसे इस जगहन लिखा, अब इस जगह द्रव्योंका विशेष विचार करनेके वास्ते एक एक द्रव्यका गुण, पर्याय प्रदेशादि अलग २ कहते हैं।

जीवास्तिकाय।

प्रथम जीव द्रव्यकालक्षण कहते हैं कि (चेतना लक्षणों ही जीवा.) अर्थ-चेतन अर्थात् ज्ञान स्वरूप है जिसका उसका नाम जीव है, यह सामान्य लक्षण हुआ, अब विशेष लक्षण भी जीवका कहते है "नाणंच दंसण चेवा चारितंच तवोतहा वीर्य उवेगोयं येव' जीवस्स लक्षणं" अर्थनाण कहता ज्ञान, दर्शन कहता देखना, चारित्र कहता त्याग, तप कहता तपस्या, वीर्य कहता बल, (प्राक्रम शक्ति) उपयोग, येछः लक्षण जिसमें होय वो जीव है। इस रीतिसे जीवका लक्षण कहा। अब इसके गुण कहते हैं कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अनन्त वीर्य, ये चार मुख्यगुण हैं और अक्रिय,

अचल, अविनाशी, अरूपी आदिक अनेक गुण हैं, परन्तु इस जगह मुख्यतामें जो गुण थे उन्हीका वर्णन किया है, अब पर्याय कहते हैं कि १ अव्यावाध, २ अनवगाह, ३ अमूर्तिक, ४ अगुरु लघु, यह चार पर्याय मुख्य हैं, वाकी जैसे गुण अनेक हैं तैसे पर्याय भी अनेक हैं। और एक जीवके असंख्य प्रदेश हैं। इस रीतिसे जिन आगममें जीव द्रव्यका स्वरूप कहा है।

(प्रश्न) आपने जो जीवका लक्षण कहा है सो सामान्य लक्षण तो हरएक जीवमें मिलता है, परन्तु विशेष करके जो जीवके छः लक्षण कहे वोछः लक्षण एकेन्द्री आदिक जीव अर्थात् जिसको थावर कहते हो उसमें येछः लक्षण नहीं घट सक्ते, इसलिये जीवका जो लक्षण कहा सो सिद्धन हुआ, क्योंकि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पती, इन पांचोमें जीवके छः लक्षण नही घटसक्ते, क्योंकि ये जड़-पदार्थ हैं, और आपने ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयाग ये छः लक्षण जीवमें माने हैं और ये छ.ओं लक्षण वनस्पति आदिकमें नही घट सक्ते, इसलिये जिसका लक्षणही न वना उसका गुण, पर्याय कहना ही व्यर्थ है। दूसरा जो आपने पहलेतो जीव द्रव्य कहा, फिर गुण कहा, फिर पर्याय कहा, तो तुम्हारे शास्त्रोंमें अर्थात् जिन मतमें द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोहो कहे हैं, गुणार्थिकतो कहा नहीं, इसलिये गुणका कहना व्यर्थ हुआ। यदि उक्तं (दव्व नया पज्जव नया) ऐसा शास्त्रोंमें कहा है, इसलिये गुणका कथन करना ठीक न ठहरा। तीसरा एक जीवके असंख्य प्रदेश कहे सो भीठीक नहीं, क्योंकि प्रदेश अर्थात् अवयववाली वस्तुनाशवान अर्थात् सदा नही रहती, इसलिये प्रदेशवाला अर्थात् अवयवी जीवमानोगे तो वो जीव अनादि अनन्त न वनेगा, किन्तु नाशवाला हो जायगा। इसलिये जीवके प्रदेश कहना भीव्यर्थ है, क्योंकि जीवतो निर्अवयवी है। इस रीतिसे जो तुमने जीवका प्रतिपादन किया सो लक्षण गुण प्रदेशादि कथन करना व्यर्थ है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय यह तुम्हारी शुष्क तर्क विवेकविना

पक्षपातसे है, सो तुम्हारेको आत्माके कल्याण की इच्छा है तो विवेक सहित बुद्धिसे विचार करो कि जो हमने जीवके छः लक्षण कहे हैं. वेछः लक्षण अपेक्षा सहित यथावत पांचोथावरोंमें घट सक्ते हैं, जोनिर्पेक्ष होकर विवेकसुन्य बुद्धिका विचार न करे और पक्षपातको द्रढ़ करके प्रतिपादन करे, उस पुरुषको तो येछः लक्षण जीवमें नदीखे, क्योंकि मिथ्यात्वरूप अज्ञानके जोरसे यथावत वस्तुका स्वरूपनही दीखता, सो इस अज्ञानसे न दीखनेके ऊपर एक द्रष्टान्त दिखाते हैं कि, जैसे कोई पुरुष धतूरेके बीज भक्षण (खाय) करले और उसके नशेमें सफेद वस्तुको भी वो नशेवाला पुरुष पीली देखता है और जो उसे कोई कहे दूध, शंख, चांदी आदिक सफेद हैं तो वो किसीका कहना नहीं माने और उसको पीलोही कहता है, अथवा कोई पुरुष मदिरा (दारू पान) पी करके उन्मत्त होकर नशेके जोरसे मा, वहिन, वेटी, भगिनी, किसीको नहीं पहचानता और कामातुर हो करके उन स्त्रीयोंके पीछे भागता है। तैसेही मिथ्यात्व रूप अज्ञानके वश-होकर सर्वज्ञ देव वीतरागका स्याद्वादरूप यथावत कथनको नही समझ सक्ता। क्योंकि जवतक अपेक्षाको नहीं समझेगा तवतक इस स्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य यथावत मालूम न होगा। इसलिये जो लक्षण हम ऊपर लिख आये हैं वोलक्षण जीवमें यथावत घटते है, परन्तु विवेक सुन्य होकर पक्षपातसे जो कोई विचारते हैं, उनको तो यथावत मालूम न होगा, क्योंकि रागद्वेष और निर्पेक्षताके जोरसे मालूम नहीं होता, परन्तु विवेक सहित बुद्धिसे विचार करनेवाले पुरुषोंको अपेक्षा सहित विचार करनेसे ऊपर लिखे हुए लक्षण यथावत प्रतीत देते हैं। इसलिये किञ्चित् विवेकी पुरुषोंके विचार योग्य ऊपर लिखे लक्षणोको युक्ति सहित पाच थावरोंमेंसे वनस्पती कायके ऊपर उतारकर दिखाते हैं।

प्रथम ज्ञान लक्षणको घटायकर दिखाते हैं, कि जिससे सुख दुखः की प्रतीति अर्थात् सुख दुख जाना जाय उसका नाम ज्ञान है तो विवेक सहित बुद्धिका विचार करनेवाले जो पुरुष हैं वे लोग उस

वनस्पति अर्थात् दरख्तों को देखते हैं तो प्रतीति होती है, कि दुःख सुखका भान इनको है, क्योंकि जब सीत (जाड़ा) आदिक अथवा कोई प्रतिकूलता पहुंचनेसे उनकी उदासीनता अर्थात् कुमलानापना मालूम होता है, और जब जल आदिककी वृष्टि अथवा और कोई अनुकुल पदार्थ उन दरख्तोंको मिलनेसे वे वनस्पतीके दरख्त प्रफुल्लित शोभायमान मालूम देते हैं. इसलिये उनमें किञ्चित् ज्ञान है, इस अपेक्षासे देखनेसे पांच थावरोंमे ज्ञान भी अव्यक्त स्वरूप प्रतीति देता है।

दूसरा दर्शनका लक्षण कहते है कि जिनमतमें चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन ये दो भेद कहे हैं. तिसमें अचक्षु दर्शन उन पंचथावरमें है, इस रीतिको अपेक्षासे दर्शन भी बनता है। दूसरा सामान्य उपयोग अर्थात् थोड़ासा बोध होना उसका भी नाम दर्शन है, और विशेष बोध होना सो ज्ञान है, इस रीतिसे भी दर्शन सिद्ध होता है। तीसरी एक अपेक्षा और भी हैं. कि जिसको जिस चीजमे श्रद्धा होती है उसका भी नाम दर्शन है, तो पंच थावरोंमें दु.ख सुखकी श्रद्धा अर्थात् जब सुख. दुःख प्राप्ति होता है उसवक्त वेद अनुरूप श्रद्धा उन पंच थावरोंको भी होती है इस रीतिसे पञ्च थावरोंमें दर्शन भी सिद्ध हुआ।

तीसरा लक्षण चारित्र कहते हैं कि चारित्र नाम त्यागका है, क्योंकि (चरगति भक्षणयो) धातुसे चारित्र सिद्ध होता है, तो भक्षण अर्थात् कर्मों का क्षय करना सो कर्मोंका क्षय दो रीतिसे होता है, एकतो सकाम निर्ज्जरासे, दूसरा अकाम निर्ज्जरासे, सो सकाम निर्ज्जरासे तो कर्म क्षय समगतिके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सक्ता और अकाम निर्जरासे कुलजीव कर्म क्षय करते हैं क्योंकि जो कर्मक्षय नही होयतो जिस योनि जिस गतिमें जो जीव प्राप्त हुआ है, उस योनि, उस गतिसे कदापि न निकल सकेगा। इसलिये उस योनि. गतिसे अकाम निर्जराके ज़ोरसे कर्मक्षय करके दूसरी योनि गतिको प्राप्त होता है. इस रीतिसे पंचथावरमें भी चारित्र सिद्ध हुआ। अब दूसरी अपेक्षा इस चारित्रके घटानेमें और भी है सो ही दिखाते हैं, कि चारित्र नाम त्यागका है. तो त्याग दो प्रकारका

है, एकतो अनमिली वस्तुकात्यागी, दूसरा मिली हुई वस्तुको त्याग करता है. सो मिली वस्तुका त्याग करने वालातो अति उत्तम है, परन्तु जो वस्तु की इच्छा है और वो न मिले उसको भी कोई अपेक्षासे त्यागी कहेंगे, इसी रीतिसे पंचथावरमें भी जो जीव रहने वाले हैं उन जीवोंके अनुकूल वस्तुका न मिलना सोभी किञ्चित् अपेक्षासे त्याग है, इस रीतिसे चारित्र भी अपेक्षासे सिद्ध हुआ।

चौथा तपभी घटाते हैं, (तप सन्तापे धातु) सेतप शब्द सिद्ध होता है, तो इस जगह भी बुद्धिसे विचार करके देखेतो पञ्च थावरको भी सन्ताप होता है, दूसरा और भी सुनोंकि शीत, उष्ण आदि तितिक्षाको सहन करना उसीका नाम तप है, तो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि शीत उष्ण आदि तितिक्षाको पञ्च थावर बराबर सहते हैं, इस रीतिसे तप भी सिद्ध हुआ।

पांचवा वीर्य लक्षणको भी घटाते हैं कि वीर्य नाम बल, पराक्रम, शक्ति, इत्यादि नामोंसे बोलते हैं, तो अब देखना चाहिये कि विना शक्तिके अर्थात् वीर्यके विना उस दरख्त आदिकका प्रफुल्लित होना, अथवा उसका बढ़ना कि छोटेका बडा होजाना विना वीर्यके कदापि न होगा, इसीरीतिसे जिस पञ्च थावरमें वीर्य आदिक न होगा उसी थावर की शोभा (रोनक़) (चमक) प्रतीति नहीं होती, इसलिये वीर्य भी पाच थावरोंमें सिद्ध होगया।

छठां उपयोग लक्षण भी घटाते हैं, कि देखो जैसे वनस्पती दरख्त (वृक्ष) आदिक जब बढ़ता है तब जिधर २ उसको अवकाश मिलता है उधर ही को जाता है, इस रीतिसे उपयोग भी अपेक्षासे पञ्च थावरमें सिद्ध होता है। दूसरी अपेक्षा और भी दिखाते हैं कि अग्निमें ऊर्द्ध (ऊंचा) जानेका उपयोग (स्वभाव) है, जलका अधो (नीचा) जानेका उपयोग (स्वभाव) हैं। वायुमें तिरछा (टेढ़ा) जानेका उपयोग (स्वभाव) है, इस रीतिसे पच थावरोंमें उपयोग भी सिद्ध होगया। इसरीतिसे जो हमने जीवके छः लक्षण विशेष लिखे थे उनमें जो तुम्हारे को सन्देह हुआ उस तुम्हारे सन्देह दूर करनेके वास्ते किञ्चत् युक्ति

और अपेक्षाको दिखा दिया हैं, सो समझकर अपनी आत्मका कल्याण करो, सत् गुरूका उपदेश हृदयमें धरो, मिथ्यात्व रूप अज्ञानको परिहरो, जिससे मुक्ति पदको जायवरो ।

अब दूसरा जो तुम्हारा प्रश्न है कि जिन आगममें द्रव्य और पर्यायकाही कथन है फिर तुमने गुणका कथन क्यों करा, इस तुम्हारे सन्देहको दूर करते हैं कि शास्त्रोंमें द्रव्यार्थिक और परियार्थिक काही कथन है, परन्तु जिज्ञासुके समझानेके वास्ते गुणको जुदा कहा है, परन्तु पर्यायका जो समूह उसकाही नाम गुण है, परियाय और गुणमें कोई तरहका फ़र्क नही किन्तु एक है । सो दृष्टान्त देकर दिखाते हैं कि जैसे सूतका एक तागाकच्चा वो काम नही कर सक्ता, परन्तु सौ, दौसो, पांचसौ, तागा इकट्टे करें तो वो मिले हुए कच्चे सूतके तागा समूह रूप मिलकर अनेक कामोको कर सक्ते हैं, परन्तु वह जो इकट्टे सूतके तागा रूप हैं, वो उस कच्चे रूप तागासे भिन्न नहीं है किन्तु एक ही है, प्रत्येक (जुदा) होनेसे उसको कच्चा सूत कहते हैं, और समुदाय मिलनेसे डोरा कहते हैं । तैसेही परियायके समूहको गुण कहते हैं और प्रत्येकको परियाय कहते हैं, परन्तु परियाय और गुणमें फ़र्क नहीं किन्तु पर्याय और गुण एक रूप हैं, इनमें कोई तरहका भेद नही, केवल जिज्ञासुके समझानेके वास्ते आचार्योंने उपकार बुद्धिसे गुण जुदा कहा हैं, इसलिये हमने भी गुणका कथन जुदा कहा, इसका विशेष कथन देखना होयतो नय चक्र, तत्वार्थ सूत्रकी टीका, विशेष आवश्यक आदिमें देखो ग्र थके बढ़जानेके भयसे इस जगह विशेष चर्चा न लिखी ।

और जो तुमने, असंख्यात प्रदेशके मध्ये प्रश्न किया सोभी तुम्हारा पदार्थके अजानपनेसे है, क्योंकि जिनको पदार्थका यथावत् बोध है उनको ऐसी तर्क कदापि न उठेगी सोही दिखाते हैं, कि जो निर अवयवी जीव द्रव्यको मानेंतो कई दूषण आते हैं, और जो वस्तु अनादि अनन्त हैं उनमें स्वभाव भी अनादि अनन्त होते हैं, और जो चीज़ अनादि अनन्त है उसमें तर्क नहीं होती, यदि उक्त "स्वभावेतर्कों नास्ति" जो वस्तु स्वाभाविक है उसमें तर्क नहीं

होती, इसलिये असंख्यात प्रदेश माननेमें दूषण नहीं। कदाचित् इस समाधानसे तुम्हारा सन्देह दूर न हुआ हो तो और भी सुनोकिजो तुम उस जीवको असंख्यात प्रदेशवाला नहीं मानोगे और अनुवाला अर्थात् विना अवयव वाला मानोगे तो कीड़ी (चेंटी) कुत्थू आदिक छोटे जीव हैं वल्कि इनसे भी और सूक्ष्म जो जीव हैं उनमेंसे वो जीव निकलकर हाथीके शरीरमें जायगातो निर अवयवी होनेसे जिस हाथीके जिस देशमें वो जीव निर अवयवी रहेगा तव उस निरअवयवी जीवको उस कुल शरीरका दुःख सुखका भान न होगा, अथवा उस हाथीके शरीरमें रहने वाला जीव उस कुत्थू आदिक सूक्ष्म शरीरमें वो निरअवयवी हाथी वाले शरीरका जीव उसमें क्योंकर प्रवेश करेगा, इस रीतिके दूषण होनेसे जो कि सर्वमता-वलम्बी आचार्योंने अपने २ शास्त्रोंमें कथन किया है कि जीव कर्मोंके वश करके ८४ लाख योनि भोगता है, सो निरअवयवी जीव होनेसे छोटी योनि वाला जीव वड़ी योनिमें एक देशी हो जायगा और वड़ी योनिका जीव छोटी योनिमें प्रवेशही न कर सकेगा, तो उन आचार्योंका कथन करना कि ८४ लाख योनियोंमें जीव फिरता है सो कथन मिथ्या हो जायगा। इसलिये हे भोले भाई जो सर्वज्ञ देव वीतराग लोकालोक प्रकाशक श्रीअरहन्त परमात्माने जो कहा है सो ही सत्य है, और वो जो असंख्यात् प्रदेश हैं उन प्रदेशोंमें आकुचन् प्रसारन् गति स्वभाविक है जो चीज़ जिसमें स्वाभाविक होती है तिस वस्तुके स्वभावका नाश नहीं होता।

(प्रश्न) इस तुम्हारे माननेसेतो जीव मध्यम प्रमाणी हो जायगा और उस मध्यम प्रमाणको नैयायिक, वेदान्त और मतावलम्बियोंने अनित्यमाना है और महत्व प्रमाणको अथवा अनुप्रमाणको नित्यमाना है, तव तुम्हारा माना हुआ मध्यम प्रमाण नित्य क्योंकर सिद्ध होगा।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय, उन नैयायिक और वेदान्तियोंको पदार्थकी यथावत ख़बर नहीं थी, इन नैयायिक और वेदान्तियोंके पदार्थोंका निर्णय हमारा वनाया हुआ ग्रन्थ "स्याद्वाद अनुभवरत्नाकर"के

दूसरे प्रश्न उत्तरमें इन्हींके शास्त्र अनुसार निर्णय किया है, सो वहांसे देखो, ग्रन्थके बढ़जानेके भयसे इस जगह नहीं लिख सके, परन्तु किञ्चित् युक्ति इस जगह भी दिखाते हैं कि देखो महत्व परिमाण वालातो आकाशको बताते हैं और अनुपरिमाण वाला परमाणुको बतलाते हैं. तो इन दोनों परिमाणवाली वस्तु अचेतन् अर्थात् अजीव ठहरती है, तो उसके सादृश जीवक्योंकर बनेगा, इसलिये इन दोनों परिमाणोंसे विलक्षण मध्यम परिमाण वाला जीव असंख्यात प्रदेशी आकुञ्चन् प्रसारन् स्वभाव वाला स्याद्वाद रीतिसे अनादि अनन्त है, कभी उसका नाश नहीं होता। और जो मध्यम परिछिन्न परिमाण वाली है वही चेतन अर्थात् ज्ञानवाला होता है, इस ज्ञानवाले जीवको दृढ़ करनेके वास्ते किञ्चित् अनुमान दिखाते हैं कि "यत्र २ परिछिन्नत्वं तत्र २ चेतनत्वं यथा सूर्यवत्व" अर्थ—जो २ वस्तु परिमाण वाली होती है सो २ वस्तु चेतन होती है, क्योंकि देखो जैसे सूर्य परिमाण वाला है तो चेतन अर्थात् प्रकाश वाला है, दूसरा इसका प्रतिपक्षी अनुमान करके दिखाते हैं कि "यत्र २ विभूत्वं तत्र २ अचेतनत्वं यथा आकाशवत्व" अर्थ—जो २ वस्तु विभू अर्थात् अपरिमाण वली है सो २ वस्तु अचेतन है जैसे आकाश विभू अर्थात् अपरिमाणवाला है सो अचेतन है। इस रीतिसे जीव भी अपरिमाण वाला अर्थात् विभू आकाशवत होयतो चेतन अर्थात् प्रकाशवाला न ठहरेगा, इसलिये हे भोले भाइयों इस शुष्क तर्कको छोड़कर श्रीवीतराग सर्वज्ञके वचन ऊपर आस्ता रक्खो, गुरू उपदेश यथावत अनुभव रस चक्खो, जिससे आत्म स्वरूपको लक्खो, तिससे जन्म मरण कभी न झक्खो। इस रीतिसे जीवद्रव्य प्रतिपादन किया।

और इस जीवको नही माननेवाला जो नास्तिक मत है उसका खण्डन मण्डन नंदी, सुयगडांग आदि सूत्रोंमें विशेष करके प्रतिपादन है, और स्याद्वाद रत्नाकर अवतारिका, जैन पताका, सम्मती तर्क आदि ग्रन्थोंमें विशेष करके लिखा है और भी अनेक प्रकरणोंमें जीवका अच्छी तरहसे प्रतिपादन है, इसलिये चार वाक्यादि नास्तिक मतका खण्डन

मण्डन न लिखा, जिज्ञासुके सन्देह दूर करनेके वास्ते और नास्तिक मतको हटानेके वास्ते किञ्चित् युक्ति दिखाते हैं कि, जो नास्तिक मतवाला कहता है कि जीव नहीं हैं, उससे पूंछना चाहिये कि हे विवेक सुन्य बुद्धि विचक्षण जोतूं जीवको निषेध करता है सो तूने जीव देखा है तव निषेध करता है, अथवा तूंने उसको नहीं देखा है तौभी निषेध करता है। जो वह कहे कि नहीं देखा ओर मैं निषेध करता हूं, तव उससे कहना चाहिये कि हे मूर्खोंमें शिरोमणि मूर्ख अव तूंने देखाही नहीं है तो निषेध किसका करता है, क्योंकि विना देखी हुई वस्तुका निषेध नहीं वनता, इसलिये तेरे कहनेसे ही तेरा निषेध करना मिथ्या होगया। कदाचित् दूसरे पक्षको कहे कि मैंने जीवको देखा है इसलिये मैं निषेध करता हूं। तब उससे कहना चाहिये कि हे भोले भाई तेरे मुखसे ही जीवसिद्ध होगया, क्योंकि देख जबतूने उसको देखलिया तो फिर तूं उसका निषेध क्योंकर करसक्ता है। इसलिये इस हठको छोड़कर सत्गुरूके वचनको मान, छोड़दे मिथ्या अभिमान, विवेक सहित बुद्धिमें करो कुछ छान, इसीलिये जीवोंको दीजिये अभयदान, जिससे उगे तुम्हारे हृदय कमलमें भान, होवे जल्दी तेरा कल्याण। इस रीतिसे किञ्चित् जीवका स्वरूप कहा।

अब अजीवका स्वरूप वर्णन करते हैं, जिसमें अव्वल आकाशका स्वरूप कहते हैं।

आकाशास्तिकाय।

आकाश नाम अवकाश अर्थात् पोला जो सवको जगह दे, उसका नाम आकाश है, सो उस आकाशके दो भेद हैं, एक तो लोक आकाश, दूसरा अलोक आकाश। लोक आकाश तो उसको कहते हैं, कि जिसमें और द्रव्य हैं, परन्तु अलोकमें और द्रव्य नहीं, इसलिये उसको अलोक कहा।

(प्रश्न) आपने जो आकाशका वर्णन किया सो आकाश अर्थात्

आसमान जो यह काला २ दीखता है, उसीका नाम आकाश है. कि कुछ और चीज़ है ।

(उत्तर) भो देवानुप्रियः जो तेरेको काला २ दीखता है, उसका नाम आकाश नहीं, यह तेरेको जो काला २ दीखता हैं इस आसमानमें तो लाल, पीला, हरा, काला, सफेद, कई तरहके रंग होजाते हैं, सो इसको लौकिकमें तो वद्दल बोलते हैं परन्तु यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारो चीज़ोंके कर्म रूप संयोगसे जीवोंके पुद्गल रूप सूक्ष्म शरीर हैं। और कोई मतमें यह चार भूत प्रानी वाजते हैं, और कोई मतमें इनको तत्व कहते हैं, और कोई मतमें परमाणुरूप कहते हैं। इसलिये इसका नाम आकाश नहीं, आकाश नाम पोलारका है, सो वह पोलार सर्व जगह व्यापक है, जो वह पोलार व्यापक नहोय तो किसी जगह किसी वस्तुको जगह न मिले, सो दृष्टान्त देकर दिखाते हैं कि, देखो जैसे भीतवनी हुई अच्छी तरहसे चूना अस्तकारी हो रहा है और कोई छिद्र वा दरार भी नहीं, उस जगह कील ठोकनेसे वो लोहेकी कील उस दीवारमें समाजाती है, इसलिये उस भीतमें भी पोलार है, ऐसेही दरख्त वगैर सबमें जानलेना। सो आकाश नाम जगह देने वालेका है जो जगहदेय उसका नाम आकाश है। सो इस लोक आकाशमें चार द्रव्यतो मुख्य है और एक उपचारसे, पाँचो द्रव्य व्याप्य व्यापक भावसे रहते हैं, सो इस लोक आकाशमें नय आदिकके कई भेद हैं सो आगे कहेंगे, इसरीतिसे आकाश द्रव्यका वर्णन किया। अब धर्म अधर्म द्रव्यका वर्णन करते हैं

धर्मास्तिकाय ।

धर्म द्रव्य अर्थात् धर्मस्तिकाय जीव और पुद्गलको सहायकारी अर्थात् चलनेमे सहाय देय उसका नाम धर्मास्तिकाय है जहां २ धर्म द्रव्य हैं तहां २ जीव और पुद्गलकी गति अर्थात् चलना फिरना होता है, और जिस जगह धर्मद्रव्य नहीं है, उस जगह जीव पुद्गलकी गति अर्थात चलना फिरना भी नहीं है, ऐसा श्रीसर्वज्ञ देवने अपनें ज्ञानमें देखा और

इसी कारणसे अलोकके विषय जीव पुद्गलका होना निषेध किया कि उस जगह धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिये जीव पुद्गल भी नहीं है, क्योंकि धर्मास्तिकायके विदून जीव पुद्गलको चलने हलनेमें सहाय (सहारा) कौन करे।

(प्रश्न) जीव पुद्गलको धर्मास्तिकाय चलनेमें क्योंकर सहाय देती है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय यह धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलको चलने हलनेमें सहारा (सहाय) देती है, उस सहायके दृढ़ करानेके वास्ते तुम्हारेको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि, जैसे मच्छ आदि जल जन्तु गति अर्थात् चलनेकी इच्छा करें उसवक्त चलनेके समय जल सहायकारी होता है, जहा २ जल होय तहाँ २ मच्छादि जलजन्तु चल सकता है और जिस जगह जल नहोय उस जगह मच्छादि जलजन्तु कदापि न चलसके, क्योंकि थलमें मच्छादि जलजन्तु कदापि नहीं चल सक्के, यह बात बाल गोपाल आदि सबके अनुभव प्रसिद्ध है। तैसेही जीव और पुद्गल भी जहा २ धर्मस्तिकाय है, तहा २ ही चलना फिरना कर सक्के हैं, इस धर्मस्तिकायके सहारे बिना चलना फिरना नहीं कर सक्के, इसलिये श्री सर्वज्ञ देव वीतरागने धर्मस्तिकाय द्रव्यको देखकर वर्णन किया। सो यह धर्म द्रव्य यद्यपि एक है तथापि नयका भेद करनेसे अनेक भेद होजाते हैं सो अन्य शास्त्रसे जानना अथवा आगे हम नयका वर्णन करेंगे उस जगह किञ्चित् भेद दिखावेंगे, इसरीतिसे धर्मद्रव्य कहा।

अधर्मास्तिकाय।

अब अधर्म द्रव्य अर्थात् अधर्मस्तिकायका वर्णन करते हैं, कि अधर्मस्ति काय भी स्थिर (थिर) करनेमें जीव और पुद्गलको सहाय देती है जहां २ अधर्मस्ति काय है, तहां २ ही जीव और पुद्गलकी स्थिति होती है और जिस जगह अधर्मस्तिकाय नहीं है, उस जगह जीव और पुद्गलकी स्थिति भी नहीं है। ऐसा श्री सर्वज्ञ वीतरागने अपने ज्ञानमें

देखकर अलोकके विषय भी जीव पुद्गलका निषेध किया कि अलोक आकाशमें जीव पुद्गलादि कोई द्रव्य नही।

(प्रश्न) जीव पुद्गलको अधर्मस्तिकाय स्थिर होनेमें क्योंकर सहाय देती है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय अधर्म द्रव्य जो जीव पुद्गलको स्थिर करनेमें सहाय देती है, उस सहायके दृढ़ करानेके वास्ते तुम्हारेको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि, जैसे कोई पुरुष मार्गमें चलता हुआ धूप की तेजी और गर्मीसे व्याकुल था उस वक्त एक दरख्त ऐसा नज़र आया कि जिसकी शीतलता घनघोर छाया हो रही थी, उसको देखते ही उस छायामें जाय बैठा, जो वह छाया उसको उस जगह न मिलती तो वह कदापि नहीं ठहरता। तैसे ही अधर्म द्रव्य होनेसे जीव पुद्गलका ठहरना बनता है, जो अधर्म द्रव्य न होय तो जीव पुद्गलका ठहरना न बने। इसीलिये श्री वीतराग सर्वज्ञदेवने अपने केवल ज्ञानमें इस लोक अर्थात् १४ राजूमें ही अधर्म द्रव्य देखा और अलोक आकाशमें न देखा, इसलिये अलोक आकाशमें और द्रव्योंका निषेध अर्थात् कोई द्रव्य न कहा। सो इस अधर्मस्तिकायके भी नय करके कई भेद हैं सो हम नयके विचारमें कहेंगे, इस रीतिसे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य कहा।

(प्रश्न) आपने जो धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य कहा सो क्या जीव पुद्गलको प्रेरना करके गति अर्थात् चलना धर्मस्तिकाय कराती है और अधर्मस्तिकाय भी प्रेरनाके साथ ही जीव पुद्गलको स्थिर अर्थात ठहराती है, अथवा जीव पुद्गल इनकी प्रेरनाके बिना स्वतह ही गति वा स्थिर भावको प्राप्ति होते हैं, इसलिये इन दो द्रव्योंको मानते हो।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इन दोनों द्रव्योंकी प्रेरनाके विना जीव और पुद्गल गमन और स्थिर भावको अपनी इच्छासे होते हैं, क्योंकि देखो जैसे जल जन्तु जीव मच्छादि चलनेकी इच्छा करें तब उनके चलनेमें ज़ल सहाय देता है कुछ जल उनको चलानेकी प्रेरना

नहीं करता और जो उन जल जन्तु मच्छादिकी चलनेकी इच्छा होय और जल न होय तो वो कदापि थलमे नही चल सके, तैसे ही जीव पुद्गल भी चलनेकी वाँछा करे तव धर्मस्तिकाय चलनेमें सहाय देती है जिस जगह धर्मस्तिकाय नही है, उस जगह जीव पुद्गल इच्छा भी करे तो नही चल सके। और जैसे छायाकी प्रेरना विदून वो रस्ताका चलहेवाला पुरुष अपनी इच्छासे छायामें ठहरता है, जो छाया न होय तो वह पुरुष चलनेसे नही ठहर सक्ता, तैसे ही अधर्म स्तिकायकी प्रेरना विना जीव पुद्गल अपनी इच्छासे ठहरते है, जो अधर्मस्तिकाय न होय तो जीव पुद्गलका ठहरना न बने, इसलिये जैसा सर्वज्ञ वीतरागने अपने ज्ञानमें देखा, तैसा ही द्रव्योंका प्रति- पादन किया इसलिये धर्म, अधर्म द्रव्य अवश्यमेव मानने चाहिये।

(प्रश्न) अजी धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यका मानना ठीक नहीं, क्योंकि धर्म, अधर्म कुछ द्रव्य नहीं, किन्तु धर्म अधर्म तो जीवका कर्तव्य है कि धर्म अर्थात् जिसको लौकिकमें पुण्य कर्म कहते हैं वो जीव पुद्गलको चलाता है, और अधर्म अर्थात् जिसको लौकिकमें पाप कहते हैं वो स्थिर करता है इसलिये धर्म अधर्म जीवका कर्तव्य है कुछ धर्म, अधर्म द्रव्य जुदा पदार्थ नहीं है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय यह तेरा कहना पदार्थका यथावत् ज्ञान न होनेसे और श्री वीतराग सर्वज्ञदेवका जो स्याद्वाद सिद्धान्त उस स्याद्वाद सिद्धान्तके कहने वाले गुरुओंका उपदेश तेरेको न मिला इसलिये तेरेको ऐसा भ्रम पड़ा कि धर्म, अधर्म कुछ पदार्थ नही है किन्तु धर्म, अधर्म जीवका कर्त्तव्य है। इस तेरे सन्देह दूर करनेके वास्ते और त्रिकालदर्शी परमात्माके कथन किये हुए पदार्थको प्रति पादन करनेके वास्ते, तेरेको समझाते हैं कि। जो धर्म, अधर्म अर्थात् जिसको लौकिकमें पुण्य कर्म और पाप कर्म कहते हैं वो धर्म अधर्मतो ऊंच गति और नीच गतिको प्राप्त करते हैं और कुछ चलने और स्थिर होनेमे सहाय नहीं देते, किन्तु यह तो फलके दाता हैं, सहायके नहीं, क्योंकि देखो जो धर्मके करने वाले पुरुष हैं, उनको वह धर्म ऊंच गति

अर्थात् स्वर्गादि फलको देकर सुख और वैभवसे आनन्दमें रखने वाला हैं, ऐसा शब्द प्रमाण अर्थात् शास्त्रोंसे मालूम होता हैं, और लौकिकमें प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं, जो कि चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, राजा आदि सेठ, साहूकार नाना प्रकारके सुख भोगते हुये दीखते हैं सो धर्मका फल है। और उस स्वर्गादि देवलोकमें जिसको वैष्णव लोग विष्णुलोक, गोलोक, सत्यलोक, वैकुण्ठ, आदि करके कथन करते हैं, उन लोकोंमें पहुंचना और रहना वैभवपन सो तो धर्मका काम है, परन्तु उस ज़गह स्थिर करना यह काम अधर्मस्तिकायका है, इसलिये उस जगह भी अधर्मस्तिकाय द्रव्य है, और जो उस जगह अधर्म अर्थात् पाप रूप कर्म को मानेतो सुखके बदले दुःख होना चाहिये सो दुखतो उस जगह हैं नही, इसलिये हे भोले भाई तैंनेजो धर्म, अधर्म जीवका कर्त्तव्य मान कर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यको निषेध किया सो तेरा निषेध करना न बना, क्योंकि तेरा धर्म, अधर्म तो सुख दुखके देनेवाला है, और चलनेमें अथवा स्थिर करनमें तेरा धर्म, अधर्म कर्तव्य नहीं, किन्तु श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने जो अपने ज्ञानमें देखाकि जीव और पुद्गलके वास्ते गति अर्थात् चलना और स्थिति अर्थात् स्थिर करना धर्मस्ति-काय अधर्मस्तिकायकाही गुण है, इसलिये धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सिद्ध हुआ।

४ कालद्रव्य ।

अब चौथा काल द्रव्यका वर्णन करते हैं कि निश्चय नय अर्थात् निस्सन्देह शुद्ध व्यवहारसे तो काल द्रव्य मुख्य वृतिसे हैं नहीं, किन्तु अशुद्ध व्यवहार उपचारसे असद्भूत नय की अपेक्षासे और मन्द जिज्ञासुको समझानेके वास्ते और लौकिक प्रचलित सूर्यकी गति व्यवहार से कालको जुदा द्रव्य कथन शास्त्रोंमें किया है, इसलिए हम भी इसकाल द्रव्यको चौथा अजीव द्रव्य प्रतिपादन करते हैं; काल नाम उसका है कि नवेको उटपादन करे और जीर्णको विनाश करे, क्योंकि देखो सर्व्व पुद्गलके विषय नवीन पना अथवा जीर्णपना होनेका

सहायकारी कारण उपचारसे काल द्रव्य है इसलिए चौथा काल द्रव्य कहा।

(प्रश्न) नवीनपना अथवा जीर्णपना होनेका स्वभावतो पुद्गलमें है तो फिर कालको मानना निष्प्रयोजन है, क्योंकि देखो पुद्गल अपने स्वभावसे ही जैसे नवीन पर्यायको धारण करता है तैसे ही जीर्ण पर्यायको व्यय करता है, क्योंकि पुद्गल और जीव यह दो द्रव्य ही परिणामी है, ऐसा श्रीभगवानने कहा है कि, जो पूर्व अवस्थाका विनाश और उत्तर अवस्थाका उत्पादन उसीका नाम परिणाम है, इसीलिये पर्यायका उत्पाद और विनाशका होना उसीका नाम परिणाम है और द्रव्यका उत्पाद तथा विनाश नहीं होता है इसलिये पुद्गलके विषय परिणामीपना हुआ, सो पुद्गल द्रव्यमें स्वतह ही उत्पाद तथा विनास रूप नवीनपना अथवा जीर्णपना पर्यायमें होरहा है, और द्रव्यमें सर्वथा उत्पाद तथा विनास होवे नहीं, इसलिये काल द्रव्यकी अधिक कल्पना करना गौरव है, इसलिये चौथा द्रव्य मानना तुम्हारा ठीक नहीं है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय अभी तेरेको मुख्य और गौण सद्भूत और असद्भूत कारण और कार्य अपेक्षा की खबर नहीं है, इसलिये तेरेको इतना सन्देह होता हैं, सो तेरा सन्देह निवारण करनेके वास्ते कहते हैं, कि हे भोले भाई यद्यपि नवीनपना और जीर्णपना जो पुद्गल का पर्याय है सो पुद्गलके विषय है, तथापि उस जगह निमित्त कारण उपचारसे काल द्रव्य लौकिक अपेक्षासे नेमा करके होता है, परन्तु अनियमपनेसे नहीं, क्योंकि देखो चम्पक, अशोक, वेला, चमेली, जुई, गुलाब, मोतिया, केवडा, आम, नीबू, नारङ्गी, जामफलादि, वनस्पतिके विषय पुष्प, फलादि काल होनेसे ही आता है और महा हेमकन (शीत) (ठण्ड) मिश्रित शीतल पवनकाल (ऋतु) में ही होती हैं, अथवा मेघ वृष्टि, घन गरजन तथा विद्युत (बिजली) झत्कार आदिक कालमें ही होते हैं, तैसे ही ऋतु विभाग, बाल, कुँवार, तथा यौवन अवस्था, तथा पलीता (बुढ़ापा) आदि काल करके ही होता है, इत्यादिक व्यवस्थाके विषय उपचारसे काल द्रव्य ही सहायकारी है.

कदाचित कालको निमित्त कारण न मानों तो सर्व वस्तु व्यवस्था रहित हो जायगी। क्योंकि देखो बसन्त ऋतु आनेके विना चम्पक, अशोक, आमादि वनस्पतिके विषय फल फूल आना चाहिये, और ऋतुका भी आगा पीछा होना चाहिये, तैसे ही बाल अवस्थामें जरा और जरा अवस्थामें बाल होना चाहिए, अथवा यौवन अवस्था प्राप्त विना ही बालक अवस्थामें ही गर्भ धारण करना चाहिये, इत्यादिक उपचारसे काल द्रव्य निमित्त कारण न मानें तो लौकिक अपेक्षासे जो व्यवस्था हैं, उसकी अव्यवस्था होजायगी, इसलिये अनेक तरहका विपरीत होजाय, सो तो देखनेमें आता नही, इसलिए उपचारसे काल द्रव्य मानना ठीक है, क्योंकि सर्व वस्तु अपने २ काल (ऋतु) मर्यादा पर होती हैं, ऐसे ही पुद्गलके विषय नवीनपना और जीर्णपनाका निमित्त काल है, सो काल एक प्रदेशी समय लक्षण है, सो समयपना जो वर्त्तमान वर्त्तें हैं सो ही लेना, क्योंकि अतीत (भूत) समयका विनास हैं, और अनागत (भविष्यत) समयका उत्पाद हुआ नहीं, सो वर्त्तमान समय भी अनन्ता हैं, क्योंकि जितना पुद्गल द्रव्यका पर्याय है उतना ही वर्तमान समय है, यद्यपि सर्व जगह एक समय वर्तें है, तथापि कोई अपेक्षासे अनन्तके विषय होनेसे अनन्ता ही कहनेमें आता है।

(शंका) एक समय है तो एक चीज अनन्तके साथ क्यों कर लगेगी ऐसी अन्यमती अर्थात् वेदान्ती शङ्का करता है।

(उत्तर) उसको ऐसा उत्तर देना चाहिये कि, हे भोले भाई जैसे तुम्हारे ब्रह्मकी सत्ता एक है और वो सत्ता सर्व जगह है, उसी सत्तासे सब सत्तावाले हैं, तैसे हीं काल की भी एक समय वर्तमान है, उसी समयसे सब जगह वर्तमान जान लेना।

(प्रश्न) समयतो एक है और पूर्वापर कोटी विनिर्युक्त है तो आवलिकादी व्यवहार किसरीतिसे होगा, क्योंकि असंख्यात समय मिलनेसे एक आवलिका होती हैं।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इस वीतराग सर्वज्ञ देवका अनेकान्त सिद्धान्त हैं सो अनेक रीतिसे शास्त्रोंमें कथन हैं सो ही दिखाते हैं, कि

देखो। प्रथम नयके दो भेद हैं, एकतो निश्चय अर्थात् निसन्देह शुद्ध व्यवहार हैं, दूसरा व्यवहार अर्थात् अशुद्ध व्यवहार है, सो निसन्देह शुद्ध व्यवहार तो परमार्थके साथ मिलता हैं, अशुद्ध व्यवहार लौकिकके साथ मिलता है, तिसमें निश्चय नय अर्थात् शुद्ध व्यवहार करके तो एक समय लक्षण रूप काल है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं। और अशुद्ध व्यवहार नय करके आवलिका आदिक की कल्पना है, सो असद्भूत कल्पना करके लौकिक व्यवहारसे कहते हैं कि, असंख्यात समय मिले तब एक अवलिका होती है और एक करोड़ सढ़सठलाख सत्तर हजार दो सै सोलह आवलिका (१६७७७२१६) होय तब एक मुहूर्त होता है, यदि उक्त "यथा समय आवली" यह सर्व लौकिक व्यवहार करके कहनेमें आता हैं, परन्तु परमार्थ देखेंतो सर्व कल्पना है, सो यह समय लक्षण रूप काल पैंतालिस लाख योजन प्रमाण क्षेत्रके विषय हैं, और बाहरके जो क्षेत्र हैं उनमें नहीं क्योंकि जहा सूर्यकी गति हैं तिस जगह ही काल व्यवहार है, यह अधिकार (बिवाह प्रज्ञप्ति) सूत्र की वृत्तिमें श्री अभय देव सूरी जी महाराजने कहा हैं कि "अदित्य गतेस्त द्वयेज कत्वात्" कालका व्यजक आदित्य गमन सो ज्ञापक हैं और बाहरके द्वीपोंके विषय आदित्य अर्थात् सूर्यका गमन नहीं हैं उन द्वीपोंमें सूर्य स्थिर है।

(प्रश्न) कालतो मनुष्य क्षेत्र मात्रमें ही है और वाहिरके द्वीपोंमें है नहीं ऐसा तुम्हारा कहना ऊपर हुआ तो वाहिरके द्वीप और स्वर्ग नर्कके विषय कालकी क्योंकर खबर पड़ेगी।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय मनुष्य क्षेत्रकी अपेक्षा करके ही नर्क, स्वर्ग आदि सब जगह कालका व्यवहार होता हैं सो समयतो द्रव्य है और द्रव्यका परावर्त गुण है और अगुरु लघु पर्याय हैं, इस रीतिसे द्रव्य, गुण, पर्याय, लौकिक व्यवहारसे कालको जानना।

परन्तु दिगम्बर आमनावाला ऐसा कहता है कि लोक आकाशके विषय जितना आकाश प्रदेश है उतनाही एक समय रूपकालका आकाश प्रदेश जितने ही कालके अणु हैं, इसलिये असंख्यात कालका

अणु हैं यदि उक्त "लोआगास पएसे इक्केक्के जेठिया हुइक्किका रयणार्णं रासी मिव कालाणुं असंख दव्वाणि" इसरीतिसे असँख्याते काल अणु शामिल होय तब एक समय होता है, समयसो पर्याय हैं सो अणुपना सूर्यमण्डल भ्रमि लक्षण निमित्त कारण पायकर इकट्ठा मिले हैं तब समय उत्पन्न होता हैं, जैसे चक्र भ्रमि निमित्त कारणका जोग होनेसे मिट्टीके पिण्डका घड़ा उत्पन्न होता हैं, तैसे ही इस जगह जान लेना।

इसके वास्ते श्वेताम्बर आमना वाला इस दिगम्बरको दूषण देता है कि जो तुम ऐसा मानोगे तो छठा अस्तिकाय होजायगा क्योंकि जिसमें खन्द, देश और प्रदेश हो उसीका नाम अस्तिकाय हैं तो इस जगह भी समय सो खन्द और द्विविभाग कल्पना रूप देश और काल अणु प्रदेश मानोगे तो विपरीत हो जायगा, क्योंकि अस्तिकायतो सर्वज्ञ देव वीतरागनेतो पांच कहे हैं और काल द्रव्यको अस्ति काय न माननेमें श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनोंकी सम्मति है तो फिर काल द्रव्यमें काल अणुमानना अज्ञान सूचक हैं। सो इसकाल द्रव्यकी विशेष चर्चा देखनी होयतो हमारा किया हुआ "स्याद्वादानुभव रत्नाकर"के तीसरे प्रश्नोतरमें दिगम्बर आमनायका निर्णय किया है वहांसे देखो इस जगह ग्रन्थ बढ़ जानेके भयसे न लिखा इसरीतिसे चौथा काल द्रव्य कहा।

पुद्गलास्तिकाय।

अब पांचनवा पुद्गल द्रव्य कहते हैं कि जो वस्तु पूरन अथवा गलन धर्म होय उसको पुद्गल द्रव्य कहते हैं, क्योंकि देखो कोई एक खन्दके विषय पुद्गल पूरता अर्थात् बढता है, और कोई एक खन्दके विषय गलन अर्थात् जुदा होता है, इसरीतिसे लौकिक कालादि कारण मिलनेसे होता है, सो यह पुद्गलका स्वभाव है, सो उस पुद्गलके ४ भेद हैं एकतो खन्द २ देश, ३ प्रदेश, ४ परमाणु, सो प्रथम खन्दका अनन्ता भेद हैं, क्योंकि दो प्रदेश इकट्ठा मिले तो द्वय प्रदेशी खन्द, तीन प्रदेश मिले तो त्रिप्रदेशी खन्द, इस रीतिसे यावत् संख्यात्

प्रदेशी, असंख्यात् प्रदेशी अथवा अनन्त प्रदेशी जान लेना, तैसे ही देशगना भी द्विविभागी, त्रिविभागी, लक्षणरूप जान लेना।

(प्रश्न) खन्दमें गिना हुआ परमाणु आयकर मिलता है तो देश व्यवहार संभवे नही, क्योंकि तिसका जितना देश करे उतना ही देश हो सक्ता है, जैसे कोई एक खन्दका आधा २ करे तो उसमें दो देश हों, इस रीतिसे तीन विभाग करे तो तीन देश हों, यावत चार, पांच, छः, सात, संख्याता असख्याता अथवा अनन्त तक हो सकता है, इस रीतिसे जितना मोटा खन्द होगा उतने मोटे खन्दके अनुसार देशकी कल्पना कर सक्ते हैं, परन्तु दो प्रदेश मात्र खन्द होय तो उसके विषय देश विभाग क्योंकर बनेगा, क्योंकि उसमें तो दो परमाणु मात्र ही मिले है, तो उस दो प्रदेशकी कल्पना होनेसे तो खन्द परिणामके विषय देश अथवा प्रदेश यह दोका व्यवहार सिद्ध होना मुशकिल है, क्योंकि उस दो विभागमें किसका नाम तो देश समझे और किसका नाम प्रदेश समझे।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इस तेरे सन्देह दूर करनेके वास्ते सर्वज्ञदेव वीतरागका कहा हुआ अनेकान्त स्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य सुनों कि देश और प्रदेशमें कुछ सर्वथा भेद नहीं, है क्योंकि द्विविभाग और त्रिविभाग आदिक अवयव हैं उनको देश कहते हैं, सो वो देश दो प्रकारका है एक तो सअंश है, दूसरा निरअंश है, जो सअंश है उसको तो देश कहते हैं, और जो निरअंश हैं उसको प्रदेश कहते हैं, क्योंकि जो प्रकृष्ट देश है उसीका नाम प्रदेश है, इसलिये जिसमें कोई दूसरा अंश न मिले उसका नाम प्रदेश है, इसलिये दो प्रदेशको भी खन्दके विषय दो देश कहते हैं, और प्रदेश भी दो ही कहते हैं, इसलिये जो दो प्रदेश हैं उन्हीको दो देश कहते हैं, दो प्रदेशी खन्दके विषय सअंश देश न हो किन्तु निरअंश देश होता है, और तीन प्रदेशी खन्दके विषय एकतो दो प्रदेशी खन्द तिसका नामतो देश होता है और दूसरा एक प्रदेशी होय क्योंकि परमाणुका आधा २ न होय, क्योंकि श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवने परमाणुको अच्छेद तथा अभेद्य कहा है, इसलिये

जो दो प्रदेशी देश होंय सो तो सअंश जान लेना, और जो एक प्रदेशी देश है सो निरअंश जान लेना, इस रीतिसे सर्व खन्दके विषय विचार लेना, क्योंकि जितना खन्दका अवयव है उतना हीं देश कहना, और उतना ही प्रदेश कहना, निरअंश अवयवको प्रदेश जानना, और सअंश अवयवको देश कहना, जो सप्रदेशी अवयवका सभव न होय तो निरअंश प्रदेशी अवयवको भी देश कहना, क्योंकि दो प्रदेश या खन्दके विषय प्रसिद्धपने जानना, अथवा एक देश प्रदेश लक्षण रूप व्यवहार तो जहां खन्दरूप परिणमा होय तहां तिसको परमाणु पुंज कहिये, अथा जो खन्दपनेके परिणामको नपामां और प्रत्येक अर्थात् एकाएकी रहा है तिसको परमाणु कहना।

इस जगह प्रसंगात् कालकी स्थिति अर्थात् मर्यादा लिखते हैं कि एक परमाणु दूसरे परमाणुके साथ मिले नहीं, अर्थात् खन्दभावको न प्राप्ति होंय किन्तु एकाएकी रहे तो जघन्य करके तो एक समय काल अकेला रहे, और उत्कृष्टपनेसे अकेला रहे तो असंख्यात काल तक रहे परन्तु पीछे खन्दरूप परिणामको अवश्यमेव पामें, इस रीतिसे एक परमाणु आश्रय जान लेना और सर्व परमाणु आश्रय तो अनन्ता-काल जानना, ऐसा कोई समय न होगा कि जिसमें सर्व परमाणु खन्द पनेके परिणामको पावेगा। क्योंकि जिस वक्त केवली अपने केवल ज्ञानसे देखेगा उस वक्त लोकके विषय अनन्ता अनन्त परमाणु छुट्टा अर्थात् जुदा २ देखनेमें आवेगा और जो एकाएकी खन्द रहे तो उसकी स्थिति जघन्यसे एक समय और उतकृष्टसे असंख्याता कालकी स्थिति होय, क्योंकि पुद्गल संयोगकी स्थिति असंख्याता कालसे अधिक होय नहीं, यह एक काल आश्रय जानना। सर्व काल आश्रय तो सर्वकालकी अवस्थान जानना क्योंकि ऐसा कोई काल नहीं है, कि जिस कालमें सर्व लोक खन्दसे सुन्य होय, इस रीतिका विचार सूक्ष्म बुद्धिवालेकी बुद्धिमें स्थिर होगा यह कालकी स्थिति कही।

अब कालकी मर्यादा इस रीतिसे है, कि परमाणु एकाएकी भावका त्याग करके अन्य परमाणु द्विणुक, त्रिणुक आदिकके साथ

मिलकर खन्द भावको पाया होय तो पीछा पूरवके परमाणु भावको पावे अर्थात् एकाएकी होय तो जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे असंख्याता काल जान लेना ।

(प्रश्न) अनन्त प्रदेशीखन्दके विषय जो परमाणु सयुक्त है वो असंख्यात कालतक खन्दके विषय उत्कृष्टपने रहते हैं, तो जब खन्द भग होय तब तिसमेंसे लघु खन्द उत्पन्न होता है, तिस लघु खन्दमें परमाणु असंख्यात काल तक रहे इस रीतिसे एक खन्दका अनन्त खन्द हो सक्ता है तो उस अनन्त खन्द अर्थात् प्रत्येक २ खन्दमें असंख्यात २ काल तक परमाणुकी स्थिति होनेसे अनुक्रम करके अनन्त कालका संभव होता है तो फिर पीछे एकाएकीपनेको पाता है. इस रीतिसे अनन्ता कालका अन्तर सभव होता है तो फिर आप असंख्यातकालका अन्तर क्योंकर कहते हो ।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय अभी तेरेको इस स्याद्वाद सिद्धान्तके रहस्यको खबर न पडी इसलिये तेरेको ऐसी शुष्क तर्क उठी सो हे भोले भाई जो इतना काल तक पुद्गलका संयोग रहता होय तो तेरी तर्कका सभव होय, परन्तु पुद्गलका संयोग तो असंख्यात काल शुद्धि ही रहे तद् पश्चात् वियोग अवश्यमेव होय, ऐसा श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवने केवल ज्ञानमें देखा सो ही सिद्धान्तोंमें प्रतिपादन किया है, सो भगवती, ज्ञाता सूत्र आदिकमें इन चीजोंका विस्तार है, मेरे पास ये सूत्र न होनेसे पाठ न लिखा ।

(प्रश्न) परमाणु खन्दके साथ मिला है सो खन्द बिनास पामें तो असंख्याता काल उपरान्त पामें हैं, इसलिये यह सूत्र चरितार्थ हुआ, परन्तु विवक्षित परमाणुको आश्रित भूत खन्दका वियोग होय तो परमाणुको क्या, क्योंकि परमाणु तो खन्दके विषय अथवा अन्य परमाणुके साथ संयोग हुआ है, तिसका पीछा वियोग असंख्याते कालमें होय उपरान्त रहे नही परन्तु एकाएकी परमाणुकेवास्ते क्योंकर वियोग करते हो ।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय ! हमारा कहना सूत्रके प्रमाणसे है

नतु स्वयं बुद्धिसे, क्योंकि देखो "श्रीव्याख्यात् प्रज्ञप्ति" प्रमुख सूत्रोंके विषय कहा है कि, परमाणु खन्दसे मिले और फिर परमाणुपनेको भजे तो पीछे उत्कृष्टा असख्यात् काल भजे (होय)। और जो जो परमाणु मिलकर खन्द हुआ होय फिर उन दोनों परमाणुका विध्वंस अर्थात् वियोग हो जाय तो फिर उन दोनों परमाणुओंका संयोग जघन्यसे तो एक समय और उत्कृष्टपनेसे अनन्ता काल होय, क्योंकि लोकके विषय अनन्ता परमाणु हैं, अनन्ताद्विणुक खन्द है इस रीतिसे त्रिणुक, चतुर्णक, यावत् सख्याता असंख्याता, और अनन्ता इत्यादिक अनेक जातिका खन्द हैं, सो सर्व अनन्तानन्त प्रत्येक २ हैं, तिसके साथ प्रत्येक प्रत्येक उत्कृष्टा काल जो मिले तो तिसका वियोग होता होता अनन्ता काल हो जाय, तिसके बाद फिर विस्रसा परिणमें तब पुद्गल संयोग होय, इसलिये अनन्ताकाल दोनों परमाणुओंके संयोगका कहा, इस रीतिसे काल स्थिति कही।

अब प्रसंगगतसे क्षेत्र स्थिति भी कहते हैं कि. एक परमाणु आकाशका एक प्रदेश रोकता है परन्तु दूसरा प्रदेश रोक सके नहीं, क्योंकि जितना बड़ा आकाश प्रदेश है उतना ही बड़ा परमाणु है. परन्तु इतना विशेष है कि, आकाशके प्रदेश तो अमूर्तिक हैं अर्थात् अरूपी हैं और परमाणु मूर्तिक अर्थात्रूपी हैं, इसलिये दो प्रदेशका समावेस होय अथवा तीन प्रदेशका होय, इस रीतिसे यावत् संख्याता असख्याता प्रदेशका उसमें समावेस हो सकता है, तैसे ही खन्द असख्यात तथा अनन्त प्रदेशी जान लेना, क्योंकि देखो दो प्रदेशी खन्द जघन्य करके तो एक प्रदेशमें समाता है और उत्कृष्टपनेसे दो प्रदेशको रोकनेसे ही तीन प्रदेशी उत्कृष्टसे तीन प्रदेश रोके. इसरीतिसे जो खन्द जितने प्रदेशका होय उतने ही आकाश प्रदेश उत्कृष्टपनेसे रोके, और जघन्यसे सबके विषय एक ही प्रदेश कहना। और अनन्त प्रदेशी खन्द असंख्यात प्रदेशको रोके, परन्तु अनन्तको रोके नहीं क्योंकि लोक अकाशका अनन्त प्रदेश है नहीं इसलिये असख्यात प्रदेशी रोके हैं।

(प्रश्न) एक आकाश प्रदेशमे अनन्त प्रदेशी खन्दका समवेस अर्थात् प्रवेश क्योंकर होगा ।

(उत्तर) भो देवानुप्रियः आकाशके विषय अवगाहक गुण हैं तिस कारण करके जहां एक पुद्गल है वहां अनन्त पुद्गल समावेस अर्थात् प्रवेश हो सक्ता है क्योंकि देखो जैसे एक दीपकके प्रकाशमें अनेक दीपकका प्रकाश समावेश अर्थात् प्रवेश हो सक्ता है। तथा जैसे एक पारद कर्पके विषय सुवर्ण शताकर्ष समावेस अर्थात् समाय जाता है। अथवा जैसे पानीका वर्तन भरा है उसमें वालू गेरनेसे उस पानीमें उस वालूका समावेस अर्थात् प्रवेश हो जाता है, और पानी उस वर्तनसे वाहर नहीं निकलता। इस रीतिसे पुद्गलका ऐसा हो धर्म हैं तैसे ही एक आकाशके प्रदेशमें अनन्त परमाणु, अनन्तद्विणुक यावत अनन्त अनन्ताणुक खन्द समावेस होता है क्योंकि अपना २ स्वभाव करके रहते हैं।

(प्रश्न) समग्र लोकके विषय एक खन्दको अवगाहना क्योंकर हो सकी है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इस पुद्गल द्रव्य खन्दका विचित्र स्वभाव है क्योंकि देखो कोई खन्द तो लोकका संख्यातवां भाग अवगाह करके रहता है और कोई लोकका असख्यातवां भाग अवगाह (रोक) करके रहता है, और कोई एक खन्द समग्र लोकको अवगाहना है। सो वो खन्द असख्य प्रदेशो तथा अनन्त प्रदेशी जानना, क्योंकि संख्यात प्रदेशी कोई असंख्यात प्रदेशको रोक सके नहीं ऐसा "श्रीप्रज्ञापना सूत्र" में कहा है कि कोई एक अनन्त प्रदेशो खन्द एक समयमें सर्व लोकको अवगाह करके रहता है, सो केवलो समुद्घातकी तरह जान लेना सो समुद्घात इस प्रमाणसे करे कि कोई एक अचित् महाखन्द विस्रसा परिणाम करके प्रथम समय असंख्यात् योजन विस्तारसे दड करे दूसरे समय कपाट करे, तोसरे समय थानु करे, चौथे समय प्रतर पूर्ण करे, सो चौथे समय समस्त लोकमें व्याप कर रहे, पोछे पांचवें समयमें प्रतर संहारे अर्थात् समेटे

छटे समय थानु भंजे, सातवें समय कपाट भंजे, आठवें समयमें दण्ड संहार करके खण्ड २ हो जाय। इसलिये एक चौथे समयमें सकल लोकके विषय व्यापी रहता है, इसका विशेष वर्णन "श्रीविशेषावश्यक" में है वहांसे देखो।

अब किंचित् बौद्ध मतवाला इस परमाणुके विषय प्रश्न करता है सो दिखाते है।

(प्रश्न) अहो जैन मतियों क्या जाग्रतमें स्वप्न एव वर्ताते हो सो परमाणुको निरअंश कहना आकाशके पुष्प समान है, क्यों कि देखो एक आकाश प्रदेशके विषयजो रहने वाला एक परमाणुसो उस परमाणुको ६ प्रदेश की फर्सना होती है, क्योंकि देखो जिस समयमें परमाणु पूर्व दिशाको फर्से है वो परमाणु उसी समय उसी स्वरूपसे पश्चिम दिशाको कदापि नहीं फर्स सक्ता, तो दूसरे स्वरूपसे फर्से है, ऐसा अनुभव सिद्ध होता है, क्योंकि जो उसी स्वरूपसे फर्सेतो षट्दिग् सम्बन्ध होसके नहीं, और षट्दिग् सम्बन्ध लोकमें प्रसिद्ध है, क्योंकि देखो यह पश्चिम दिग् सम्बन्ध, यह पूर्व दिग् सम्बन्ध, यह उत्तर दिग् सम्बन्ध, यह दक्षिण दिग् सम्बन्ध, यह अधोदिग् सम्बन्ध यह ऊर्द्ध दिग् सम्बन्ध, इसरीतिसे सर्व भिन्न २ मालूम होता है, षट्दिग् फर्सना परमाणुको कह सक्ते नही, क्योंकि परमाणु निरअंश है सो षट्दिग् सम्बन्ध भिन्न २ क्योंकर बनेगा, हां अलबत्त सअंशके विषयतो षट्दिग् सम्बन्ध भिन्न २ होसक्ता है, इसलिये परमाणुको निरअंश कहना ठीक नहीं, इसलिये तुम परमाणुको सअंश मानों जिससे षटदिग् सम्बन्ध भिन्न २ फर्सना घट जाय, निरअंशमें कदापि न घटेगी।

(उत्तर) अहोविवेक सुन्य बुद्धि विचक्षण क्षणिक विज्ञान वादी जरा ख्याल तो कर कि तेरा प्रश्न ही नहीं बनता, और तेरेको तेरे ही सिद्धान्त की खबर नहीं तो दूसरेसे तर्क क्यों करता है, क्योंकि देखो तुम्हारे सिद्धान्तोंमें ऐसा लिखा है कि ज्ञानके सन्तानके विषय एक क्षणमें कारण, कार्य्य भाव सम्बन्ध बनता है, तो अब तुमको ही विचार

करना चाहिये कि पूर्व ज्ञान जनकजो क्षण सो तो निरांश हैं, फिर उस क्षणमें दो अंश की कल्पना करना सिवाय उन्मतोंके दूसरा कौन कर सक्ता है। क्योंकि देखो जिस अंश करके कारण सम्बन्ध हैं, तिस निरअश कारण सम्बन्धमें कार्य सम्बन्ध बने नहीं और जिस अंशमें काय सम्बन्ध तिस अन्शमें कारण सम्बन्ध बने नहीं, क्योंकि क्षण तुम्हारा निरअंश है, इसलिये उस निरअंशमें कारण, कार्य दो अंश कल्पना करना अज्ञान सूचक है, इसलिये तुम्हारेको तुम्हारे सिद्धान्त की खबर दिखलाई, तुमने जो प्रश्न किया उसकी युक्ति ठीक न आई, मिथ्यात्वका तजो रे भाई, तुमने जो प्रश्न किया उस प्रश्न की तुम्हारे गलेमें युक्ति पहिराई, इसका जवाब देना भाई। खैर अब दूसरी युक्ति और भी सुनों कि जो तुमने परमाणुमें विकल्प उठाया कि निरअंश और सअंश तो तुम्हारा विकल्प नही बनता है, क्योंकि जिस क्षणमें परमाणुको निरअंश देखा वो निरअश देखने की क्षणतो तुम्हारे मतसे नष्ट होगई तो फिर तुम्हारा सअश देखना क्योंकर बनो, कदाचित् कहो कि सअश परमाणुका ज्ञान हुआ, तो वो सअश परमाणुके ज्ञान होने की भी क्षण नष्ट होगई, तो वो सम्बन्ध परमाणुसे होनेका ज्ञान किससे हुआ। इसरीतिसे जब पूर्व दिशाका सम्बन्ध परमाणुसे हुआतो उस पूर्व सम्बन्धका जो ज्ञान वो भी उसी क्षणमें नष्ट हुआ, इसरीतिसे पश्चिम, उत्तर, दक्खिन, अधो, और ऊर्द्ध जिसका जिस क्षणमें सम्बन्ध हुआ उस सम्बन्धका ज्ञान उसी क्षणमें नष्ट होगया। और वह सम्बन्ध आपसमें विरोधी हैं, क्योंकि देखो निरअंश और सअश आपसमें विरोध, ऐसे ही सम्बन्धका विरोध, तैसे ही छओं दिशाका विरोध। इसरीतिसे तुम्हारा क्षणिक विज्ञान वाद होनेसे प्रश्न करनाही नहीं बनता, कदाचित् निर्लज्ज होकर उस क्षणिक विज्ञानकी सन्तान अपेक्षा भी मानों तौ भी तुम्हारेकों यथावत ज्ञान न होगा। क्योंकि देखो जब तुमको निरांश परमाणुका जिस क्षणमें ज्ञान हुआ उस निरअंश ज्ञानकी निरअंश २ ही सन्तान उत्पत्ति होगी, अथवा जिस क्षणमें तुमको सअंश ज्ञान होगा, उस सअंश ज्ञान की क्षण भी सअश

ही अपनी सन्तान उत्पत्ति करेगी, तो फिर सम्बन्धका ज्ञान क्योंकर बनेगा, अथवा जिस क्षणमें पूर्वदिग् सम्बन्धका ज्ञान होगा। उस पूर्वदिग् सम्बन्ध ज्ञानकी जो क्षण उससे उत्पन्न होगी तो पूर्वदिग् सम्बन्ध की सन्तान उत्पन्न होगी, कुछ पश्चिम दिग् सम्बन्ध सन्तान की उत्पत्तीका ज्ञान कदापि न होगा, क्योंकि देखो लौकिक प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध सन्तान उत्पत्तीमें दृष्टान्त देकर दिखाते हैं कि "देखो जो मनुष्य आदि हैं उनकी सन्तानमें मनुष्य ही उत्पन्न होगा नतु गाय, भैंस, घोड़ा। अथवा गायकी सन्तानमें गौ आदिकही उत्पन्न होगी, कुछ भैंस घोड़ा आदि न होगा। अथवा अन्न आदिक गेहूकी सन्तानमें गेहूं ही उत्पन्न होगा, नतु चना मूंग, उर्द, आदि। इसरीतिसे जो चीज है उसकी सन्तानमें वही उत्पन्न होगी यह अनुभव लोक प्रसिद्ध हैं। इसलिये जिस क्षणमें जिस वस्तुका तेरेको ज्ञान हुआ है उस क्षणके नष्ट होनेसे उस क्षणमे जो सन्तान उत्पत्ती मानेगा तो उसी वस्तुका ज्ञान होगा, नतु अन्य वस्तुका। इसलिये हे क्षणिक वादी तेरा इस परमाणु विषयमें षट्दिग् सम्बन्धका प्रश्न करना तेरे मतानुसार न बना इसलिये तेरेको तेरे ही सिद्धान्त और मत की खबर न पड़ी। तो इस वीतराग सर्वज्ञ देव त्रिकाल दर्शीके स्याद्वाद रूप सिद्धान्तका रहस्य क्यों कर मालूम हो सके। कदाचित् तू कहे कि इस तुम्हारे स्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य क्या है, तो हम तेरेको कहते हैं कि हे भोले भाई इस सिद्धान्तका रहस्य ऐसा है कि श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने अपने केवल ज्ञानसे देखा कि जिसका दो टुकड़ा न होय उसका नाम परमाणु कहा। इसलिये परमाणुका लक्षण ऐसा कहा कि "परमाणु अविभागीयते" उस अविभागीको निरअन्श भी कहते हैं सो वो परमाणु कुछ वस्तु ठहरी तो वो वस्तु जिस जगह रहेंगी तो चारों तरफसे अलवत्ता घिरेगी, क्योंकि देखो आकाशतो क्षेत्र है और परमाणु रहने वाला क्षेत्रि हैं, तो जब परमाणु आकाशमें रहेगा तो आकाश उस परमाणुके नीचे और ऊपर अथवा चारो दिशासे व्यापक-पनेसे रहेगा और परमाणु व्याप्यपनेसे रहेगा, इसलिये उस परमाणु

को छः दिशाका स्पर्श होनेसे कुछ अविभागीपना न मिटेगा। इसलिये परमाणुको अविभागी अर्थात् निरअंश कहनेका यही प्रयोजन है कि उस परमाणुमे से दूसरा विभाग न होय, इस दूसरे विभाग न होनेके अभिप्रायसे उसको अविभागी कहा, कुछ छः दिशाका स्पर्श न होनेके वास्ते निरअन्श न कहा, इसलिये छः दिशाका स्पर्श होनेसे भी परमाणु निरअन्श अर्थात् अविभागी है, उस अविभागीमेंसे दूसरा विभाग कदापि न होगा। इस अभिप्रायको जान, छोड अभिमान, तजो क्षणिक विज्ञान, सतगुरूके उपदेशको मान, जिससे होय तेरा कल्याण। इसरीति से जो बौध मतवालेने प्रश्न किया था सो उसका प्रश्न न बना और स्याद्वाद मतका रहस्य मेरी बुद्धि अनुसार मैंने कहा।

अब प्रसग गतसे क्षेत्र अव गाहना की स्थिति भी कहते हैं कि जिस आकाश प्रदेशके विषयजो पुद्गल द्रव्य रहता है सो एक प्रदेश अवगाह व संख्य प्रदेश अवगाह अथवा असख्य प्रदेश अवगाह जघन्यसे एक समय शुद्धि रहे, तिसके बाद एक प्रदेश अवगाह वालातो द्वि प्रदेश अवगाहमें मिले और द्वै प्रदेश अवगाह वाला तीन प्रदेश अवगाहमें मिले तो उत्कृष्टसे असंख्य काल पीछे मिले, परन्तु अनन्त काल शुद्धि एक अवगाहपने रहे नहीं, इसरीतिसे उनका स्वभाव है अब अवगाहना रहनेका अन्तर कहते हैं कि जो परमाणु जिस आकाश प्रदेश को अव गाहक किया होय उस ठिकानें जघन्य करके एक समय और उत्कृष्ट करके सख्यात काल शुद्धि रहे तिस पीछे दूसरे प्रदेशकी अव-गाहना करे हैं इसरीतिसे फिरता फिरता फिर उस आकाश प्रदेशके विषय असख्याते कालमें आता है क्योंकि आकाशका असख्याता प्रदेश है।

(प्रश्न) मूल प्रदेशका त्याग करके दूसरा असख्याता प्रदेशआकाश का है उन प्रदेशोंको फरसकर पीछा आयकर उस मूल प्रदेशको फर्सना करेतो अनन्ता कालका अन्तर संभव है तो असख्याता कालका अन्तर कहते हो इसका कारण क्या है।

(उत्तर) पुद्गलका ऐसा स्वभाव होता है कि असंख्यात काल

शुद्धि फिर करके पीछा उस आकाश प्रदेश की अवगाहना करे ऐसा भगवती आदि सूत्रोंमें देखो ।

अब पुद्गलका गुण कहते हैं कि जिस करके वस्तु अलंकृत अर्थात् शोभायमान देखनेमें आवे तिसका नाम वर्ण कहते हैं सो उस वर्णके ५ भेद हैं स्वेत, रक्त, पीला, नीला, हरा, कृष्ण, (काला), ये ५ वर्ण अर्थात् रङ्ग पुद्गलके विषय होते हैं ।

(प्रश्न) आपने ५ वर्ण कहे परन्तु नैयायिक छठा विचित्र वर्ण माने हैं तो पाच क्योंकर बनेंगे ।

(उत्तर) भोदेवानु प्रिय इन ५ वर्णोंका संयोग होने ही से छठा विचित्र वर्ण उत्पन्न होता है इसलिये उस छोटे रङ्गको सर्वथा भिन्न कहना ठीक नहीं, क्योंकि देखो उन पांच रङ्गसे ही अनेक रङ्ग जुदा २ बन जाते हैं, अथवा यह पाच रंग एक चीज में भी भिन्न २ देखते हैं इसलिए वह विचित्र रग नहीं किन्तु वेही पांच रंग हैं । इसरीतिसे एक छठा भिन्न क्या अनेक रंग भिन्न २ मानने पड़ेगे तवतो व्यवस्थाही न वनेगी । इसलिये ५ रंगही मानना ठीक हैं ।

अव इस पुद्गलके विषय दो गन्ध हैं, एकतो सुगन्ध अर्थात् जो सब लोगोंको अच्छी लगे, दूसरी दुर्गन्ध अर्थात् सव लोगोंको बुरी लगे ।

रस ५ हैं मधुर, (मीठा), आम्ल, (खट्टा), कषायला, कटु (कड़वा), तिक्त (चरपरा), ये ५ रस हैं ।

(प्रश्न) आपने ५ रस कहे परन्तु नैयायिक लवण (लोन) को छठा जुदा रस कहता हैं तो ५ क्योंकर वनेगे ।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय नैयायिकको यथावत ज्ञान न होनेसे केवल तर्क बुद्धिसे कहता है, परन्तु रस ५ हैं, क्योंकि देखो लवणको छठा रस मानना नहीं वनता, क्योंकि लवण मधुर रसके अन्तरगत हैं सो लवणका मधुरपना लोकोंमें आवाल गोपालादि सबको अनुभव प्रसिद्ध हैं, कयोंकि देखो कोई रसोईदार नाना प्रकारके भोजन तयारे करे और लाडू, जलेबी, शीरा, साबुनी, पेड़ा, कलाकन्द, गुलाब-

जामन, खजूरा, फैनी, खाजा, आदि नाना प्रकार की वस्तु बनावे और नाना प्रकारके खूब गर्म मसाले देकर सागादि तयार करे और उसमें लौन किञ्चित भी सागादिमें न गेरे और उस रसोई आदिकको जो कोई जीमने वाला जीमें अर्थात् भोजन करे, तो उस भोजन करनेसे उसका चित्त प्रसन्न कदापि न होगा. और पेट भरके भी न खाय सके, यह अनुभव सबको होरहा है, और उस रसोईको सब लोग फीकी कहैं इसलिये लौन मीठा ही है, और उसके सिवाय मीठा कोई नही; इसलिये रस पाच ही हैं, लौनको जुदा रस मानना ठीक नहीं :—

स्पर्श—आठ प्रकारका १ कर्कस (खर्खरा), २ मृदु (कोमल), ३ गरू (भारी), ४ लघु (हलका), ५ उष्ण (गम), ६ शीत (ठण्ड), ७ सस्निग्ध (चीकना), ८ रुक्ष (लूखा), ये आठ फर्स पुद्गलमें होते हैं, सो वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, और स्पर्श ८ यह सर्व मिलकर पुद्गलमें २० गुण जानना। सो इन २० गुणोंमेंसे एक परमाणुके विषय ५ गुण मिलते हैं सो ही दिखाते हैं, कि ५ वर्णमेंसे चहिये जौनसा १ वर्ण होय, और दो गन्धमें से चहिये जौनसा एक गन्ध होय, और ५ रसमेंसे चहिये जौनसा एक रस होय, और आठ स्पर्शोंमें से ४ स्पर्शतोमिलते हैं नही सो उनका नाम कहते हैं कि एक करकश, २ मृदु, ३ गुरु और ४ लघु, यह चार स्पर्श सूक्ष्म परमाणुके विषय नही होते, और शीत, उष्ण, स्निग्ध, और रुक्ष, इन चार स्पर्शोंमें से भी दो विरोधी स्पर्श एक परमाणु में रहे नहीं, क्योंकि देखो शीतका विरोधी उष्ण और स्निग्धका विरोधी रुक्ष। इसलिये अविरोधी दो स्पर्श होय सो ही दिखाते हैं कि, शीत और स्निग्ध होय, अथवा शीत और रुक्ष होय, अथवा उष्ण, स्निग्ध होय, अथवा उष्ण और रुक्ष होय। इसीरीतिसे एक परमाणु अर्थात् एक अंश है, उसमें अविरोधी दो स्पर्स मिले, इस रीतिसे एक परमाणुके विषय ५ गुण मिले। और दो प्रदेशी खन्दके विषय उत्कृष्टपनेसे दस गुण होय। क्योंकि देखो उन दो परमाणुओंमें भिन्न २ दो वर्ण, और दो रस, और दो गन्ध, तथा ४ अविरोधी स्पर्श सो दो दो जुदा २ प्रदेशके विषय होय। यह दस गुण दो पारमाणुका

जानना। और तीन प्रदेशी खन्दके विषय उत्कृष्टपनेसे १२ गुण होय सो इसरीतिसे १ वर्ण, और १ रस, यह दो गुण अधिक होय, बाकी द्वै प्रदेशीमे जो गुण कहा हैं उसको मिलायकर तीन प्रदेशवाले खन्दमे १२ गुण होय। क्योंकि देखो तीन प्रदेशवाले खन्दमें गन्धतो प्रायः करके दो ही हैं, और फर्स सूक्ष्म परमाणुमेंसे चार ही होय, इसलिये बारह गुण होय। और चार प्रदेशी खन्दके विषय उत्कृष्टसे १४ गुण होय, क्योंकि चार वर्ण, और चार रस, और बाकीके सर्व पूर्व उक्त-रीतिसे जान लेना। और पांच प्रदेशी खन्दके विषय ५ वर्ण, ५ रस, २ गन्ध, और चार फर्स, यह सोलह गुण पावे। इसरीतिसे संख्यात प्रदेशी खन्द अथवा असंख्यात प्रदेशी खन्द वा अनन्त प्रदेशी खन्द जितनीवार सूक्ष्म परिणामपने परिणमा होय तितनो वार उन खन्दोंके विषय उत्कृष्टपनेसे १६ गुण पावे, और जघन्यपनेसे तो पहले जो पांच गुण एक परमाणुके विषय कहा है उतनाही अनन्त प्रदेशी खन्दके विषय पिण होय, इस रीतिसे सूक्ष्म परिणाम वाले परमाणुमे गुण कहें।

अब बादर परिणाम वालेके भी गुण कहते हैं कि जो परमाणु बादर परिणाममे परिणमें उस परमाणुमें जघन्यसे तो सात २ गुण होय, क्योंकि पांचतो जो सूक्ष्म परमाणुमें कहें हैं सो होय और कर्कश वा मृद, गरु वा लघु, इन चार स्पर्शोमें से अविरोधी दो स्पर्श होय, इसरीतिसे बादर परिणाम वाले परमाणुमें ७ गुण पावे, और उत्कृष्ट पनेसे २० गुण पावे, इसरीतिसे परमाणुमें गुण कहा।

अब इनमें पर्याय भी कहते हैं, कि जैसे एक गुण कृष्ण है तैसे ही एक गुण नीलादिक है, सो एक परमाणुमें सर्वथा जघन्यपने कृष्ण वर्ण होयतो एक गुण काला कहिये, पीछे तिससे वेशी कालास को दूना काला कहिये, इसरीतिसे यावत् संख्यात गुणकाला, संख्यात गुण काला अथवा अनन्त गुण काला वर्ण होय तो एक काला ही गुण कहे, परन्तु उसमें जो कमती वा वृद्धि, तरतमतासे होना उसका नाम पर्याय जानना, इस रीतिसे रक्त पीतादिके विषय जान लेना।

(प्रश्न) गुण और पर्यायके विषय में भेद क्या है जो तुम जुदा कहते हो, गुण कहो चाहे पर्याय कहो।

(उत्तर) गुण और पर्यायमें किञ्चित भेद है सो ही दिखाते हैं "सहभाविनो गुण" "क्रमभाविनो पर्यायः" अर्थ-सदैव सहभावी होय उसका नाम गुण है, क्योंकि देखो वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श इनकोतो गुण कहना, क्योंकि यह सामान्यपने मूर्तिमंत्त द्रव्यसे एक देश भिन्न न होय, इसलिये इनको गुण कहा। और जो अनुक्रम करके होय सो सदा सहभावी न होय, इसलिये उसको पर्याय कहा। जैसे एक गुण रक्तादिक होय सो द्वै गुण रक्तादिककी अवस्थाको निरवृती अर्थात् कमती होय, और द्वै गुण रक्तादि त्रिगुण अवस्थासे निरवृति होना, इस रीतिसे पूर्व २ अवस्थाको निरवृति अर्थात् नास और उत्तर २ अवस्थाका आविर्भाव अर्थात् उत्पती होना उसका नाम पर्याय है। क्योंकि देखो यह प्रत्यक्ष वनस्पति अथवा सफेद वस्त्र आदिक पर रङ्गादि कमती वढ़ती दीखता है सो ही दिखाते हैं। जैसे आम, पीपल आदिकका पत्ता, कोंपल आदिक निकलतो है उस वक्तमें सुर्ख दिखती है फिर वह कोंपल क्रम २ करके सुर्खीतो दूर होती चली जाती है और नीलादि क्रम २ करके वढ़ती चली जाती है। इसी रीतिसे जो कोई सफेद-वस्त्रको लाल करे चाहें तो उस वस्त्रकी क्रम २ अर्थात् थोड़ी २ करके सफेदी तो कम हो जाती है और सुर्खी उसी रीतिसे वढ़ती चली जाती है यह अनुभव लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, इसलिए क्रम भावीसो पर्याय और सहभावी सो गुण, सो इस गुण पर्यायमें किञ्चत भेद है सो कहा।

अव पुद्गलका संस्थान भी कहते हैं कि, एक तो गोल संस्थान, जैसे गोला होता है। दूसरा वर्तुल संस्थान अर्थात् वलय (घेरे) का आकार, (३) लम्बा संस्थान अर्थात् दण्डवत, चौथा समचतुरंश संस्थान अर्थात् अर्ज तूल वरावर, इस रीतिसे सस्थानोंके अनेक भेद हैं सो अन्य शास्त्रोंसे जानना, इस रीतिसे ६ द्रव्य शास्त्रानुसार सिद्ध किये।

गुण ।

अब इन छओं द्रव्योंके गुण कहते हैं सो प्रथम जीव द्रव्यके चार गुण—१ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र, ४ अनन्त वीर्य। आकाश द्रव्यके चार गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ अवगाहना (जगह) दानगुण। धर्मस्तिकायके चार गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ गति सहाय। अधर्मस्तिकायके चार गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थिति सहाय। काल द्रव्यके चार गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ नया, पुराना वर्तना लक्षण। पुद्गल द्रव्यके चार गुण—१ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ मिलन, विखरन, पूरन, गलन।

पर्याय ।

अब इन छओं द्रव्योंके पर्याय कहते हैं। प्रथम जीव द्रव्यका चार पर्याय—१ अव्याबाध, २ अनअवगाह, ३ अमूर्तिक, ४ अगुरु लघु। आकाश द्रव्यके ४ पर्याय—१ खन्द, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु। धर्मस्तिकायके ४ पर्याय—१ खन्द, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु। अधर्मस्तिकायके ४ पर्याय—१ खन्द, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु। काल द्रव्यके ४ पर्याय—१ अतीत (भूत), २ अनागत, (भविष्यत), ३ वर्तमान, ४ अगुरु लघु। पुद्गल द्रव्यके ४ पर्याय—१ वर्ण, २ गन्ध, ३ रस, ४ स्पर्श अगुरु लघु सहित। इस रीतिसे छओं द्रव्योंके गुण पर्याय कहकर दिखाये, प्रथम लक्षणके स्वरूपको जताये, गुण पर्यायवत्वं द्रव्यत्वं सबके मन भाये, पाठकगण इस लक्षणका स्वरूप देख मनमें हुलसाये, वादियोंके वाद इस लक्षणमें नसाये, चिदानन्द स्याद्वादके गुण गाये, करके अभ्यास मिथ्या मोहको भजाये, पढे जो ग्रन्थ सो आनन्दको पाये, आगमका स्वरूप कहा आतम गुणको लखाये, छोड़े सब भ्रमजाल जैन मत ही में धाये, प्रथमतो कहा द्वितीय लक्षणके कहनेको चित्त अब चाये, इस रीतिसे प्रथम लक्षण कहा।

अब दूसरे लक्षणका स्वरूप कहते हैं।

प्रथम लक्षणमें ऐसा कहा था कि "गुण पर्याय वत्व' द्रव्यत्वं" सो इस लक्षणमें हमने छओं द्रव्योंको सिद्ध किया है। तथा गुण पर्याय वाले और इन गुण पर्यायका जो समुदाय उसीका नाम द्रव्य है, जब उसका नाम द्रव्य हुआ तो लक्षण यथावत स्वरूपसे मिल गया, और अति व्याप्ति अव्याप्ति, असम्भवादि दूषण सब मिट गया, इसलिये दूसरा लक्षण कहनेका भी हमारा चित्त चल गया, "क्रिया कारित्वं द्रव्यत्व" ये भी लक्षण बन गया। अब इसका अर्थ ऐसा है कि जो क्रिया करे सो ही द्रव्य है, इसलिये क्रिया करनेके वास्ते पेश्तर द्रव्योंके गुण और पर्यायमें साधर्मपना और वैधर्मपना कहकर पीछेसे द्रव्योंमें क्रियाका करना बतलावेंगे क्योंकि साधर्म, वैधर्म कहेके बिना क्रियाका यथावत करना द्रव्योंमें जिज्ञासुको समझना कठिन होजायगा, इस लिये पेश्तर छओं द्रव्योंमें गुण पर्यायका साधर्म और वैधर्मपना कहते हैं। साधर्म तो उसको कहते हैं कि सरीसी क्रिया अर्थात् काम करे और वैधर्म उसको कहते हैं—कि जो दूसरेसे भिन्न क्रिया अर्थात् काम करे, उसका नाम वैधर्मपना है सो ही दिखाते हैं। कि छओं द्रव्योंमें अगुरु लघु पर्याय सो सबमें समान (सरीखा) है, क्योंकि षट्-गुण हानि वृद्धि छओं द्रव्योंमें होती है, इसलिये इस अगुरु लघु पर्यायको सब द्रव्योंमें सरीखा कहा। आकाश, धर्म, अधर्म, इन तीनों द्रव्योंके तीन गुण, चार पर्याय, समान अर्थात् सरीखे है। और काल द्रव्यके भी तीन गुण समान हैं अर्थात् सरीखा है। और अचेतन पनेमें ५ द्रव्य समान अर्थात् सरीखा है, एक जीव द्रव्य नहीं है। और अरूपीपनेमें ५ द्रव्य समान, एक पुद्गल रूपी है। इसरीतिसे इनका साधर्मपना कहा। अब जो गुण एक द्रव्यमे है, दूसरेमें नहीं उसको दिखाते हैं और उसीको वैधर्मपना भी कहते हैं, कि चेतनपना जीव द्रव्यमें है, ५ द्रव्य अचेतन (अजीव) हैं। एक आकाश द्रव्य अवगाहना दान अर्थात् जगह देनेवाला है। एक धर्मास्तिकाय गति सहाय अर्थात् जीव पुद्गलको चलनेमें सहाय देती है, ५ द्रव्योंमें सहाय देनेवाला

कोई नहीं। एक अधर्मस्तिकाय स्थिति करानेमें सहाय देती है, बाकी ५ द्रव्य नही। नया पुराना करनेमें एक काल द्रव्य है बाकी ५ द्रव्य नहीं। मिलन, विखरन, पूरन, गलन, एक पुद्गल द्रव्यमें है, बाकी ५ द्रव्यमें नहीं। इसरीतिसे इनका साधर्मी वैधर्मीपना कहा।

अब ११ बोल करके इनकी जो क्रिया है उसको सिद्ध करते हैं। गाथा "परणामी जीवमुत्ता सपएसा एगीव्रत किरि आय निचका-रणकता सव्वगद इयर अप्पवेसा" अर्थ-निश्चय नय अर्थात् शुद्ध व्यवहारसे छओं द्रव्य अपने अपने स्वभावमें अर्थात् परिणामी हैं, परन्तु अशुद्ध व्यवहार और लौकिक व्यवहारसे तो जीव और पुद्गल दोही द्रव्य परिणामी दीखे हैं, और आकाश, धर्म, अधर्म और काल यह चार द्रव्य अपरिणामी दीखे हैं। तैसे ही इन छः द्रव्यमें एक जीव द्रव्यतो चेतन अर्थात् ज्ञान स्वरूप, वाकीके ५ द्रव्य अजीव अर्थात् जड़रूप हैं। तैसेही एक पुद्गल द्रव्य मूर्ति वन्त अर्थात् रूप वाला है और ५ द्रव्य अमूर्तिक अर्थात् अरूपी हैं।

(प्रश्न) तुम जो अरूपी कहते हो सो पदार्थके अभाव को कहते हो कि पदार्थके होते भी अरूपी कहते हो।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय! यह तेरा प्रश्न करना ठीक नहीं है; जिस वस्तुका अभाव है उस वस्तुका तो कुछ कहना सुनना बनता ही नहीं क्योंकि जो पदार्थ ही नही है, उस पदार्थका रूपी अरूपी कथन करना सो तो बन्ध्याके पुत्रके अथवा मनुष्यके सींगके समान है। इसलिये पदार्थके अभाव का कहना ही नहीं बनता, और जो तुमने कहा कि पदार्थके रहते भी अरूपी कहते हो सो पदार्थ है और उसको जैन शास्त्रोंमें अरूपी कहा है इसलिये हमने भी इसको अरूपी कहा।

(प्रश्न) तुमने जो कहा कि जैन शास्त्रोंमें अरूपी कहा है इस लिये हमने भी अरूपी कहा; सो यह तुम्हारा कहना तो जैनियोंके सिवाय दूसरा कोई नहीं मानेगा, हाँ अलबत्ता जो कोई युक्ति देओ सो युक्ति बनती नहीं है, क्योंकि जो पदार्थ मौजूद है उसको अरूपी कहना ठीक नहीं और जो तुम अपने पदार्थ को अरूपी मानते हो तैसेही हम

लोगभी ईश्वर को निराकार अर्थात् अरूपी मानते हैं; फिर तुम्हारा खण्डन करना क्योंकर बनेगा।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय! जो तुमने कहाकि जैन शास्त्र का वाक्य तो जैनी मानेंगे, सो यह कहना तेरा वेसमझका है। क्योंकि जो वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिकालदर्शी परमात्माने अपने ज्ञानमें देखा है, उस देखे हुए पदार्थ को शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया है सो उसके माननेमें कोई इनकार न करेगा किन्तु मानेही गा। और जो तुमने कहा कि जो तुम्हारा पर्दाथ मौजूद है उसमें अरूपी कहने की कोई युक्ति नहीं है, यह कहना तुम्हारा वेसमझका है क्योंकि देखो परमाणुको नैयायिक आदि अरूपी कहते हैं और अनुमानसे उस परमाणुको सिद्ध करते हैं। इसलिये जो तुमने कहा कि तुम्हारी कोई ऐसी युक्ति नहीं है कि पदार्थके रहते अरूपी कहो सो युक्ति तो परमाणुके विषय नैयायिक की तरह जान लेना, क्योंकि जैसे कार्यको देखकर कारण रूप परमाणु का अनुमान करते हैं, तैसेही पांच द्रव्यों का भी अनुमान होता है। सो हो दिखाते हैं। जीवका ज्ञानादि गुणसे अनुमान बन्धता है कि ज्ञानादि गुण कुछ है, तैसेही आकाशका जगह देना इत्यादि रीतिसे सर्व द्रव्योंका अनुमान बंधता है, सो द्रव्यों को सिद्ध तो हम पेश्तर कर चुके हैं, इस लिये यह पाँचो द्रव्य अरूपी ठहरते हैं। दूसरा जैनके इस स्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य नहीं जाननेसे और दुःख गर्भित, मोह गर्भित वैराग्यवालोंके धूम धमाधम मचाने (करने) से अच्छे पुरुषों की भी खबर नहीं पड़ती, और उस सत्पुरुषकी खबर न होनेसे विनय आदिक नहीं बनता और विनय आदिकके ही न होनेसे वह सत्-पुरुष धर्म के लायक न समझ कर शास्त्र का यथावत् रहस्य नहीं कहता, इसलिये मिथ्यात्व मोहनीके ज़ोरसे अनेक तरहके संकल्प विकल्प उठते हैं। सो हे भोले भाई श्रीवीतराग परमेश्वर त्रिकालदर्शी ने केवल ज्ञान में जो पदार्थ जैसा देखा तैसा ही वर्णन किया, सो वह केवल ज्ञानीके केवल ज्ञानमें तो अरूपी कुछ वस्तु है नहीं, जो उस केवल ज्ञानमें ही न दीख पड़ती तो उसका वर्णन ही क्योंकर करते।

इसलिये केवलीके केवल ज्ञानमे तो जो पदार्थ अर्थात् द्रव्य है सो देखनेमें आये, इसलिये केवल ज्ञानीके केवल ज्ञानमें ये पदार्थ रूपी अर्थात् कुछ वस्तु हैं, परन्तु छद्मस्थ अर्थात् चर्मदृष्टिवालेकी दृष्टिमे अरूपी है, क्योंकि वे चर्म दृष्टि अर्थात् नेत्रोंसे नही दीखते इसलिये ये अरूपी है। क्योंकि देखो और भी एक दृष्टान्त देते हैं, जैसे वायु प्रत्यक्ष नेत्रोंसे नही दीखती और स्पर्श होने से मालूम होती है कि वायु है, दूसरे जो योगी लोग हैं उनको वायु नेत्रों के विना योग क्रिया से प्रत्यक्ष दीखती है, तैसे ही इन पांच द्रव्य अरूपीमे भी जानना, इसलिये जिज्ञासुके समझानेके वास्ते और छद्मस्थके नेत्रोंसे न दीखा इस लिये अशुद्ध और लौकिक व्यवहारसे अरूपी कहा। इस युक्तिको मानो, जास्ती क्यों तानों, छोड़ अभिमानो, सद् गुरुके वचन करो प्रमानो, जिससे होय तुम्हरा कल्यानों।

६ द्रव्यमें ५ द्रव्य प्रदेशवाले हैं, एक काल द्रव्य अप्रदेशवाला है, तिसमें भी धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य असख्यात् प्रदेशवाले हैं, और आकाश अनन्त प्रदेशवाला है, और एक जीव असंख्यात् प्रदेशवाला है सो जीव अनन्ता है पुद्गल परमाणु अनन्ता है।

६ द्रव्यमें एक धर्म, २ अधर्म, ३ आकाश, ये तीन द्रव्य तो एक एक द्रव्य हैं। और जीव द्रव्य, दूसरा पुद्गल द्रव्य, ३ काल द्रव्य, यह अनेक हैं।

(प्रश्न) तुमने जो तीन द्रव्योंको तो एक एक कहा और तीन द्रव्योंको अनेक कहा इसका प्रयोजन क्या है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय ! धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीनों द्रव्य एक कहनेका प्रयोजन यही है कि यह तीनों द्रव्य एक जगह जहाँके तहां अवस्थित अनादि अनन्त भांगोसे हैं, जो प्रदेश जिस जगह अवस्थित है उसी जगह अनादि अनन्त भांगोसे अवस्थित रहेगा. और जो जिसकी क्रिया है सो वहीसे करता रहेगा, इस अपेक्षासे इनको एक २ कहा। और जीव द्रव्य है सो भव्यभी है, अभव्यभी है, कोई जाति भव्यो है, कोई सिद्ध है, कोई संसारी है कोई स्वभावमें है, कोई विभावमें है, इस लिये अनेक कहा।

इसी रीतिसे पुद्गल और कालमे भी समझ लीजिये, ज्ञान सुधारस पीजिये, गुरूके चरनोमे चित्त दीजिये, अपनी आत्माका कल्याण कीजिये, इसरीतिसे एक अनेक जानना।

६ द्रव्यमें एक आकाश द्रव्य क्षेत्रहै और ५ द्रव्य क्षेत्रिय अर्थात् रहनेवाले हैं, निश्चय नय अर्थात् शुद्ध व्यवहारसे छओं द्रव्य अपने २ कार्यमे सदा प्रवृत्त रहते है, इसलिये छःओं द्रव्य सक्रिय हैं। परन्तु अशुद्ध व्यवहार लौकिकसे तो जीव और पुद्गल दोही द्रव्य सक्रिय हैं, परन्तु इनदो द्रव्यमें भी पुद्गल सदा सक्रिय है, और जीवद्रव्यतो ससारी पनेमें सक्रिय हैं, परन्तु मोक्ष दशा अर्थात् सिद्ध अवस्थामें अक्रिय है। बाकीके चार द्रव्य लौकिक व्यवहारसे अक्रिय हैं। निश्चय नय अर्थात् शुद्ध व्यवहार द्रव्यार्थिक नय अपेक्षासे तो छओ द्रव्य नित्य हैं, परन्तु पर्यार्थिक् नय उत्पाद व्ययकी अपेक्षासे छओं द्रव्य अनित्यभी हैं, परन्तु अशुद्ध व्यवहार लौकिकसे जीव औरपुद्गल दोही द्रव्य अनित्य हैं, क्योंकि जीवतो चारगतिके कर्म सयोगसे जन्म, मरण आदिक विभाव दशामे अनेक सुख दुःख भोगता है, इसीलिये अनित्य है, ऐसेही पुद्गलको जानो, इसीलिये इन दोनों द्रव्योंको अनित्य कहा, बाकीके चार द्रव्य ईनकी अपेक्षासे नित्य है, परन्तु छओं द्रव्य उत्पाद वयध्रुवपनेमें सदासर्वदा सर्व्व पदाथ परिणामीपनेमें परिणमे हैं।

इन छओं द्रव्योंमें एक जीव द्रव्य कारण है, और पाच अकारण है। कोई २ पुस्तकमें ५ द्रव्यको कारण और जीव द्रव्यको अकारण कहा है सो पाँच द्रव्यका कारण पना युक्तिसे सिद्ध नही होता है, क्योंकि पांचो द्रव्य अजीव हैं, इसलिये कारण नही वन सके। और वहुत जगह सिद्धान्तोमें जीवको कारण कहा है, इसलिये जीव कारण है और ५ अकारण हैं।

इन छओ द्रव्योंमें एक आकाश द्रव्य सर्व व्यापी है, और पाच द्रव्यलोक व्यापी है।

निश्चय नय अर्थात् निस्सन्देह शुद्ध व्यवहारसे तो छओं द्रव्यकर्ता हैं। और अशुद्ध व्यवहारसे एक जीव द्रव्य करता है, बाकी ५ द्रव्य अकर्त्ता

है । क्योंकि लौकिकमें जीव द्रव्यकाहो सव कर्त्तव्य दीखता है, इसलिये जीवको कर्त्ता कहा; परन्तु बुद्धि पूर्वक शुद्ध व्यवहारसे छओं द्रव्यही अपने २ परिणामके कर्त्ता हैं, और अपनी २ क्रिया कर रहे हैं, और अपनी क्रियाको छोड़कर दूसरी क्रिया नहीं करते, क्योंकि देखो सर्व द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं और कोई किसीमें मिलता नहीं, जो अपनी २ परिणामकी क्रिया न करते तो सर्व द्रव्य एक होजाते; सो सर्व द्रव्य अपने २ परिणामसे अपनी २ उत्पादव्यय ध्रुवकी क्रिया सदासर्व द्रव्य कर रहे हैं, इसीलिये श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने क्रिया कारित्वं द्रव्यत्वं कहकर समझाया । भव्य जीवोंको यथावत बोध कराया, शास्त्रके अनु-सार किंचित् स्वरूप हमनेभी जताया, इसीलिये क्रिया कारित्वं द्रव्यका लक्षण ठहराया, अव तीसरे लक्षण वर्णन करनेका मौका आया, इसजैन धर्मका रहस्य कोई विरलोंने पाया, इसके विना दूसरी जगह मिथ्यात्व मोह छाया, जैनधर्मके रहस्य विना कुगुरुओंने धक्काधूम मचाया, केवल , एकपेट भरना मनुष्य जन्मको गवांया, द्रव्य अनुभव रत्नाकर किंचित् मैंने लिखाया, दुःख गर्भित, मोह गर्भित साधुवने परन्तु साधुपन न दिखाया, द्रष्टिराग वांध भोले जीवोंको लड़ाया, वास्ते वहुमानके कदाग्रह मचाया, समकित न लगी हाथ वहुत संसारको वधाया, इसरीतिसे दूसरे लक्षण का वर्णन किया ।

तीसरे लक्षणका स्वरूप

अव तीसरे लक्षणका वर्णन करते हैं । "उत्पादव्यय ध्रुवयुक्त द्रव्यंत्वं" उत्पाद नाम उपजे, वय नाम विनाश होय ध्रुव नाम स्थित रहे, यह तीनोंवात जिसमें होय उसका नाम द्रव्य है, सो इस उत्पाद, वय ध्रुव, दिखानेके वास्ते पेश्तर आठ पक्षका स्वरूप कहते हैं सो आठ पक्षोंके नाम यह हैं १ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य, ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य । इसरीतिसे नाम कहे, अव इन आठो पक्षोंको छओ द्रव्योंके ऊपर जुदा २ उतारकर दिखाते हैं ।

नित्य—अनित्य ।

प्रथम नित्य, अनित्य पक्षका स्वरूप कहते हैं । जीव द्रव्यका चार गुण और ३ पर्याय नित्य हैं, एक अगुरु लघु पर्याय अनित्य है, आकाशास्ति कायका ४ गुण एक पर्याय अर्थात् खन्दलोक अलोक प्रमाण नित्य हैं । देश, प्रदेश, अगुरु लघु ये तीन पर्याय अनित्य हैं । धर्मास्ति कायका चार गुण एक पर्याय नित्य है, देश, प्रदेश, अगुरु लघु, ये तीन पर्याय अनित्य हैं। अधर्मास्ति कायका चार गुण और एक पर्याय नित्य है देश, प्रदेश, अगुरु लघु, तीन पर्याय अनित्य है । काल द्रव्यके चार गुण नित्य हैं, पर्याय चारोंही अनित्य है । पुद्गल द्रव्यका चार गुण नित्य है, पर्यायचारोंही अनित्य हैं । इसरीतिसे नित्य, अनित्य पक्ष छओं द्रव्योंमें कहा और इस नित्य अनित्य पक्षसे उत्पाद और विनासका किंचित् अभिप्राय कहा ।

एक—अनेक ।

अब एक अनेक पक्षभी छओं द्रव्योंके ऊपर उतारकर दिखाते हैं, कि जीव द्रव्यमें जीवत्व अर्थात् चेतना लक्षणपना तो एक है, और जीवमें गुण अनेक, पर्याय अनेक, इसरीतिसे अनेक हैं, अथवा जीव अनन्ते हैं, इसरीतिसे भी अनेक हैं, इसलिये जीवमें एक, अनेक पक्ष हुआ । इस एक अनेक पक्षको सुनकर जिज्ञासु प्रश्न करता है सो किंचित् प्रश्नोत्तर दिखाते हैं ।

[प्रश्न] जो तुम एक पक्षसे जीवको समान कहोगे तो वेदान्त मतका अद्वैत वाद सिद्ध होगा, फिर जैन मतका नाना (अनेक) मानना न बनेगा दूसरा और भी सुनोंकि प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान प्रमाणसे जीवोंकी व्यवस्था जुदी २ दीखती हैं, फिर एक पक्षसे एक सरीखाकहना क्योंकर बनेगा, क्योंकि जुदी २ व्यवस्था दीखती है, कि एक जोवतो शुद्ध परमात्मा आनन्दमयी , जन्ममरण दुःखसे रहित सिद्ध अवस्थामें विराजमान है, दूसरा ससारी जीव कर्मके वसमें पड़ा हुआ जन्म, मरण करता है, उस ससारी जीवमें भी कोई नरकमें, कोई स्वर्गमे, कोई त्रियंचमें,

कोई मनुष्यमे, नाना प्रकारके सुख अथवा दुःख भोगते हैं, इस रीतिसे आगम, अनुमान, प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे अनेक व्यवस्था होरही है, फिर तुम्हारी एक पक्ष क्योंकर घट सक्ती है।

[उत्तर] भो देवानुप्रिय जो तुमने अद्वैत मतवादीके मध्ये कहा कि उसका अद्वैतवाद सिद्ध हो जायगा, सो वह अद्वैतवादी तो एकान्त करके एक पक्ष को लेता है, इसलिये उसका अद्वैत सिद्ध नहीं होता, और उसका खण्डन मण्डन "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" दूसरे प्रश्नके उत्तरमे विस्तारपूर्वक है वहांसे देखो। और श्री वीतराग सर्वज्ञदेवका कहा हुआ जो जिनधर्म उसमें कहा हुआ स्याद्वाद सिद्धान्त अर्थात् एकान्त पक्षको छोड़कर अनेकान्त पक्ष अङ्गीकार है, इसलिये एकपक्षभी बनता है और अनेक पक्षभी बनता है, दूसरा जो तुमने तीन प्रमाण देकर जुदी २ व्यवस्था बताई, उसमे तुम्हारी बुद्धिमे यथावत जिन आगमके रहस्यकी प्राप्ति नही हुई, अथवा सत्य उपदेश दाता गुरुकी सोहबत तेरेको नहीं हुई, इसलिये तेरेको ऐसी तर्क उठी, और एक पक्ष समझमें नही आई, सो अब तेरेको इस स्याद्वादका रहस्य समझाते हैं सो तूं समझ, कि निश्चय नय अर्थात् निःसन्देह शुद्ध व्यवहार करके द्रव्यार्थिक नयगमनयकी अपेक्षासे सर्व जीव सिद्धके समान हैं, जो सर्वजीव एक समान न होते तो कर्मक्षय करके सिद्धभी कदापि न होते, इसलिये सर्व जीवकी सत्ता एक है। जो तुम ऐसा कहो कि सर्व जीवकी सत्ता एक है तो अभव्य मोक्ष क्यो नहीं जाय। इस तेरी शंका का ऐसा समाधान है कि—अभव्य जीवका कर्म चीकना अर्थात् पलटन स्वभाव नही, इसलिये वो मोक्ष नही जाता, परन्तु आठ रुचक प्रदेश सर्व जीवोंके मुख्य हैं, उन आठ रुचक प्रदेशोंमें कर्मका संयोग नही होता सो वे आठ रुचक प्रदेश सबके निर्मल होते हैं, चाहे तो भव्य होय और चाहें अभव्य होय, इसलिये उन आठ रुचक प्रदेशोंको अपेक्षासे नयगम नय वाला निसन्देह शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यपनेमें भव्य और अभव्य सर्वको सिद्धके समान मानता है। दूसरा और भी सुनोंकि सर्व जीव चेतना लक्षण करके एक सरीखा है, इसलिये एक, अनेक पक्ष जीवमें

दिखाया, तुम्हारे भ्रमको मिटाया, किंचित् स्याद्वाद का रहस्य दिखाया, इसके बाद आगेके द्रव्योमे पक्ष उतारनेको चित्त चाया।

ऐसेही आकाश द्रव्यमें अवगाहना दान गुण और खन्दलोक, अलोक प्रमाण एक है, देश, प्रदेश अनेक है, अथवा पर्याय अनेक हैं।

ऐसेही धर्मस्तिकायमे चलन सहाय आदिक गुण करके अथवा लोक प्रमाण खन्द करके तो एक है, और देश प्रदेश करके अनेक हैं, गुण करके अनेक हैं अथवा पर्याय करके अनेक हैं, इसरीतिसे अनेक हैं।

ऐसेही अधर्मस्तिकायमे स्थिर सहाय गुण करके एक हैं, अथवा लोक प्रमाण खन्द करके एक है, देश, प्रदेश करके अनेक हैं, अथवा गुण अनेक हैं, पर्याय अनेक हैं, इसरीतिसे अनेक हैं।

ऐसेही काल द्रव्य, वर्त्तना लक्षण करके तो एक है, परन्तु गुण अनेक है, पर्याय अनेक हैं।

ऐसेही पुद्गल द्रव्यमे पुद्गल पना अथवा मिलन, विखरन गुण अथवा परमाणुरुप करके तो एक है, क्योंकि पुद्गलमें पुद्गलपना और परमाणुपना सबमें एक सरीखा हैं,इसलिये एक है, परन्तु गुण अनेक है और पर्याय अनेक हैं, अथवा परमाणु अनन्त है, इसरीतिसे अनेक हैं। छओं द्रव्योंमें इसरीतिसे एक, अनेक पक्ष कहा, अब सत्य, असत्य पक्ष कहनेको दिल चहा।

सत्य—असत्य।

छओं द्रव्योंकी स्वयद्रव्य, स्वय क्षेत्र, स्वयकाल, स्वयभाव करके तो सत्यता है परन्तु परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव करके असत्य है, सो प्रथम इन छओं द्रव्योंका स्वयद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दिखाते हैं कि किस किस द्रव्यका कौन द्रव्य, कौन क्षेत्र, कौन काल, कौन भाव है। जीव द्रव्यका स्वय द्रव्य जो गुण पर्यायका भाजन अर्थात् समूह। और जीव द्रव्यका स्वय क्षेत्र एक जीवके असंख्यात्

प्रदेश, और जीव द्रव्यका स्वयकाल षट्गुण हानि, वृद्धि, अगुरु लघु पर्यायका जो फिरना वो काल है, जीवका स्वयभाव ज्ञानादि चेतना लक्षण मुख्य गुण है सो ही स्वभाव है। ऐसेही आकाश द्रव्यमें स्वय द्रव्य जो गुणपर्यायका भाजन सो ही स्वय द्रव्य है, और स्वय क्षेत्र जो लोक, अलोकके अनन्त प्रदेश, और स्वयकाल सो अगुरू लघुका फिरना, और स्वय भाव जो अव गाहना दान गुण। इसी रीतिसे धर्मस्ति कायका स्वय द्रव्य जो गुण पर्यायका समूह, स्वय क्षेत्र असंख्यात प्रदेश, स्वयकाल अगुरु लघु, स्वयभाव चलन सहाय मुख्य गुणवोही स्वभाव है। ऐसे ही अधर्मस्ति कायका जानलेना। काल द्रव्यका स्वय द्रव्य गुणपर्यायका समूह, स्वय क्षेत्र एक समय मात्र, स्वयकाल अगुरू लघुका फिरना है, स्वयभाव जो मुख्य गुण-वर्त्तना लक्षण। ऐसे ही पुद्गल द्रव्यका स्वय द्रव्य गुणपर्यायका समूह, स्वय क्षेत्र परमाणु, स्वयकाल अगुरू लघुका फिरना है, स्वय स्वभाव जो मुख्य गुण मिलन विखरन। इस रीतिसे छओं द्रव्यमें द्रव्य, क्षैत्र, काल, भाव कहा। सो स्वय द्रव्य, स्वयक्षेत्र, स्वयकाल, स्वयभाव करके तो सत्य हैं। और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव करके असत्य हैं। जो स्वय करके सत्य और पर करके असत्य न होय तो दूसरा द्रव्य न ठहरे, और कोई कार्य्य भी न होय, इस-लिये स्वय करके सत्य और पर करके असत्यता अवश्यमेव पदार्थोंमें है। और इस सत्य असत्यके होने ही से जुदा पदार्थ ठहरता है, इसीलिये वेदान्तीका अद्वैत नहीं ठहरता है। इस रीतिसे सत्य असत्य पक्ष कही।

वक्तव्य—अवक्तव्य।

अव वक्तव्य, अवक्तव्य पक्ष कहते है कि जो वचनसे कहनेमें आवे सो तो वक्तव्य है, और जानेतो सही परन्तु वचनसे नही कह सके सो अवक्तव्य है। सो इसका वर्णन तो हमने स्याद्वाद अनुभव आदि कई ग्रंथोंमें किया है, परन्तु युक्ति यहां भी दिखाते हैं। जैसे

किसी चतुर पुरुषको भूख लग रही है, उस वक्त उसको कोई अच्छे २ भोजनके पदार्थ थालमे परोसके आगे रक्खे और उससे कहे कि आप भोजन करो, तव वो पुरुष उस पदार्थमेंसे दो, चार, दस कवर-ग्रास खाय चुके उसवक्त वह जिमाने वाला पुरुष पूछे कि आपने जो पेश्तरका कवा (कवल) (ग्रास) (कौर) लिया था उसका जो स्वाद रसना इन्द्री अर्थात् जिह्वासे मालूम हुआ है सो हमको ज्यों कात्यों सुना दीजे, तव वो पुरुष उस भोजनमें खट्टा, मीठा, सलौना, अथवा कषायला, कड़्वा, फीका आदि अच्छा बुरातो कहेगा, परन्तु जो उसकी जिह्वाने उस भोजनमें यथावत् जाना है सो कह नही सक्ता, यह अनुभव हरएक पुरुषको है, सो जो खट्टा, मीठा, सलौना आदि वचनसे कहना सोतो वक्तव्य है, और जो रसना इन्द्रीने स्वाद जाना और कहनेमें न आयासो अवक्तव्य है। इस रीति की युक्ति संसारी विषय आनन्दमें अनेक तरह की हैं परन्तु ग्रंथके वढ़जानेके भयसे विस्तार न किया। इस रीतिसे वक्तव्य, अवक्तव्य कहकर आठ पक्ष पूर्ण किया, भव्यजीवोंके वास्ते अधेरे घरका दिया करदिया; आत्मार्थियोंने अमीरसपिया, चिदानन्द जान यह शुद्ध मार्गको लिया।

(प्रश्न) आपने जो "उत्पादवय, ध्रुव युक्तं इति द्रव्यत्व" ऐसा लक्षण कहाथा सो उसकातो प्रतिपादन न किया और नित्य अनित्यादि आठ पक्षका वर्णन लिखाया और लक्षणका प्रतिपादन किंचित् भी न आया, तो लक्षणका नाम क्योंकर लिखाया। इसलिये इस ग्रंथमें प्रकरण विरुद्ध दूषण होगा, और जिज्ञासु को यथावत वोधभी न होगा।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय अभी तेरेको द्रव्यानुयोगके जानने वाले उपदेश दाता यथावत न मिले और दु.ख गर्भित, मोह गर्भित वैराग्य वाले पुरुषोंके संगसे राग, रागिनी, ढाल, चौपाई, चरित्र आदि सुने, अथवा जो कि गुरुकुलवास विना आत्म अनुभव सुन्य अपनी वुद्धिकी तीक्ष्णतासे स्याद्वाद सिद्धान्तके अजान कई इस कालमें

द्रव्यानुयोग की ऊट पटांग कथनी करगये हैं, ग्रंथोमे भ्रम जाल भर गये हैं, कितने ही विचारोंको दुवदूं (सन्मुख) भी समभायकर त्याग पच्चखानसे भ्रष्टकर गये हैं, सो ऊपर लिखित पुरुषोंकी या ग्रंथोंकी सुहवतसे तुमको ऐसी शंका हुई कि प्रकरण विरुद्ध होगा, सो तुमने प्रश्न कर जताया, और हमारे अभिप्रायको किंचित् भी न पाया, सोतेरा सन्देह दूर करनेके वास्ते किंचित् प्रयोजन कहते हैं कि हे भोले भाई हमारा अभिप्राय ऐसा है कि जिज्ञासुको थोड़ेमें यथावत ज्ञान होना मुशकिल जानकर विशेष समभानेके वास्ते इन आठ पक्षोंको सामान्य रूपसे कहा। और इनका विस्ताररूप दिखावेंगे, जव जिज्ञासु इन वातोंको समभ लेगातो उत्पाद, वय, ध्रुव, लक्षण द्रव्यका यथावत जान लेगा, इसलिये इस ग्रन्थमें प्रकरण विरुद्ध दूषण नहीं आता। और इन आठ पक्षोंका किंचित् विस्तार करके इन पक्षोमे जो लक्षण हमने कहा है उसको उतारकर दिखावेंगे, तव इस तुम्हारी प्रकरण विरुद्ध शंकाका लेश भीन रहेगा। अव इन आठ पक्षोंका ही किंचित् विस्तारसे वर्णन करते हैं।

नित्य अनित्य पक्ष।

प्रथम नित्य, अनित्य पक्षसे चौभंगी उत्पन्न होती है, सो उस चौभंगीका पेश्तर नाम लिखते हैं कि वे चारभागा इस रीतिसे हैं। प्रथम भांगा अनादि अनन्त है, दूसरा भांगा अनादि सान्त है, तीसरा भांगा सादी सान्त है, चौथा भांगा सादी अनन्त है, इस रीतिसे चारो भांगोंका नाम कहा। अव इनका अर्थ कहते हैं, कि अनादि अनन्त उसको कहते हैं कि जिसकी आदि भी नही और अन्त भी नहीं। और अनादि सान्त उसको कहते हैं कि जिसकी आदितो है नहीं, और अन्त है। सादी सान्त उसको कहते है कि जिसका अन्त भी है और आदि भी है, सादी अनन्त उसको कहते हैं, कि जिसकी आदि तो है और फिर अन्त नहीं। इस रीतिसे इन चारो भांगोका नाम सांकेत और लौकिक मिला हुआ है।

इन चारो भांगोको प्रथम जीव द्रव्यमे दिखाते हैं। जीवमें ज्ञानादि गुण सम्वाय सम्बन्धसे अनादि अनन्त है, और नित्य है, और कोई अपेक्षासे जीवमे ज्ञानादिक गुण सादी सान्त है, और कोई अपेक्षासे जीवमें ज्ञानादिक गुण सादी अनन्त हैं, परन्तु अनादि सात भागा है नही। दूसरी रीति और भी है कि सर्व जीवोंकी अपेक्षासे तो जीवमें कर्म अनादि अनन्त है, और भव्य की अपेक्षासे कर्म अनादि सान्त है, और चारगति अर्थात् देवगति, मनुष्यगति, त्रियचगति और नर्कगति, इसकी अपेक्षा करें तो कर्म सादी सान्त है। क्योंकिदेखो जीव शुभ कर्म, अशुभ कर्मके ज़ोरसे ही जन्म, मरण करता है, इसलिये सादी सान्त है, और जो जीव कर्मसे मुक्त अर्थात् छूटकर मोक्षमें प्राप्त होता है वो जीव सादी अनन्त भागेसे है, क्योंकि मोक्षमें गया उसकी आदि है, फिर कभी ससारमें न आवेगा इसलिये अन्त नहीं किन्तु अनन्त है। इसरीतिसे जीवमें चौभंगी कही।

अव धर्मस्ति कायमें चौभगी कहते हैं। धर्मस्ति कायके चार गुण और लोक प्रमाण खन्द ये पांच चीज अनादि अनन्त है, और अनादि सान्त भांगा इसमें नहीं है, देश, प्रदेश, अगुरुलघु,ये सादी सान्त भांगेसे हैं, और सिद्ध जीवसे धर्मस्ति कायके जो प्रदेश लगे हुए हैं वे सादी अनन्त भागेसे हैं, यह चार भागे कहे। इसीरीतिसे अधर्मस्ति कायमें और आकाशमें भी समझ लेना। पुद्गलमें चार गुण अनादि अनन्त है, और पुद्गलका खन्द सर्व सादी सान्त भागेसें है, दो भांगे पुद्गलमें वनते हैं नहीं। काल द्रव्यमें चार गुण अनादि अनन्त हैं, और पर्यायमें अतीतकाल अर्थात् भूतकाल अनादि सान्त है, वर्तमान काल सादी सान्त है, अनागत अर्थात् भविष्यत काल सादी अनन्त है, इस रीतिसे इन छओ द्रव्योंमें चौभंगी कही।

अव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें चौभंगी कहते हैं, सो जीव द्रव्य अर्थात् गुण पर्यायका भाजन समूह रूप अनादि अनन्त है, जीवद्रव्य का स्वय क्षेत्र अर्थात् असख्यात प्रदेश सादी सान्त है, क्योंकि उन प्रदेशोंमें आकुञ्चन, प्रसारन गुण है, इसलिये सादी सान्त कहा, सो भी

संसारी जीवकी अपेक्षा और उदवर्त्तन न्याय करके (उदवर्त्तन न्याय उसको कहते हैं कि जैसे पानीका वर्तन चूल्हेके ऊपर चढ़ाय नीचे अग्नि जलावे उस अग्निके ज़ोरसे वो पानी उस वर्त्तनमें नीचे ऊपरको घूमता है) मिथ्यात्व अर्थात् अज्ञान रूप कर्मवन्ध अग्निसे जीवको प्रदेश फिरते हैं, और चौरासी लाख जीवा योनिकी अपेक्षासे आकुंचन (कम होना) प्रसारन (वढ़ जाना) इस अपेक्षासे सादी सान्त है, परन्तु सिद्ध क्षेत्रमें सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे जो सिद्ध जीवोंके प्रदेश हैं सो स्थिरी भूत होनेसे सिद्ध जीव क्षेत्रमें यह भांगा नहीं बनता । और जीव द्रव्यका स्वयकाल अर्थात् अगुरु लघुपर्याय करके तो अनादि अनन्त है, परन्तु उत्पाद वयकी अपेक्षा करें तो जीव द्रव्यका स्वकाल सादी सान्त है । जीव द्रव्यका स्वयभाव अर्थात् ज्ञानादि मुख्य गुण समवाय सम्वन्धसे तो अनादि अनन्त है, परन्तु सर्वजीवकी अपेक्षा और लौकिक अशुद्ध व्यवहार तिरोभाव आविर भावकी अपेक्षासे मति, श्रुति आदिक ज्ञान सादी सान्तभी होता है, और सिद्ध जीवके आविर भाव केवल ज्ञानकी अपेक्षासे सादी अनन्त भांगा होता है, इसरीतिसे जीव द्रव्यमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें चौभंगी कही ।

अब धर्मस्ति कायके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें चौभंगी कहते हैं । धर्मस्ति कायका स्वय द्रव्य अर्थात् गुण पर्यायका भाजन रूपतो अनादि अनन्त हैं, और धर्मस्ति कायका स्वय क्षेत्र अर्थात् असंख्यात् प्रदेश लोक प्रमाण खन्द रूपतो अनादि अनन्त है, और देश प्रदेश कोई अपेक्षासे सादी सान्त है, और धर्मस्ति कायका स्वयकाल अर्थात् अगुरुलघु पर्याय तो अनादि अनन्त है, परन्तु उत्पाद वयकी अपेक्षासे सादी सान्त है । धर्मस्ति कायका । स्वयभाव चलन सहाय आदि मुख्य गुण अनादि अनन्त हैं, परन्तु कोई जीव, पुद्गलको सहाय देती दफे उस गुणको सादी सान्त माने तौ भी हो सक्ता है । इसीरीतिसे अधर्मस्ति कायमें जान लेना ।

अब आकाशास्तिकायमें चौभंगी कहते है । आकाशका स्वय द्रव्य अर्थात् गुण पर्यायका समूह सो तो अनादि अनन्त है, आकाशका

स्वय क्षेत्र अर्थात् लोक अलोक मिलकर अनन्त प्रदेश हैं सो अनादि अनन्त हैं। आकाशका स्वय काल अर्थात् अगुरु लघु पर्याय करके तो अनादि अनन्त हैं, परन्तु उत्पाद वयकी अपेक्षासे सादी सान्त है। और आकाशका स्वयभाव अर्थात् अवगाहना दान मुख्य गुण अनादि अनन्त है, खन्दलोक प्रमाण अनादि अनन्त है, परन्तु देश, प्रदेशोंमें कोई अपेक्षासे सादी सान्त है, सो आकाशके दो भेद हैं। एकतो लोक आकाश, दूसरा अलोक आकाश, सो लोक आकाशका तो खन्द सादी सान्त है, और अलोक आकाशका खन्द लोक आकाशकी अपेक्षासे सादी अनन्त है, इसरीतिसे आकाशमें चौभङ्गी कही।

अब काल द्रव्यमें चौभङ्गी कहते हैं। कालका स्वय द्रव्य अर्थात् गुण पर्यायका समूह रूपतो अनादि अनन्त है, और कालका स्वय क्षेत्र समय रूप सादी सान्त है, और कालका स्वय काल अर्थात् अगुरु लघु पर्याय करके तो अनादि अनन्त है, परन्तु उत्पाद वयकी अपेक्षासे सादी सान्त है, कालका स्वय भाव वर्त्तना लक्षण मुख्य गुण सो तो अनादि अनन्त है, परन्तु अतीत (भूत) काल अनादि सान्त है, वर्त-मान समय सादी सान्त है, अनागत (भविष्यत) काल सादी अनन्त है। इसरीतिसे कालमे चौभङ्गी कही।

अब पुद्गलमें चौभङ्गी कहते हैं। पुद्गल द्रव्यका स्वय द्रव्य अर्थात् गुण पर्यायका समूह रूप, सो तो अनादि अनन्त है, पुद्गलका स्वय क्षेत्र परमाणु रूपसो सादी सान्त है, पुद्गलका स्वय काल अगुरु लघु पर्याय सो तो अनादि अनन्त है, परन्तु उत्पाद वयकी अपेक्षासे सादी सान्त है, पुद्गलका स्वय भाव मुख्य गुण मिलन, विखरन, पूरन, गलन आदि स्वय भावतो अनादि अनन्त है, परन्तु वर्णादि पर्याय सादी सान्त है। इसरीतिसे छओं द्रव्योंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके चौभङ्गी कही।

अब छः द्रव्योंमे जो परस्पर सम्बन्ध है, उसकी चौभंगी कहते हैं। आकाश द्रव्य है उसके दो भेद हैं, तिसमें अलोक आकाशसे तो कोई द्रव्यका सम्बन्ध है नहीं, क्योंकि उस अलोक आकाशमें कोई

द्रव्य ही नहीं तब सम्बन्ध किसका होय। इसलिये लोक आकाशका सम्बन्ध कहते हैं कि-धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य इन दोनोंका आकाश द्रव्यसे अनादि अनन्त सम्बन्ध है, क्योंकि लोक आकाशके एक २ प्रदेशमें धर्म द्रव्यका एक २ प्रदेश, ऐसेही अधर्म द्रव्यका एक २ प्रदेश आपसमें मिला हुआ है, सो किस वक्तमें मिला था और किस वक्तमें ये अलग होगा ऐसा कोई नहीं कह सक्ता, इसलिये अनादि अनन्त है। लोक आकाश क्षेत्र और जीव द्रव्यका अनादि अनन्त सम्बन्ध है, परन्तु जो संसारी जीव कर्म सहित हैं उस जीवका और लोक आकाश क्षेत्र प्रदेशका सादी सान्त सम्बन्ध है। सिद्ध जीव और सिद्ध क्षेत्र आकाश प्रदेशका सादी अनन्त सम्बन्ध है। पुद्गल द्रव्यका आकाशसे अनादि अनन्त सम्बन्ध है, परन्तु आकाश प्रदेश और पुद्गल परमाणुका सादी सान्त सम्बन्ध है; इसरीतिसे आकाशका सम्बन्ध कहा।

अब जिस रीतिसे आकाशका सर्व द्रव्योंसे सम्बन्ध कहा तिसी रीतिसे धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यका भी सम्बन्ध जान लैना।

अब जीव और पुद्गलका सम्बन्ध कहते हैं, अभव्य जीवसे पुद्गलका अनादि अनन्त सम्बन्ध है, क्योंकि अभव्यके पुद्गल रूप कर्म कदापि न छूटेगा इसलिये अनादि अनन्त है। भव्य जीवके कर्म रूप पुद्गलसे अनादि सान्त सम्बन्ध है, क्योंकि देखो भव्य जीवके कर्म कब लगा था सो तो कह नहीं सके कि फलाने वक्तमें लगा था, इसलिये कर्मरूप पुद्गलसे अनादि सम्बन्ध है, परन्तु जिस वक्त भव्य जीवको उपादान और निमित्त आदि कारनोंकी यथावत खबर पड़ेगी तब पंच समवाय आदि मिलनेसे कर्मरूप पुद्गलको सान्त कर देगा, इसलिये पुद्गल और भव्य जीवके अनादि सान्त सम्बन्ध है।

इसरीतिसे नित्य अनित्य, पक्षसे चौभङ्गी दिखाई, उत्पाद व्यय स्याद्वाद सैलीभी बतलाई, आत्मार्थियोंके अर्थ किंचित् सुगमता बताई, जिज्ञासुओंके चित्तमें सुगमता मनभाई, अब एक अनेक पक्षसे नय विस्तार सुनों भाई।

नय स्वरूप ।

अब एक, अनेक पक्षसे किंचित् विस्तार रूप जिज्ञासुको बोध करानेके वास्ते नयका स्वरूप कहते है, क्योंकि देखो द्रव्यमें अनेक धर्म हैं सो एक वचनसे कहनेमें आवे नहीं, इसलिये यथावत स्वरूप कहनेके वास्ते नयका स्वरूप और लक्षण और गणित आदि यथाक्रम दिखाते हैं।

उपाध्यायजी श्री यशविजयजीका किया हुआ द्रव्य गुण पर्यायका रास उसमें कहा है कि—जीव, अजीव आदि पदार्थ त्रय रूप हैं, सो नय करके कहनेमें आवे, एक वचनसे कहा न जाय, सो पांचवे ढालकी पहली गाथा अर्थ समेत लिखकर दिखाते हैं।

"एक अर्थत्रय रूप छे देख्यो भले प्रमाणे, मुख्य व्रती उपचार थी नयवादि पण जाणेरे ॥ १ ॥ ज्ञान द्रष्टी जग देखिये ॥"

अर्थ—हवे नय प्रमाण विवेक करेछै, एक अर्थ जेघट पटादिक जीव अजीवादिकते त्रयरूपके० द्रव्य गुण पर्याय रूप छै, केमके घटादिक मृत्तिकादि रूपें द्रव्य, अनेघटादि रूपें सजातीय द्रव्य, पर्याय रूप रसात्मक पणें गुण, एम जीवादिकमा जाणवो, एहवे प्रमाणे स्याद्वाद वचने देख्युं जे माटे प्रमाण सप्तभंगात्मके त्रयरूप पणों मुख्यरीतें जाणिये, केमके नयवादी जे एकांश वादी ते पण मुख्य वृत्ति अनेउपचारें एक अर्थने विषे त्रयरूप पणो जाणे, यद्यपि नय वादिने एकांश वचनेशक्ति एकज अर्थ कहिये, तो पिण लक्षण रूप उपचारे वीजा अर्थ पण जाणे, पण एकदा वृत्तिद्वय न होय एपणर्ततन थी, जेम "गङ्गा या मत्स्य घोषौ„ इत्यादि स्थले एमवें वृत्ति पण मानीछै, इहां पण मुख्य अमुख्य पणे अनन्त धर्मात्मिक वस्तु जणाववाने प्रयोजने एक नय शब्दनी वृत्ति मानतां विरोधन थी; अथवा नयात्मक शास्त्रें क्रमिक वाक्यद्वयें पण ए

अर्थ जणाविये, अथवा एक बोध शब्दे, एक बोध अर्थ, एम अनेक भंगा जाणवा, ये रीतें ज्ञान दृष्टिए जगतना भाव देखीये, अर्थ कह्यो. तेहिंज स्पष्ट पणे जणा ववाने आगली गाथा कहे छे।

इसका विस्तार तो उस द्रव्य गुण पर्यायके रासमें देखो, परन्तु इस जगहतो त्रयरूपका किंचित् भावार्थ कहते हैं—कि मुख्य वृति करके तो शक्ति शब्दार्थ कहे तो द्रव्यार्थिक नय द्रव्य गुण पर्यायको अभेद पने कहे, क्योंकि गुण, पर्यायसे अभिन्न है सो ही दिखाते हैं कि—जैसे मट्टी द्रव्यादिकके विषय घट द्रव्यकी शक्ति है, परन्तु इनका परस्पर आपसमें जो भेद है सो उपचार करके हैं, क्योंकि लक्षणसे जाने, इसलिये द्रव्य भिन्न कम्बूग्रीवादिक पर्यायके विषय घटादिक पदकी लक्षणा माने हैं, इसलिये मुख्य अर्थ सम्बन्ध तथाविध व्यवहार प्रयोजनके अनुसार लक्षण वृत्ति दुर्घट नहीं है। इसरीतिसे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे मुख्य वृत्ती सर्व द्रव्यका गुण, पर्याय भेद कहें, क्योंकि इस नयके मतमें मट्टी आदि पदका द्रव्य, अर्थ और रूपादि पदका गुण तथा घटादि पदका कम्बू ग्रीवादि पर्याय है, परन्तु उपचार करके अथवा लक्षण करके अथवा अनुभव करके अभेद भी माने, जैसे घटादिकमें मट्टी द्रव्य अभिन्न है ऐसी प्रतीत घटादिक पदकी मट्टी आदिक द्रव्यके विषय लक्षणा करके होती है, इसलिये भेद अभेद प्रमुख बहुत धर्मको द्रव्यार्थिक अथवा पर्यार्थिक नय ग्रहण करे, उसीके अनुसार मुख्य, अमुख्य प्रकार करके, अथवा साँक्षात् साकेत, अथवा व्यवहित सांकेत, इत्यादिक अनुसारे नयकी वृत्ती ओर नयका उपचार कल्पे है, सो ही दृष्टान्त दिखाते हैं, जैसे गङ्गा पदका साक्षात् साकेत, अथवा व्यवहित सांकेत तो प्रवाह रूप अर्थके विषय है, इसलिये प्रवाह शक्ति है। अब उसको छोड़के गङ्गा तीरपर जो सांकेत करना सो विवेक साकेत है, इसीलिये उपचार है। इसरीतिसे द्रव्यार्थिक नय साक्षात् सांकेत सो तो अभेद है, और शक्तिका भेद हैं सो व्यवहित साकेत है, इसीलिये उपचार है, सो पर्यार्थिक नयके विषय भी शक्ति तथा उपचारसे भेद अभेद जान लेना।

(प्रश्न) जो नय है सो तो अपने विषयको ग्रहण करे और दूसरे

नयके विषयको ग्रहण करे नहीं तो फिर भेद, अभेद, उपचार आदि क्यों मानते हो ।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय यह तेरा प्रश्न करना जिन धर्मका अजान सिद्धान्त की सैली रहित एकान्त वाद मिथ्यात्वके ग्रहण करने वालेका सा प्रश्न है, सो प्रश्न बनता नहीं क्योंकि देखो स्याद्वाद सिद्धान्तमें ऐसा कहा हुआ है कि नय ज्ञानमें नयान्तर अर्थात् दूसरी नयका मुख्य अर्थ है सो सर्व अंश करके अमुख्य पने न भाषे, और स्वतंत्र भावे सर्वथा करके दूसरी नयको अमुख्य पने कहे, सो मिथ्या द्रष्टीमें है, अर्थात् दुर्नयका कहने वाला है। परन्तु सुनय कहने वाला नहीं। सो इस नय विचारका कथन, विशेषावश्यक, और सम्मति ग्रन्थोंमें विस्तार है सो वो ग्रन्थ तो मेरे पास हैं नहीं इसलिये वहां की गाथा आदिक न लिखी, परन्तु सुनय और दुर्नयका लक्षण शास्त्रानु सार दिखाते हैं, कि "स्वार्थ ग्राही इतरांशा प्रति क्षेपी सुनय", इति सुनय लक्षणं। "स्वार्थ ग्राही इतरांशा प्रति क्षेपो दुर्नय, इति दुर्नय लक्षणं। इन लक्षणोंका अर्थ करते हैं कि स्वार्थ ग्राहीके० अपने अर्थको यथावत ग्रहण करे और इतरांश के० दूसरी नयके अर्थको अप्रति क्षेपीके० एकान्त करके निषेध न करे, उसका नाम सुनय है, इससे जो विपरीति अर्थवाला वही दुर्नय है। इस-लिये नय विचार्में भेद अभेदका जो गृहण सो व्यवहार सभवे, तथा नय साकेत विशेष ग्राहक वृत्ति विशेष रूप उपचार पिण संभवे। इसलिये भेद, अभेद, मुख्य पने प्रत्येक नय विषय मुख्य, अमुख्य पने उभय नय विषय उपचार है, मुख्य वृत्तिकी तरह नय परिकर पिण विषय नहीं, इसरीतिका जो सूधा मारग सो अनादि परम्परा वाला जो श्वेताम्बर उसके स्याद्वाद सिद्धान्तमें सूधा मारग है।

परन्तु जैना भास अर्थात् दिगम्बर आमना वाला विवेक सुन्य बुद्धि विचक्षण उपचार आदिक गृहण करनेके वास्ते उपनयकी कल्पना करता है, सो उसकी नवीन कल्पनाका जो प्रपंच उस प्रपचका जो उनके तर्क शास्त्रके प्रमाणे जिज्ञासुकी बुद्धि शुद्ध मार्गसे चळायमान न होय, इस वास्ते उनके ही शास्त्र अनुसार उनकी प्रक्रिया दिखाते हैं।

दिगम्बर प्रक्रियासे नय स्वरूप ।

दिगम्बरी लोक नव (९) नय, और तीन (३) उपनय मानते हैं, और अध्यात्म शैलीमें एक निश्चय नय, दूसरा व्यवहार नय, इन दो नयको ही मानते है । सो पेश्तरतो नव (९) नय और तीन (३) उपनय इनकी जुदी २ जो प्रक्रिया इनके शास्त्रमें लिखी है, उसी रीतिसे प्रति पादन करते हैं । कि १ द्रव्यार्थिक नय, २ पर्यार्थिक नय, ३ नयगम नय, ४ संगृह नय, ५ व्यवहार नय, ६ ऋजुसूत्र नय, ७ शब्द नय, ८ संभिरूढ नय, ९ एवंभूत नय, इसरीतिसे नव नय, हुआ ।

१—तिसमें पहला (१) जो द्रव्यार्थिक नय है उसके दस (१०) भेद हैं सो दिखाते हैं । कि प्रथम शुद्ध द्रव्यार्थिक है, क्योंकि सर्व संसारी प्रानी मात्रको सिद्ध समान मानिये, क्योंकि सहज भाव जो शुद्ध आत्म स्वरूपको आगे करे और भवपर्याय जो संसार अर्थात् जन्म, मरण उसकी गिनती अर्थात् विवक्षा न करे, उसका नाम शुद्ध द्रव्यार्थिक है, वलिक उनके यहां द्रव्य संगृहमें कहा भी है "यतः मगाणा गुण ठाणेहि चउदसहि हवंतितहे अशुद्ध णया विणेया संसारी सव्वे सुद्धहसुद्ध णया ।"

अव दूसरा भेद कहते हैं कि उत्पाद वयकी गौणता और सत्ताकी मुख्यता करके शुद्ध द्रव्यार्थिक जानना । यदिउक्त "उत्पाद वय गौणत्वे न सत्ता गृाहकं सुद्ध द्रव्यार्थिक" द्रव्य है सो नित्य है और त्रिकाल अविचलित रूप सत्ताकी मुख्यता लेनेसे यह भाव संभवे है, क्योंकि जो पर्याय प्रतक्ष परिणामी है तौ भी जीव पुद्गलादिक द्रव्य सत्तासे कदापि चले नही, यह दुसरा भेद हुआ ।

अव तीसरा भेद कहते हैं कि भेद कल्पना करके हीन शुद्ध द्रव्यार्थिक है, क्योंकि देखो जैसे एक जीव अथवा पुद्गल आदि द्रव्यमें अपना २ गुण पर्यायसे अभिन्न कहते हैं, क्योंकि कदाचित् भेद पना है । तौ भी उस भेदको अर्पन नहीं करते और अभेदको अर्पन करते हैं, इस लिये अभिन्न है, यह तीसरा भेद हुआ ।

अब चौथा भेद कहते हैं कि कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक है, जैसे क्रोधादिक कर्मभावमें आत्मा बंधे है और जाने है, परन्तु जिस वक्त जोद्रव्य जिस भावमें परिणमें है तिस वक्त वो द्रव्य तनमय आकार हो जाता है, क्योंकि देखो जैसे लोह अग्निमें गर्म किया जाय उस वक्त लोह अग्निके परिणामको परिणम्यो उस कालमें वो लोह अग्निरूप हो जाता है, तैसेही जीव द्रव्य मोहनी आदिक कर्मोंके उदयसे क्रोधादि भाव परिणत आत्मा क्रोधादिक रूप हो जाता है, इसलिये अशुद्ध द्रव्यार्थिक है।

अब पांचवा भेद कहते हैं कि "उत्पाद वय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक"।

अब छठा भेद कहते हैं "भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक" जैसे ज्ञानादिक शुद्ध गुण आत्माका है परन्तु षष्टि विभक्ति भेदको कहती है, परन्तु गुण गुणीका भेद है नहीं, और भेदको माने। इस-रीतिसे छठा भेद कहा।

अब सातवां भेद कहते हैं कि "अन्वय द्रव्यार्थिक" जैसे एक द्रव्यके विषय गुण, पर्याय, स्वभाव आदि जुदे २ कहते हैं, इसलिये गुण पर्यायके विषय द्रव्यका अन्वय है, इसरीतिसे "अन्वय द्रव्यार्थिक" सातवां भेद कहा।

अब आठवाँ भेद कहते हैं कि "स्वय द्रव्यादि ग्राहकं द्रव्यार्थिक" जैसे घटादिक द्रव्य है सो स्वय द्रव्य, स्वय क्षेत्र, स्वयकाल, स्वयभाव करके अस्ति है। क्योंकि घटका स्वय द्रव्य. तो मट्टी, और घटका स्वय क्षेत्र जिसदेश जिसनगरादिमें बने, और घटका स्वयकाल जिस वक्तमें कुभार बनावे, घटका स्वयभाव लाल रंगादि। इसरीतिसे घटादिक की सत्ता सो प्रमाण अर्थात् सिद्ध है, इसलिये स्वय द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक" अष्टम भेद हुआ।

अब नवां भेद कहते हैं "पर द्रव्यादिक ग्राहकं द्रव्यार्थिक" जैसे पर द्रव्यादिक चारसें घट नास्तिभाव है, क्योंकि देखो पर द्रव्य जो तन्तु (सूत) प्रमुख उससे घट असत अर्थात् नास्ति है, और परक्षेत्रजो अन्य देश अन्य ग्राम आदिक, परकाल जो अतीत, अनागत काल, पर-

भाव जो काला रंग आदिक, इसविवक्षा करनेसे नास्तिरूप होता है, इसरीतिसे नवा ६ भेद कहा।

अब दसवाँ भेद कहते हैं कि—"परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक" क्योंकि देखो आत्मा ज्ञान स्वरूप कहते हैं, और दर्शन, चारित्र, वीर्य्य, लेस्या आदिक आत्माका अनन्ता गुण है, परन्तु सर्वमें ज्ञान है सो उत्कृष्ट है, क्योंकि अन्य द्रव्यसे जो आत्मामें भेद है सो ज्ञान गुणसे ही दीखता है, इसरीतिसे आत्माका ज्ञान सो ही परम भाव है, इसरीतिसे दूसरे द्रव्योंका भी मुख्य गुण है सो ही परम भाव है, इसरीतिसे द्रव्यार्थिकके १० भेद कहे।

२—अब पर्यार्थिक नयके भी ६ भेद कहते हैं—तिसमें प्रथम "अनादि नित्यशुद्धपर्यार्थिक है", जैसे पुद्गलका पर्याय मेरु प्रमुख है सो प्रवाहसे अनादि और नित्य है, असंख्याते काल पुअन्योन्याद्गल संक्रमे है, परन्तु संस्थान अर्थात् मेरु जैसाका तैसा है, इसीरीतिसे रत्नप्रभादिक पृथ्वी पर्याय भी जानना।

इस रीतिसे अनेक प्रकारकी जेनमतमे शैली फेली हैं सो दिगम्बर मत भी जैनी नाम धरायकर इसरीतिसे नय की अनेक शैली (रीतें) प्रवर्त्तावे हैं, तिसमें वुद्धि पूर्वक विचार करना चाहिये, और जो सच्चा होय उसको ही धारण करना चाहिये, झूठे की संगति कदापि न करनी चाहिये, परन्तु शब्दके फेर मात्रसे द्वेष भी न करना चाहिये, असल अर्थ होय सो ही प्रमाण करना चाहिये, इसरीतिसे पहला भेद हुआ।

अब दूसरा भेद कहते हैं कि "सादी नित्य शुद्ध पर्यार्थिक।" जैसे सिद्ध की पर्याय है तिसकी आदि है क्योंकि देखो जिस वक्त सर्व कर्मक्षय किया उस वक्त सिद्ध पर्याय उत्पन्न हुई थी सो उस उत्पन्न होने की तो आदि है. परन्तु उसका अन्त नहीं, क्योंकि सिद्ध भयेके बाद सिद्ध भाव सदाकाल रहेगा, इसरीतिसे पर्यार्थिकका दूसरा भेद कहा।

अब तीसरा भेद कहते हैं कि "सत्तागौणत्वे उत्पाद वय

ग्राहक अनित्य शुद्ध पर्यार्थिक" जैसे एक समयमें पर्याय विनशे है उस विनाशका प्रति पक्षी लेवे परन्तु ध्रुवताको गौन करके देखे नहीं इसरीतिसे तीसरा भेद हुअ, ।

अब चौथा भेद कहते हैं कि "नित्य अशुद्ध पर्यार्थिक" जैसे एक समयमें पर्याय है सो उत्पाद, वय, ध्रुव, लक्षण तीन रूप करके रोदे हैं, ऐसा कहे तो पिणपर्यायका शुद्ध रूपतो किसको कहिये जो सत्ताको दिखावे, परन्तु यहा तो मूल सत्ता दिखाई इसलिये अशुद्ध भेद हुआ, इस रीतिसे चौथा भेद कहा ।

अब पांचवां भेद कहते हैं "कर्म उपाधी रहित नित्य शुद्ध पर्यार्थिक" जैसे संसारी जीवका पर्याय सिद्ध जीवके समान (सरीखा) कहिये, परन्तु कर्म उपाधि भाव बना है सो उसकी विवक्षा न करे, और ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक शुद्ध पर्यायकी विवक्षा करे, इसरीतिसे पांचवा भेद कहा ।

अब छठा भेद कहते हैं "कर्म उपाधि सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यार्थिक" कि—जैसे ससारमें रहनेवाले जीवोंके जन्म, मरणकी व्याधि है ऐसा कहते हैं, यहा जन्मादिक जीवका पर्याय है सो कर्म सँयोगसे है सो अशुद्ध है, इस लिये जन्मादि पर्यायका नाश करनेके वास्ते मोक्ष-अर्थी जीवप्रवर्ते हैं, यह छठा भेद हुआ । इसरीतिसे द्रव्यार्थिक नय भेद समेत कहा ।

३—अब नयगम नयको आदि लेकर, ७ नयकी प्रक्रिया दिखाते हैं । प्रथम नयगम नयका अर्थ करते हैं–कि सामान्य, विशेष ज्ञानरूप अनेक तरहसे और बहुत प्रमाणसे गृहण करे उसका नाम नयगम है, सो इस नयगमके तीन ३ भेद हैं–१ भूत नयगम, २ वर्त्तमान. ३ आरोप करना, इसरीतिसे इसके तीन भेद हैं, जिसमें प्रथम रीतिका उदाहरण देते हैं—कि जैसे आज दिवालीका दिन है सो आज श्री महावीर स्वामी शिव-पुर (मुक्ति) का राज पाये, यह जो विधि करना अथवा कहना और कल्याणक मानना सो भूत नयगम है, क्योंकि देखो श्री महावीर स्वामी चौथे आरेमें ३ वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे थे तब मोक्ष पधारे

सो उस रोज़ दिवाली हुई, सो उस दिवालीका वर्त्तमान दिवालीके दिन आरोप करते हैं, कि आजका दिन मोटा है, क्योंकि श्री महावीर स्वामीका निर्वाण कल्याणक है, सो आज विशेष करके धर्म कृत्य करना चाहिये, इसरीतिसे भव्यजीव भक्तिके वस होकर उस भूत कल्याणकका आरोप करके अपनी धर्म कृत्यादि करते हैं।

अव दूसरा उदाहरण कहते हैं कि जैसे जिनको सिद्ध कहे, क्योंकि केवलीके सिद्धपना अवश्य होने वाला है, इसलिये कुछतो सिद्धपना और कुछ असिद्धपना वर्त्तमानमे है इसका नाम वर्त्तमान नयगम है।

अव तीसरा उदाहरण कहते हैं—कि जैसे कोई रसोईकर रहाहै और उसको कोई पूछे कितेने क्या किया है, तव वो कहेकि मैंने रसोई करी है, अव इस जगह रसोईके कितने हो अवयवतो सिद्ध होगये हैं कितने ही सिद्ध और करने वाकी हैं, परन्तु पूर्वापर भूत अवयव क्रिया सन्तान एक वुद्धि आरोपकरके वर्त्तमान कहता है, इस रीतिसे आरोप-नयगमका भेद जानना, सो यह नयगमनयके ३ भेद हुए।

४—अव संग्रह नय कहते हैं—उस संग्रह नयके भी दो भेद हैं एकतो सामान्य संगृह, २ विशेष संगृह,—सो प्रथम भेदका उदाहरण कहते हैं कि "द्रव्यानी सर्वानी अविरोधानी" इसका अर्थ ऐसा है कि द्रव्यपनेमे सर्वका अविरोध अर्थात् द्रव्यपनेमें सर्व ही द्रव्य हैं।

अव दूसरा भेद कहते हैं कि "जीवाः सव्वे अविरोधिनाः" यह दूसरा भेद हुआ, क्योंकि सर्व द्रव्यमेंसे जीव द्रव्य जुदा होगया, इस रीतिसे संगृह नयके भेद कहे।

५—अव व्यवहार नय कहते हैं—कि जो संगृहनयका विषय है उसके भेदको दिखावे उसका नाम व्यवहार नय है, सो उस व्यवहार नयके भी संगृह नयकी तरह दो भेद हैं—१ सामान्य संगृह भेदक व्यवहार, २ विशेष संगृहभेदक व्यवहार, इस रीतिसे दो भेद हुए, सो प्रथम भेदका उदाहरण दिखाते हैं कि "द्रव्य जीवा जीवौ" ये सामान्य संग्रह भेदक व्यवहार है। और "जीवाः संसारिन् सिद्धाश्च" यह

विशेष संग्रह भेदक व्यवहार है, इस रीतिसे उत्तर २ विवक्षा जान लेना ।

६—अब ऋजु सूत्रनय कहते हैं कि वर्त्तमानमें जैसी वस्तु होय और जैसा अर्थ भापे उस वस्तुमें भूत और भविष्यत् अर्थको न माने केवल वर्त्तमान अर्थको ही माने, उसका नाम ऋजु सूत्र है। सो उस ऋजु सूत्रके भी दो भेद हैं—एकतो सूक्ष्म ऋजु सूत्र, २ स्थूल ऋजु सूत्र, सो प्रथम सूक्ष्म ऋजु सूत्रका उदाहरण कहते हैं कि—जैसे क्षणिक पर्याय अर्थात् उत्पादव्ययको माने । और स्थूल ऋजु सूत्र नय-मनुष्यादि पर्याय को माने अर्थात् मनुष्य, त्रियंच आदिक भवपर्यायको गृहण करे, परन्तु कालत्रियवर्त्तीपर्यायमाने नही । और व्यवहार नय है सो तीनकालके पर्यायको माने, इसलिये स्थूल ऋजुसूत्र अथवा व्यवहार नयका शङ्कर दूषण नहीं जानना, इस रीतिसे ऋजु सूत्र नय कहा ।

७—अब शब्द नय कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्ति से सिद्ध किया जो शब्द मानें, अथवा लिंग वचनादि भेदसे अर्थका भेद माने जैसे टटः टटी. ? टटः यह त्रणलिङ्ग भेद अर्थ भेद । आप. जल इस रीतिसे एक वचन, वहु वचन, भेदसे अर्थका मेद माने, उसको शब्द नय कहते हैं ।

८—अब संभिरूढ नय कहते हैं कि—भिन्न शब्दसे भिन्न अर्थ होय इसलिये यह नय शब्द नयसे कहें कि जोतूं लिंगादि भेद अर्थभेद माने है तो शब्दभेद अर्थभेद क्यों नही मानता, क्योंकि घट शब्दार्थ भिन्न और कुम्भ शब्दार्थ भिन्न, इस रीतिसे मान, इन दो शब्दोंको एक अर्थपना है सो शब्दादि नयकी व्यवस्थामें प्रसिद्ध है, इस रीतिसे सभिरूढ नय कहा ।

९—अब एवंभूत नय कहते हैं कि—सर्व अर्थ क्रिया तथा परिणित क्रिया केवलमाने परन्तु अन्यथा होय तो नहीं मानें, जैसे छत्र, चमरादिक करके शोभायमान परषदामें बैठा होय उसवक्तमें उसको राजा मानें, परन्तु स्नानादिक करता होय अथवा भोजन आदि करता होय उस वक्तमें उसको राजा न कहे, इस रीतिसे यह नव नय कहे ।

इन नव ९ नयके २८ (अट्टाईस) भेद होते हैं (१०) द्रव्यार्थिकका, छ (६) पर्यार्थिकका, तीन (३) नयगमका, दो (२) संग्रहका, दो (२) व्यवहारका, दो (२) ऋजुसूत्रका, एक (१) शब्दका, एक समभिरूढका, और एक (१) एवभूतका। इस रीतिसे दिगम्बर मतमें नव ९ नय कहा है।

अब इसी दिगम्बर आमनासे तीन (३) उपनय और दिखाते हैं कि—नयके समीप उपनय भी चाहिये तिसमें सद्भुत व्यवहार सो उपनयका प्रथम भेद है, क्योंकि धर्म और धर्मीका भेद दिखानेसे होता है, सो तिसके भी दो भेद हैं। एक तो शुद्ध, दूसरा अशुद्ध, तिसमें पहला शुद्ध धर्म धर्मीका भेद सो शुद्ध सद्भूत व्यवहार है। और दूसरा अशुद्ध धर्म धर्मीका भेद सो अशुद्ध सद्भूत व्यवहार है। इस जगह सद्भूत तो एकद्रव्य है, और भिन्न द्रव्य संयोग आदिक की अपेक्षा नहीं, तथा व्यवहार सो भेद दिखावे है, जैसे जगत्में आत्म द्रव्यका केवल ज्ञान षष्टी प्रयोग करे सो शुद्ध सद्‌भूत व्यवहार होय, और मति ज्ञानादिक सो आत्म द्रव्यका गुण है ऐसा कहेंतो अशुद्ध सद्भूत व्यवहार होय, गुण गुणीका पर्याय पर्याय वन्तका, स्वभाव स्वभाववन्तका जो एक द्रव्यानुगतभेद कहे सो सर्व उपनयका अर्थ जानना, सो ही दिखाते हैं, कि "घटस्वरूपं, घटस्य रक्तता, घटस्य स्वभावः मृता घटोनिष पादित" इत्यादि प्रयोग जान लेना, और पर द्रव्यकी प्रणती मिलाय करके जो द्रव्यादिकके नव विध उपचार कहे सो असद्भूत व्यवहार जानना, सो उस नव विध उपचारमे जो प्रथम भेद है उसको दिखाते हैं। द्रव्य द्रव्य उपचारका उदाहरण इसरीतिसे है—जैसे जिनागममें कहा है कि "जीव पुद्गलके साथ क्षीर नीर न्याय करके मिला है" इस लिये जीवको पुद्गल कहे, यह जीव द्रव्यमें पुद्गल द्रव्यका उपचार सो द्रव्य २ उपचार पहला भेद हुआ।

अब दूसरा भेद कहते हैं कि "गुण गुणोपचार" जो भाव लेस्या सो आत्माका अरूपी गुण है सो उसको कृष्ण, नीलादिक काली लेस्या कहते हैं, सो कृष्णादि पुद्गल द्रव्यके गुणको उपचार

करते हैं यह आत्म गुणमें पुद्गल गुणका उपचार जानना, यह दूसरा भेद हुआ ।

अब तीसरा भेद कहते हैं "पर्याय २ उपचार" जैसे घोड़ा, गाय, हाथी, रथ प्रमुख आत्म द्रव्यका असमान जाति द्रव्य पर्याय तिसक खन्द कहे, सो आत्म पर्यायके ऊपर जो पुद्गल पर्यायका खन्द तिसका उपचार करके कहे, सो "पर्याय २ उपचार" तीसरा भेद हुआ ।

अब चौथा भेद कहते हैं कि "द्रव्यमें गुणका उपचार, जैसे मैं गौर वर्ण हूं ऐसा जो कहे तो 'मैं, सो तो आत्म द्रव्य है, और जो गौरपन पुद्गलका उज्जलपना सो उपचार, यह चौथा भेद हुआ।

अब पांचवां भेद कहते हैं कि "द्रव्यमें पर्यायका उपचार करे" जैसे मैं शरीरमें बोलता हूं, तिसमे मैं सो तो आत्म द्रव्य है। और शरीर सो पुद्गल द्रव्यका समान जाति है इसलिये "द्रव्य पर्याय उपचार" पांचवां भेद हुआ ।

अब छठा भेद कहते हैं कि "गुणमें द्रव्यका उपचार करना" सो उदाहरण दिखाते है कि—जैसे कोई कहे कि यह गौर दीखता है, सो आत्मा इसमें गौरपना उद्देश करके आत्म विधान किया, इस लिये गौरतारूप पुद्गल गुण ऊपर आत्म द्रव्यका उपचार सो 'गुण द्रव्य उपचार' छठा भेद हुआ ।

अब सातवां भेद कहते हैं कि "पर्याय द्रव्य उपचार" जैसे शरीरको आत्मा कहें, इस जगह शरीर रूप पुद्गल पर्यायके विषय आत्म द्रव्यका उपचार करा, यह सातवां भेद हुआ ।

अब आठवां भेद कहते हैं कि "गुण पर्याय उपचार" जैसे मतिज्ञान सो शरीर जन्य है, इस लिये शरीर ही कहना, सो इस जगह मतिज्ञान रूप आत्म गुणके विषय शरीर रूप पुद्गल पर्यायका उपचार किया, यह आठवा भेद हुआ ।

अब नवां भेद कहते हैं कि 'पर्याय गुण उपचार' जैसे शरीर मतिज्ञान रूप गुण है, इस जगह शरीर रूप पर्यायके विषय मतिज्ञान-रूप गुणका उपचार किया, यह नवां भेद हुआ ।

इस रीतिसे उपचारसे असद्भूत व्यवहार नव प्रकारका हुआ।

अब इनके तीन भेद हैं सो भी कहते हैं—१ स्वय जाति असद्भूत व्यवहार, जैसे परमाणुमें बहु प्रदेशी होनेकी जाति है, इस लिए बहु-प्रदेशी कहें, इस रीतिसे स्वय जाति असद्भूत व्यवहार हुआ, यह प्रथम भेद हुआ।

दूसरा विजाती असद्भूत व्यवहार कहते हैं कि—जैसे मतिज्ञानको मूर्तिवन्त कहे, मूर्ति जो विषय लोग नमस्कारादिक सू उत्पन्न होय, इस लिये मूर्तिवन्त कहा। इस जगह मतिज्ञान सो आत्म गुण तिसके विषय मूर्तत्व जो पुद्गल गुण तिसका उपचार किया, इस लिए विजाती असद्भूत व्यवहार हुआ, यह दूसरा भेद हुआ।

तीसरा भेद कहते हैं कि स्वय जाति और विजाति उभय असद्भूत व्यवहार—जैसे जीव अजीव विषय ज्ञान कहे, इस जगह जीव सो ज्ञानकी स्वय जाति है, और अजीव सो ज्ञानकी विजाति है, इन दोनोंका विषयी भाव उपचरित सम्बन्ध है, इस लिए स्वय जाति विजाति असद्भूत व्यवहार है, यह तीसरा भेद हुआ।

अब जो एक उपचार से दूसरा उपचार करे सो भी असद्भुत व्यवहार है सो उसके भी तीन भेद हैं।

एक तो स्वजाति, दूसरा विजाति, तीसरा दोनोंको मिलाय कर अर्थात् उभय सम्बन्धसे तीसरा भेद होता है, सो ही दिखाते हैं—स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार सम्बन्ध कल्पना से जानो कि जैसे मेरा पुत्रादिक हैं, इस जगह पुत्रादिक को अपना कहना स पुत्रादिकके विषय उपचार है क्योंकि आत्माका भेद, अभेद सम्बन्ध उपचार करते हैं, क्योंकि पुत्रादिक है सो शरीर आत्म पर्याय रूप स्वजाति है, परन्तु कल्पित हैं।

अब दूसरा भेद कहते हैं कि यह वस्त्र मेरा है, इस जगह वस्त्रादिक पुद्गल पर्याय नामादि भेद कल्पित है सो विजाति स्वय सम्बन्ध उपचार असद्भूत व्यवहार है।

अब तीसरा भेद कहते हैं कि—यह मेरा गढ़, देश, नगर, प्रमुख है, सो स्वजाति विजाति सम्बन्ध कल्पित उपचरित असद्भूत व्यवहार है, क्योंकि गढ़ देशादिक जीव, अजीव उभय समुदाय रूप है, इसरीतिसे उपनय कहा।

अब अध्यातम भाषा करके मूल दो नय मानता है उसकी भी प्रक्रिया दिखाते हैं—कि एक तो निश्चय नय, दूसरा व्यवहार नय, सो निश्चय नयके दो भेद हैं, एक तो शुद्ध निश्चय नय, दूसरा अशुद्ध निश्चय नय, सो प्रथम शुद्ध निश्चय नय को कहते हैं कि—जैसे जीव है सो केवल ज्ञानादिक रूप है, इस लिये कर्म उपाधि रहित केवल ज्ञानादिक शुद्ध गुण ले करके आत्मा में अभेद दिखलावे सो शुद्ध निश्चय नय कहिये और जो मति ज्ञानादिक अशुद्ध गुणको आत्मा कहे सो अशुद्ध निश्चय नय है, सो पाधिक है, इसलिये जो निश्चय नय सो अभेद दिखाते है, और व्यवहार नय है सो भेद दिखाते है। सो व्यवहार नयके दो भेद हैं एक सद्भुत व्यवहार, दूसरा असद्भुत व्यवहार। जो एक द्रव्य आश्रित (सहारा) है सो सद्भुत व्यवहार है। और जो पर विषयक है सो असद्भुत व्यवहार है। सो प्रथम जो सद्भुत व्यवहार है सो दो प्रकारका है, एक उपचरित सद्भुत व्यवहार, दूसरा अनुपचरित सद्भुत व्यवहार। जो स्वय सोपाधिक गुण-गुणीका भेद दिखलावें. जैसे जीवका मतिज्ञान यह उपाधि हैं सो ही उपचरित है। दूसरा निर्उपाधिक गुणगुणीका भेद दिखावे, जैसे जीव का केवल ज्ञान, यहां उपाधि रहित पना है सो ही निर उपचरित हैं।

अब असद्भुत व्यवहारके भी दो भेद है, एक उपचरित असद्भुत व्यवहार, दूसरा अनुपचरित असद्भुत व्यवहार तिसमें प्रथम भेद कहते हैं कि असंश्लेषित योग करके कल्पित सम्बन्ध होय, जैसे देवदत्तका धन है, इस जगह धन है सो देवदत्तके स्वय स्वामी भावरूप कल्पित सम्बन्ध है इसलिये उपचार कहा, क्योंकि देवदत्त और धन सो जाति करके दोनों एक द्रव्य नहीं इसलिये असद्भुत भावना करी सो उपचरित असद्भुत व्यवहार जानना।

अब दूसरा भेद कहते हैं कि—संश्लेषित योग करके कर्म सम्बन्धसे जानना कि जैसे आत्माका शरीर, आत्मा तथा शरीर सम्बन्ध है सो धन सम्बन्धकी तरह कल्पित नहीं, क्योंकि यह शरीर विपरीत भावना करके निरवृत्ते नहीं जाय जीव रहे, इसलिये अनुपचरित और भिन्न विषय होनेसे असद्भुत कहा।

इस रीतिसे नय तथा उपनय और मूल दो नय सहित दिगम्बर प्रक्रियासे वर्णन किया सो यह वर्णन दिगम्बर देव सेन कृत नय चक्रमें है।

अब जो इसमे जैनमतसे वीपरीत बातें हैं उसीको दिखाते हैं कि यद्यपि स्थूल विषय बहुत बातोंमें ज़ैन मतसे मिलता है, तथापि सिद्धान्तके विपरीत प्रक्रिया होनेसे ठीक नही। क्योंकि जिज्ञासु आत्मार्थी शुद्ध प्ररूपक सद्गुरूके उपदेश बिना जो इनके जालमे फस जाय तो उस जिज्ञासुका निकलना बहुत मुशकिल होय, क्योंकि इस दिगम्बरीने भी अपना नाम जैनीधर रक्खा है, इस लिये पेश्तर तो इसके शास्त्र अनुसार इसकी प्रक्रिया कही।

अब इस बोटक मत दिगम्बरीकी जो जिनमतसे विपरीत प्रक्रिया है सो ही दिखाते हैं, जिज्ञासुको भ्रमजालमें न फसनेके वास्ते जिन सूत्रोको ये मानते हैं उन्हीं को शाक्षि दिखलाते हैं, आत्मार्थियों को शुद्धमार्ग बतलाते हैं—कि तत्वार्थ सूत्रमें, ७नय कहा है, और मतान्तर की अपेक्षा लेकर ५ नयभी कहा हैं यदि उक्तं "सप्तमूलनयाः पंचेत्या देशान्तरं" इस रीतिसे तत्वार्थ सूत्रमें कहा है सो सात तो मूल नय हैं, और जो मतान्तर से ५ नय मानता है वो मतान्तरवाला शब्द १, संभिरूढ़ २, एवंभूत ३, इन तीनो नयको एक शब्द नयमें ग्रहण करता हैं, और नयगम आदि ४ नय इनको साथ लेकर ५ नय कहता है। सो एक एक नयके सौ सौ भेद होते हैं सो ७नयसे तो ७०० तथा ५०० भेद होते हैं, इस रीतिसे दो मत कहे हैं। और ऐसाही श्री आवश्यक सूत्रमें कहा है सोभी दिखाते हैं "इक्किो यस यविहो सत्तणय सयाहवंतिए। सेव अणोविहु आए सो पंचेवस यानणंतु" इस रीतीसे शास्त्रोंमें कहा है। उस प्रक्रिया को

छोड़कर ७ नयके अन्तर्गत अर्थात् मिली हुई जो द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिक उसको जुदी निकालकर नव नय कहना इस दिगम्बरका प्रपञ्च आत्मार्थी बुद्धिमान पुरुष देखो, इस मायावी जालको उपेखो, शास्त्रोंसे मिलाय कर करो लेखो। कदाचित् यह दिगम्बर द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिक इन दोनोंको सातसें अलग निकालकर नव नयें कहे तो, हम ऐसा कहते हैं कि अपित? अनार्पिति २, इन दोनोंको भी अलग करके ग्यारह (११) नय कहना चाहिये। जो दिगम्बर ऐसा कहे कि तत्वार्थ सूत्रमें ऐसा कहा है कि "अर्पिति अनार्पितसिद्धेः" इत्यादि, परन्तु अर्पित अनार्पित नय सामान्य विशेष अपेक्षासे कथन है, क्योंकि अनार्पित सामान्य सो सग्रह नयमे मिलता है, और अर्पित विशेष नय है सो व्यवहार आदिक विशेष नयमे मिलता है, इसलिये इस अर्पित अनार्पित को जुदा क्योंकर कहें। तो हम तुम्हारेको कहते हैं कि—हे भोले भाइयों कुछ बुद्धिका विचार करो जिससे तुम्हारा कल्याण हो, क्योंकि देखो जैसे अर्पित, अनार्पितको जुदी नहीं कहते हो तो, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकको जुदा क्योंकर कहते हो, क्योंकि जैसे अर्पित, अनार्पितको सामान्य विशेषमें मिलाया है, तैसे ही द्रव्यार्थिकको तो पहली नयगम आदिक नयमें मिलाओ और पर्यार्थिकको पिछली नयमें मिलाओ तो सिद्धान्तकी शुद्ध प्रक्रियासे मूल सात (७) नय हो जाय, तुम्हारे सब अकल्याण भी मिट जाय।

अब तुम्हारेको सात नयके अन्तर्गत यह द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिक इन दोनों नयको मिलायकर आचर्य्योंकी शैली अर्थात् प्रक्रिया दिखाते हैं, कि—श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमण प्रमुख सिद्धान्तवादी आचार्य हैं, सो श्री विशेषावश्यकके महा भाष्यमें निर्धार कर ऐसा कहते हैं—कि नयगम १, संग्रह २, व्यवहार ३, ऋजु सूत्र ४, यह चार नय द्रव्यार्थिक नय हैं, और शब्द १, संभिरूढ २, एवंभूत ३, यह तीन पर्यार्थिक नय हैं, सो श्री सिद्धसेन दिवाकर तथा मल्लवादी प्रमुख तर्कवादी आचार्य ऐसा कहते हैं कि प्रथमकी तीन, नयगम १, संग्रह २, व्यवहार ३, लक्षण हैं सो द्रव्य नय है। और ऋजु सूत्र १, शब्द २, संभिरूढ ३ एवंभूत ४ ये चार

नय पर्यार्थिक हैं। सो इन आचार्योंके कथन विशेष करके बड़े २ सिद्धान्तोंमें है सो मेरे पास कोई है नहीं, इसलिये यहां विशेष निर्णय न लिख सका, परन्तु किंचित् लिखता हूं कि–श्री यशविजयजी उपाध्याय ने द्रव्य गुण पर्यायके रासमें आठमीं ढालकी तेरहवी गाथामें लिखा है, सो वहांसे दिखाते हैं।

"द्रव्य:र्थिक मते सर्वे पर्यायाः खलु कल्पिताः ॥
सत्यंते ष्वन्वयि द्रव्यं कुंडलादिषु हेमवत् ॥१॥
पर्यायार्थ मते द्रव्यं पर्याये भ्योस्तिनो पृथक् ॥
यत्तै रर्थ क्रिया दृष्टा नित्यं कुत्रोप युज्यते ॥२॥

व्याख्या—इति द्रव्यार्थ पर्यायार्थ नय लक्षणात् अतीत अनागत पर्याय प्रति क्षेपी ऋजुसूत्रः शुद्धमर्थ पर्यायं मन्यमान· कथं द्रव्यार्थिकः स्यादित्ये तेषामाशयः।

ते आचार्यनेमते ऋजुसूत्रनय द्रव्यावश्यकने विषेलीन न सभवे।

तथा "चउज्जुसु अस्सएगे अणु उवत्ते एगंदव्वावस्सयं पुहुत्तं नत्थि" इति अनुयोग द्वार सूत्र विरोधः वर्त्तमान पर्याया धारस्य द्रव्योशा पूर्वा पर परीणाम साधारण उर्ध्वता सामान्य द्रव्यांशसा दृस्यास्तित्व रूप तिर्यक् सामान्य द्रव्याशा.।"

एमां एके पर्याय न मानेतो ऋजु सूत्रने पर्यायार्थिक नय कहे तो ए सूत्र केमिले, ते माटे क्षणिक द्रव्यवादी सूक्ष्म ऋजुसूत्र तद्वर्त्तमान पर्यायापन्न द्रव्यादि स्थूल ऋजुसूत्र ते द्रव्य नय कहेवो, एम सिद्धान्त वादी कहे छे। "अनुपयोग द्रव्याशामेव सूत्र परिभाषित मादा योक्त सूत्रतार्किकमतते नोपपादनीय मित्यस्मादेक परिशीलितः पंथा" ॥१३॥ इसरीतिका लेख,वहांसे देखो ॥

अब इनआचार्योंका मुख्य आशय कहते हैं कि—वस्तुकी अवस्था तीन प्रकारकी है। एक तो प्रवृती, दूसरा सकल्प और तीसरी परिणिति यह तीन भेद हैं, जिसमें जो योग व्यापार सकल्प चेतनाका योग सहित मनका विकल्प तिसको श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमण प्रवृती धर्म कहते हैं, और संकल्पधर्मको उदयीक मिश्रपना कहते है, इसलिये

द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं और एक प्रणती धर्मको ही भावनिक्षेपा कहते हैं। और सिद्धसेन दिवाकर विकल्पको चेतना होनेसे भावनय कहते हैं, और प्रवृत्तीकी सीमा (हद) व्यवहार नय तक है, ओर संकल्प हैं सो ऋजुसूत्र नय है. एकवचन पर्यायरूप परिणतीधर्म सो शब्द नय है, और सकल वचन पर्याय रूप परिणिति धर्मसो संभिरूढ़ नय है, अथवा वचन पर्याय अर्थ पर्यायरूप सम्पूर्ण धर्म है सो एवंभूत नय है, इसलिये यह शब्दादिक तीन (३) नय सो विशुद्ध नय है, सो यह भाव धर्म नय मुख्यता अर्थात् उत्तर २ सूक्ष्मताका ग्राहक है। इस रीतिसे दोनों आचार्योंका-आशय कहा।

इसका मुख्य तात्पर्य यही हैं कि श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमण संकल्पधर्मको उदयीकमिश्रपनेसे पुद्गलीक होनेसे द्रव्यनिक्षेपामें गिना, सो कोई अपेक्षा सूक्ष्म बुद्धिविचारसे और सिद्धान्तके विरोध न होनेके वास्ते द्रव्य निक्षेपा बनता है, और सिद्धसेनदिवाकर प्रमुख आचार्योंके आशयसे तो चेतनाका अशुद्ध भाव होनेसे विकल्प रूप है सो चेतनामें सूक्ष्म बुद्धि विचार रूपसे पुद्गलीक लेश है नहीं, इसलिये कोई अपेक्षासे पर्यार्थिक भी बनता है।

दूसरा और भी एक आशय कहते हैं कि—जब नयके सात सौ (७००) भेद किये जाते हैं उन भेदोंमें ऋजुसूत्रनय को पर्यार्थिक माननेसे ही एक २ नयके सौ २ (१००,२) भेद पूरे होंगे, क्योंकि देखो नयगमनयके तीन भेद हैं, उनको दस द्रव्यार्थिकसे गुणनेसे तीस (३०) होते हैं। और संग्रह नयके दो भेद हैं उसको दस (१०) द्रव्यार्थिक से गुणा करें तो वीस (२०) भेद होते हैं। और व्यवहार नयके भी दो भेद हैं इसको दस (१०) द्रव्यार्थिकसे गुणा करें तो २० भेद होते हैं। इसरीतिसे इन तीनों नयको भेद समेत द्रव्यार्थिकसे गुणा किया तो ७० भेद हुए॥

अब पर्यार्थिकके तीस (३०) भेद कहते हैं कि ऋजुसूत्रनयके दो भेद हैं सो छः (६) पर्यार्थिकसे गुणा करनेसे बारह (१२) भेद होते हैं। और शब्द, समिरूढ, एवंभूत नय इनके भेद नहीं है इसलिये इन तीनोंसे

पर्यार्थिक ६ भेद्को गुणा करें तो अठारह (१८) भेद होते हैं। सो इन तीनोंके अठारह और ऋजुसूत्रके बारह मिलायकर तीस भेद हुए, सो तीस तो पयार्थिकके और ७० द्रव्यार्थिकके मिल कर १०० भेद हुए, सो इन सौ १०० भेदोंको सप्त भंगीके साथ फैलावें अर्थात् गुणा करें तो ७०० भेद होते हैं। इस रीतिसे सिद्धान्तोंकी प्रक्रियाको गुरू कुलवास सेवने वाले आत्मार्थी अध्यात्म शैली आत्म अनुभव सूक्ष्म विचारसे अपनी बुद्धिमें विचारते हैं। और एकान्त ऋजुसूत्र नयको न द्रव्यार्थिक ही कह सके और न पर्यार्थिक ही कह सके, हां अलबत्त दोनोंके आशय को अपनी बुद्धिमे विचारते हैं कि आचार्य इस आशयसे कहते हैं। क्यों कि देखो—जब ऋजुसूत्रको केवल द्रव्यार्थिक माने तो ऋजुसूत्रके दो भेद होनेसे द्रव्यार्थिक १० भेदसे गुणा करें तो २० भेद हो जायगे, तब उस बीस भेदको मिलावें तो १०८ भेद हो जांयगे? जब १०८ भेद हो गये तो १०० भेद जो सिद्धान्तोंमें कहे हैं सो क्यों कर मिलेंगे, इसलिये इन आचार्योंके आशयको तो वहि लोग विचार सके हैं कि जिन्होने गुरुकुलवास अध्यात्म शैलिसे आत्म अनुभव किया है वही लोग जान सकते हैं न तु जैनी नाम धरानेसे।

इसरीतिसे प्रसंगगत् किंचित् वर्णन किया सो इस वर्णन करनेका तात्पर्य यही है कि शास्त्रोंमें आचार्योने द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिक इन दोनों भेदोंका कथन मूल सात नयमें किया है। और द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिक जुदा न किया, परन्तु न मालुम इस देवसेनचोटक अर्थात् दिगम्बर जैनाभासने इस द्रव्यार्थिक पर्यार्थिकको जुदा छांट कर नव नय क्यौं कह दिया, और संसार बढ़ानेका भय किंचित् भी न किया, और जैनी नाम धराय लिया, भोले जीवोंको जालमें फसाय दिया, मिथ्या मतको चलाय दिया। क्योंकि देखो अन्तरगत है, सातनयके ऐसा जो. द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिक नय तिसका जुदा करके उपदेश क्योंकर बने। कदाचित् जो वो दिगम्बर ऐसा कहे कि मतान्तरसे ५ नय कहा है, उस पांच नयमें दो नय भी अन्तरगत होते हैं। जैसे तुम उन पांच नयमेंसे दो नय अलग (जुदा) निकालकर ७ नयका उपदेश

देते हो : तैसे हम भी द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिक जुदा करके उपदेश देते हैं ? तो हम तुम्हारेको कहते हैं कि हे भोले भाई विवेकसुन्य बुद्धि विचक्षण होकर हठवाद करते हो, और कुछ आत्माके कल्याण अर्थ किंचित् भी नहीं विचारते हो, सो हम तुम्हारेको कहते हैं, सो नेत्र मींचकर हृदयकमल पर बुद्धिसे विचार करो कि शब्दनय, संभिरूढ नय और एवंभूतनय इन तीनोमें जैसा विषय भेद है तैसा द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिक नयमें भिन्न (जुदा) विषय दीखे है नहीं। क्यों कि देखो जिस मतान्तर वालेने तीन नय एक संज्ञामे ग्रहण करके ५ नय कहा, परन्तु इनका विषय भिन्न (जुदा) है, और ऐसा विषय भिन्न उस द्रव्यार्थिकमें नहीं, क्योंकि देखो जो द्रव्यार्थिकके १० भेद कहे हैं सो सर्व शुद्धाशुद्ध सग्रह आदिक नयमें मिल जाते हैं, और जो पर्यार्थिकके ६ भेद कहे हैं सो सर्व उपचरित, अनूपचरित व्यवहार शुद्धाद्ध ऋजुसूत्र आदिक नयमें मिले है, जो गौवली वर्ध न्याय करके विषय भेद कहकर जुदा भेद मानोगे तो स्याद्स्त्येव, स्यान्नास्त्येव, इत्यादिक सप्तभंगीमें क्रोड़ों रीति अर्पित अनार्पितमें, सत्यासत्यग्राहक नय भिन्न २ नाम जुदा २ करोगे तो सप्त मूल नय प्रक्रिया भंग होकर अनेक नय बन जायगी। इस लिये इस सूक्ष्म विचारको कोई अध्यात्म शैलीसे आत्म अनुभव वाले ही विचार सक्ते हैं नतु जैनी नाम धरानेसे। कदाचित् जो तुम नव नय ही कहोगे तो विभक्तका विभाग अर्थात् पीसेका पीसना हो जायगा, इसलिये जो तुम्हारेको यथावत विवेचन करना होय तो जैसे "जीवा द्विधाः संसारिन् सिद्धाश्च संसारिन् प्रथव्यादि षट् भेदा. सिद्धा पंच दस भेदा" तैसे ही "नया द्विधा द्रव्यार्थिक पर्यार्थिक भेदात् द्रव्यार्थिका स्त्रिधा नयगम आदि भेदात् पर्यार्थिकः ऋजुसूत्र आदि भेदा चतुर्धा" इसरीतिसे विवेचन होता है परन्तु नव नया एक वाक्यका विभाग करना सो सर्वथा मिथ्यावाक्य है।

कदाचित् वो दिगम्बर ऐसा कहे कि जैसे जीव, अजीव दो तत्व हैं और उन दोनों तत्वोंके अन्तर्गत सब तत्व मिल जाते हैं, तो फिर सात अथवा नवतत्व क्यों जुदे २ कहते हो, जैसे सात अथवा नवतत्व जुदे २

कहे, तैसे ही द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत सर्वनय आते हैं, तौभी हम स्वय प्रक्रियासे नव नय कहते हैं।

तो हम तुम्हारेको कहते हैं कि हे भोले भाई कुछ बुद्धिका विचार कर कि उस जगह जुदा २ कहनेका जैसा प्रयोजन है तैसा द्रव्यार्थिक पर्यार्थिक कहनेका प्रयोजन नही। क्योंकि देखो जैसे जीव अजीव ये दो मुख्य ज्ञेय पदार्थ हैं और बन्ध मोक्ष, ये दो मुख्य हेय और उपादेय है, सोवन्धका कारण तो आश्रव है, सो हेय कहतां छोड़ना, और मोक्ष मुख्य पुरुषार्थ है सो उसके दो कारण हैं? १ सम्वर, २ निर्जरा, इस रीतिसे सात तत्व कहनेका प्रयोजन है। और आश्रव नाम आनेका है सो उस आनेके दो भेद हैं, उसीका नाम शुभ, अशुभ कहते हैं। इसलिये इनके भेद अलग (जुदा) करके प्रयोजन सहित नव तत्वका कथन है। परन्तु द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिकका भिन्न उपदेश देना कोई प्रयोजन है नही। क्योंकि देखो "सत्तमूल नयापन्नत्ता" ऐसा सूत्रमें कहा है, सो इस सूत्रके वाक्यको उलंघकर नव नय कहना सो महा मिथ्यात्व का कारण है, सो हे पाठक गणों ऊपर लिखित विचारको सूक्ष्म बुद्धि से विवेचन करो, देवसेनवोटकमतिकी कही हुई नव नयको परिहरो, उस उत्सूत्र भाषी दिगम्बरका संग कभी मत करो, सिद्धान्तोंमें कही जो सात नय उसको हृदयमें धरो, अपने आत्म कल्याणको करो, जिस से संसारमें कभी न फिरो, जिससे मुक्ति पद जाय वरो ॥ खैर।

अब और भी इस देवसेन दिगम्बरकी प्रक्रिया दिखाते हैं—कि जो द्रव्यार्थिक आदिक दस भेद कहे हैं सो भी उपलक्षण करके जानो, मुख्य अर्थ मत मानों, केवल नयचक्र भर दिये वृथा पानो, उसकी बुद्धि का क्या ठिकानों। इसलिये अत्र उसके जो दस भेद हैं उन दस भेदोंका कहना ठीक नहीं सो किंचित् दिखाते हैं–कि जैसे कर्म उपाधि सापेक्ष जीव भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहा है, तैसे ही जीव संयोग सापेक्ष पुद्गलभावग्राहक नय भी कहना चाहिये। इसरीतिसे जो भेद कल्पना करे तो अनन्ता भेद होजाय सो नहीं, किन्तु नयगम आदिकका अशुद्ध, अशुद्धतर, अशुद्धतम्, शुद्ध, शुद्धतर, शुद्धतम् आदि भेद किस

जगह संग्रह जायेंगे, इस लिये उपनय आदिकका भी कहना अप् सिद्धान्त है, क्यों कि—श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें नयका भेद दिखाया है सो वहांसे देखो। दूसरा और सुनों कि जो उपनयक है, सो नयगम व्यवहारादिकसें अलग नहीं। उक्तञ्च तत्वार्थ सत्रे "उपचार वहुलो विस्त तार्थो लौकिक प्रायो व्यवहारः इति बचनात्" इसलिये नयका जो भेद है उसको उपनय करके माने तो और भी दूषण आता है सो ही दिखाते हैं कि "स्वयपरव्यवसाईज्ञानंप्रमाण" इस लक्षण करके लक्षित जो ज्ञान उसका एक देश मतिज्ञानादिक अथवा अवग्रहादिक हैं सो उनको उप प्रमाण कहना ही पडेगा, क्योंकि शास्त्रोंमें किसी जगह उपप्रमाण कहा नहीं, इसलिये इस वोटकमत अर्थात् दिगम्बर जैनाभासकी कही हुई जो नय उपनय है सो ही शिष्यकी बुद्धिभ्रमजालमें गेरनेवाली है। और उपनयमें जो नव भेद उपचारसे किये है सो भी प्रक्रिया ठीक नहीं, केवल जिज्ञासुको भ्रमजालमें गेरकर वाद विवाद करना है, जिज्ञासुको संसारमें डुबाना है, इस श्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य कभी न पाना है, विवेक सून्य बुद्धि बिचक्षणका दिखाना है, ग्रंथके बढ़ जानेके भयसे निष्प्रयोजन जानकर न लिखाया है। इस जगह किसीको भ्रम उठे तो हम किंचित् दिखाते हैं कि "पर्याय द्रव्य उपचार" कह्या है, सो ठीक नहीं वनता, क्योंकि देखो उस नय चक्रमें ऐसा कह्या है कि 'पर्याय द्रव्य उपचार' जैसे शरीरको आत्मा कहना, इस जगह देह रूप पुद्गलपर्यायके विषय आत्मद्रव्यका उपचार करा है, सो उसका कहना ठीक नही वनता, क्योंकि उसकी विवेक सून्य बुद्धि होनेसे ? जो उसकी विवेक सून्य बुद्धि न होती तो पर्यायमें द्रव्यका उपचार इसरीति से न करता, किन्तु ऐसे करता सो ही दिखाते हैं कि "पर्यायमें द्रव्यका उपचार" इसरीतिसे वन सक्ता है कि अगुरु लघु जो पर्याय है उस अगुरु लघु ही का नाम काल हैं, सो वो पर्याय जीव अजीवका है परन्तु उस अगुरु लघु पर्यायको छठा काल द्रव्य करके कह्या है। इसरीतिसे पर्यायमें द्रव्यका उपचार कहता तो ठीक होता, परन्तु जिन्होंने शुद्ध गुरुके चरण कमल न सेवे और केवल जैनी नाम धरायकर श्याद्वाद

सिद्धान्तका रहस्य क्योंकर जान सक्ते हैं, इस रीतिसे उसका नय उपनयका कथन करना जैनमतसे मिथ्या है।

ऐसे ही जो उसने निश्चय, व्यवहारके भी भेद कल्पना किये हैं, सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि देखो व्यवहार नयके विषय तो उपचार है और निश्चय नयके विषय उपचार नहीं, इसमें क्या विशेष है, क्योंकि देखो जब एक नयकी मुख्य वृत्तीको अंगीकार करे तब दूसरी नयको उपचार वृत्ती अवश्यमेव आवे, यदिउक्तं "स्यादस्त्येव" ये नय वाक्य अस्तित्व ग्राहक निश्चय नय अस्तित्व धर्म मुख्य वृत्ती कालादिक आठ अभेद वृत्ती उपचारे अस्तित्व सम्बन्ध सकल धर्म मिला हुआ सकला देश रूप नय वाक्य होय, स्वस्वार्थसत्यपनेका अभिमान तो सर्व नयके माहों माही है, और फलसे भी सत्यपना है, सो सम्यक दर्शन योग है, इसलिये निश्चय और व्यवहारका जो लक्षण सो विशेषावश्यकमें कहा है सो उस शास्त्रके अनुसार अंगीकार करो। उक्तंच "तत्वार्थग्राही नयो निश्चयलोकभिमतार्थग्राही व्यवहारः" जो तत्वार्थ हैं सो ही निसन्देह युक्ति सिद्ध अर्थ जानना। और जो लोक अभिमत है सो व्यवहार प्रसिद्ध हैं। यद्यपि प्रमाणतत्वार्थग्राही है, तथापि प्रमाणस्य सकल तत्वार्थ ग्राही निश्चयनय अर्थात् निसन्देह है। और एक देश तत्वार्थ ग्राही व्यवहार यह भेद निश्चय और व्यवहारमें जानना। और निश्चय नयकी विषयता अथवा व्यवहार नयकी विषयता है सो अनुभव सिद्ध जुदी है, इस बातको नेत्र मीचकर हृदय कमलके ऊपर विचारो जिससे तुम्हारा अज्ञान जाय। क्योंकि देखो जो बाह्य अर्थ को उपचारसे अभ्यन्तर पना करे, उसको निश्चयनयका अर्थ जानना। यदि उक्तं "समाधिर्नन्दनं धैर्यं दंभोलिः समता शची॥ ज्ञाना महा विमानंच वासव श्रीरियं पुनः" ॥१॥ इत्यादि ऐसा ही पुंडरीक अध्ययनमें भी कहा हैं, जो घनी चित्तिका अभेद दिखा वे सो भी निश्चय नयार्थ जानना, क्योंकि देखो जैसे "एगेआया" इत्यादि सूत्र। और वेदान्त दर्शन भी शुद्धसग्रह नयादेश रूप शुद्ध निश्चय नयार्थ हैं, ऐसा सम्मति ग्रन्थमें कहा है, और द्रव्यकी जो निर्मल परिणिति बाह्य निर्पेक्ष

परिणाम सो भी निश्चय नयका अर्थ जानना, जैसे "आया सम्माईए आया सम्माई अस्स अट्ठे" इस रीतिसे जो२ लोक अतिक्रान्त अर्थ होय सो २ निश्चय नयका अर्थभेद होय, तिससे लोकउत्तर अर्थ भावना आवे, और जो व्यक्तिका भेद दिखावे सो व्यवहार नयका अर्थ है। क्योंकि देखो जैसे "अनेकानी द्रव्यानी" अथवा "अनेका जीवाः" इस रीतिसे व्यवहार नयका अर्थ होता है, यदि उक्त" "तिथ्थयणएणं पंच वन्नभमरे व्यवहारनाएनं कालवन्ने" इत्यादिक सिद्धान्तोमें प्रसिद्ध है, अथवा निम्नोक्त कारण इन दोनोंको अभिन्न पना कहे, सो भी व्यवहार नयका उपचार है, जैसे "अयुरधृतं" इत्यादिक कहे, अथवा परवत (डूंगर) जलता है, इत्यादिक व्यवहारभाषा अनेक रूपके प्रयोग होते हैं। इसरीतिसे निश्चय नय और व्यवहार नयके अनेक अर्थ होते हैं, तिनको छोड़कर थोड़ासा भेद उस देवसेन दिगम्बरी जैनाभासने नयचक्र ग्रंथमें रचना करके अपने जैसे बाल जीवोको वहकानेके वास्ते बनाया है, परन्तु सर्व अर्थ निर्णय उसको न आया, जैनमतसे विपरीत अर्थ दिखाया, श्याद्वादसिद्धान्तका रहस्य न पाया, केवल पंडित अभि मानसे अपने संसारको वधाया, अवग्रहिक मिथ्यात्वके ज़ोरसे सद्गुरु की सेवामें न आया, इसलिये शुद्ध जिनमत भी नपाया, केवल जैनी नाम धराया, यथावत शुद्ध नयार्थ स्वेताम्बर जिनमतमें पाया, इसी लिये आत्मार्थियोने इन्हींके ग्रंथोंका अभ्यास वढ़ाया, दिगम्बर जैना भासके ग्रंथोंको छिटकाया। इस रीतिसे किंचित् इन दिगम्बर जैना भासोंका कपोलकल्पित नयार्थ इस ग्रंथमें लिखकर वतलाया, अब शुद्ध जिनमत श्याद्वाद नय कहनेको चित्त चाया॥ इस रीतिसे दिगम्बर मतकी नय, उपनय, द्रव्यार्थिक, अध्यात्मभाषा, निश्चय, व्यवहार सर्वका वर्णन किया, और उनका शुद्धाशुद्ध भी दिखाय दिया।

अब जो शुद्ध जिनमत श्याद्वाद उसकी रीतिसे किंचित् नयका विस्तार कहते हैं, सो आत्मार्थी इस निम्न लिखत नय विचारको अच्छी तरहसे अभ्यास करें।

सात नयका स्वरुप ।

अब नयका स्वरूप दिखाते हैं, कि—नयके दो भेद हैं एक तो द्रव्यार्थिक, दूसरा पर्यायार्थिक, सो द्रव्यार्थिकके नयगम आदि तीन अथवा चार भेद हैं। और पर्यायार्थिकके ऋजुसूत्र नयको अंगीकार करें तो चार भेद हैं और जो शब्द नयसे अंगीकार करें तो तीन भेद है। सो प्रथम द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिकका अर्थ कहते हैं, इन दोनोंमें भी पहले द्रव्यार्थिकका अर्थ कहते हैं कि—उत्पाद व्यय पर्याय गौण पने रक्खे और द्रव्यका गुण सत्तामें है उस सत्ताको ही ग्रहण करे उसका नाम द्रव्यार्थिक है। सो उस द्रव्यार्थिकके भी दस (१०) भेद हैं सो ही दिखाते हैं,–कि प्रथम तो नित्य द्रव्यार्थिक, सर्व द्रव्य नित्य है। २ अगुरु लघु क्षेत्रकी अपेक्षा न करे, एक मूल गुणको इकट्ठा ग्रहण करे सो एक द्रव्यार्थिक, जैसे ज्ञानादिक गुण सर्व जीवका सरीखा है इसलिये सर्व जीव एक समान है। ३ स्वय द्रव्यार्थिकको ग्रहण करे सो सत्य द्रव्यार्थिक, जैसे "सतलक्षणं द्रव्यं। ४ और जो गुण कहनमें आवें, उसको अंगीकार करके कहे सो वक्तव्य द्रव्यार्थिक। ५ अशुद्ध द्रव्यार्थिक जो अपनी आत्माको अज्ञानी कहना कि मेरी आत्मा अज्ञानी है। ६ सर्व द्रव्य गुण पर्याय सहित है, इसका नाम अन्वय द्रव्यार्थिक है। ७ सर्व द्रव्यकी मूल सत्ता एक है, इसका नाम परम द्रव्यार्थिक है। ८ सर्व जीवका आठ रूचक प्रदेश निर्मल है, इसका नाम शुद्ध द्रव्यार्थिक। ९ सर्व जीवोंका असंख्यात् प्रदेश एक समान है, इसका नाम सत्ता द्रव्यार्थिक। १० गुण गुणी द्रव्य सो एक है, आत्मा ज्ञान रूप है, इसका नाम परम स्वभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक है। इसरीतिसे द्रव्यार्थिकके दस (१०) भेद हुए॥

अब पर्यायार्थिकनयका अर्थ करते हैं कि—पर्यायको ग्रहण करे सो पर्यायार्थिक कहना, उस पर्यार्थिकके छः (६) भेद हैं। १ प्रथम भव्य पर्याय पना अथवा सिद्ध पना। २ द्रव्य व्यंजन पर्याय, अपना प्रदेश समान [illegible]। ३ गुणपर्याय, यह एक गुणसे अनेकता होय, जैसे धर्म दिक

द्रव्य अपने चलनआदि गुणसे अनेक जीव, पुद्गलको सहाय करे हैं। ४ गुण व्यंजन पर्याय, यह एक गुणके अनेक भेद हैं। ५ स्वभाव पर्याय, सो अगुरूलघु यह पर्याय सर्व द्रव्यमें हैं। ६ विभावपर्याय, जीव, और पुद्गलमें हैं, 'क्योंकि जीव विभाव पर्यायसे ही चार गतिका नया २ भव करता है और पुद्गलमें विभाव पर्याय होनेसे ही खन्द सर्व बनता है, इसरीतिसे छः पर्यायार्थिकका अर्थ कहा।

इससे अलावे दूसरी रीतिसे भी पर्यायार्थिकके ६ भेद कहे हैं सो भी दिखाते हैं। १ अनादि नित्यपर्याय, जैसे मेरु आदि है। २ दुसरा आदि नित्य पर्याय, जैसे सिद्ध पना है। ३ अनित्य पर्याय, जैसे समय २ में ६ द्रव्य उपजे हैं और विनसे हैं। ४ अशुद्धनित्यपर्याय, जैसे जन्म मरण होता है। ५ उपाधिपर्याय, जीव कर्मका सम्बन्ध है। ६ शुद्ध पर्याय, सर्व द्रव्यका मूल (अगुरु लघु पर्यायको मूल पर्याय कहते हैं) पर्याय एक सरीखा है। इसरीतिसे पर्यार्थिकका स्वरूप कहा।

अब प्रथम ७ नयोंके नाम कहते हैं? १ नयगम नय, २ संग्रह नय, ३ व्यवहार नय, ४ ऋजुसूत्र नय, ५ शब्द नय, ६ संभिरूढ नय, ७ एवंभूत नय। इसरीतिसे सातो नयका नाम कहा। अब इन नयोंका विस्तारसे स्वरूप दिखाते हैं।

१ नयगमनय।

नयगमनयका ऐसा अर्थ होता है कि—नहीं है गम जिसमें उसका नाम नयगम है। यह नय एक अश गुण उपजे, अथवा आरोपादिवा सकल्प मात्र करनेसे वस्तुको मान लेता है, इसलिये इस जगह दृष्टान्त दिखाते हैं कि—कोई मनुष्य अपने दिलमें विचारने लगा कि पायली लाऊ (मारवाड़में धान मापने अर्थात् तौलनेके काष्ठके वर्तनको पायली कहते हैं) तब वो मनुष्य काष्ट लेनेके वास्ते जंगल अर्थात् वनको गया, उस वनमें रहनेवाले मनुष्यने उससे पूछा कि तुम कहां जाते हो, तब उस जानेवाले मनुष्यने कहा कि मैं पायली लेने कूं जाता हुँ, ऐसा कहा। तो इस जगह विचार करना चाहिये कि जिस

पुरुषने पायली लानेका नाम कहा कि पायली लेनेको जाता हूं, तो पायली उस जगह कुछ बनी हुई नहीं रखी, केवल काष्ठ लेनेके ही वास्ते जाता है, सो काष्ठका भी ठिकाना नहीं कि किस जगहसे काष्ठ लावेगा, परन्तु मनमें ऐसा चिन्तवन किया कि मैं पायली लाऊं, इस लिये उसने पायली कहा।

इस रीतिसे नयगमनय वाला मानता है क्योंकि देखो इस नयगम-नयसे ही सर्व जीव सिद्धके समान है, क्योंकि सर्व जीवके आठ रुचक प्रदेश निर्मल सिद्धके समान है, इसलिये नयगमनय वाला सर्व जीवोंको सिद्ध मानता है। सो उस नयगमनयके ३ भेद हैं १ आरोप, २ अन्श, ३ सङ्कल्प और किसी जगह चौथा भेद भी 'उपचरित' ऐसा कहा हैं।

इस रीतिसे इसके चार भेद हैं सो अब इन भेदोंके जो उत्तर भेद और भी होते हैं उनको दिखाते हैं कि आरोपके चार भेद हैं १ द्रव्य आरोप, २ गुण आरोप, ३ काल आरोप, ४ कारण आरोप।

सो द्रव्यआरोपका वर्णन करते हैं कि द्रव्य तो नहीं होय और उसमें द्रव्यका आरोप करना उसका नाम द्रव्य आरोप है, जैसे कालको द्रव्य कहते हैं सो काल कुछ द्रव्य नहीं है, क्योंकि जीव अजीव अर्थात् पञ्च अस्तिकायका प्रणमन धर्म है, सो वो अगुरुलघु पर्याय है, सो उसको आरोप करके काल द्रव्य कहते हैं, परन्तु यह काल पञ्चअस्ति कायसे जुदा पिण्ड रूप द्रव्य नहीं है, तौभी इसको द्रव्य कहते हैं, इसका नाम द्रव्य आरोप हैं।

दूसरा भेद कहते हैं—कि द्रव्यके विषय गुणका आरोप करना, जैसे ज्ञान गुण है, परन्तु ज्ञान है सो ही आत्मा है, इस जगह ज्ञानको आत्मा कहा इस रीतिसे गुण आरोप हुआ।

अब काल आरोप कहते हैं—सो उसके भी दो भेद हैं एक तो भूत, दूसरा भविष्यत्, सो ही दिखाते हैं कि जैसे श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण हुए बहुत काल हो गया, परन्तु वर्त्तमान कालमें दिवालीके दिन लोग कहते हैं कि आज श्रीवीरप्रभुजीका निर्वाण है, यह अतीत कालका आरोप वर्त्तमान कालमें किया। तैसही श्रीपद्मनाभ प्रभुका जन्म

तो भविष्यत् कालमें होगा, परन्तु लोग कहते हैं कि आजके दिन श्रीपद्मनाभ प्रभुका जन्म कल्याणक है। इस रीतिसे अनागत कालका आरोप होता है, सो इस अतीत अनागत कालका आरोप वर्त्तमान कालमें अनेक रीतिसे अनेक पदार्थोंमे होता है।

अब चौथा कारण आरोप कहते हैं सो—कारण चार प्रकारका है। १ उपादान कारण, २ असाधारण कारण, ३ निमित्त कारण, ४ अपेक्षा कारण। ये चार कारण है। तिसमें जो निमित्त कारण है उस निमित्तमें जो वाह्यक्रिया अनुष्ठान द्रव्य साधन सापेक्ष अथवा देव और गुरु यह सब धर्मके निमित्त कारण हैं, सो इनको ही धर्म कहना, क्योंकि देखो जैसे श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा भव्य जीवोंको आत्म स्वरूप दिखानेके वास्ते निमित्त कारण है सो उस निमित्त कारणको ही भक्तिवश होकर भव्य जीव कहते हैं कि, हे प्रभु ! तूं हमारेको तार तूं ही तरण-तारण है, ऐसा जो कहना सो निमित्त कारणमें उपादान कारणका आरोप करना हैं, क्यों कि ईश्वर परमात्मा सर्वज्ञदेव तो निमित्त कारण है, और उपादान कारण तो अपनी आतमा ब्रह्मरूप तारने वाला है, इसका नाम कारण आरोप है। सो इसके भी अनेक रीतिसे अनेक भेद हो जाते हैं।

अब अंश नयगम कहते हैं—कि, जो एक अंश लेकर सर्व वस्तुको माने उसका नाम अशनयगम हैं। सो इसके भी जो गुरुकुलवासके वसनेवाले आत्मअनुभव बुद्धिसे अनेक भेद शास्त्रानुसार और अपनी बुद्धि अनुसार करते हैं, इस रीतिसे यह अशनयगमनय कहा।

अब सङ्कल्पनयगम कहते हैं—सो इस सङ्कल्प नयगमके दो भेद हैं एक तो स्वयं परिनाम रूप, जैसे वीर्य्य चेतनाका सङ्कल्प होना, इस जगह जुदा जुदा क्षयउपसमभाव लेना हैं। दूसरा कार्य्यरूप भेद कहते हैं कि, जैसा २ कार्य्य होय तैसा २ उपयोग होय, सो यह भेद भी दो प्रकारके हैं। एक तो भिन्न आकांक्षावाला (भिन्न अंश), दूसरा अभिन्न आकांक्षा वाला (अभिन्न अंश)। भिन्नअश अर्थात् आकांक्षा वाला, खन्दादिक और अभिन्नअंश आकांक्षा यह आत्माका प्रदेश

अथवा गुणका अविभाग, इत्यादिक सर्व नयगमनयका भेद जानना, इस रीतीसे नयगमनय कहा ।

२ संग्रहनय ।

अब संग्रह नय कहते हैं—कि सत्ताको ग्रहण करे सो संग्रह, अथवा एक अस अवयवका नाम लेनेसे सर्ग वस्तुको ग्रहण करे, जैसे एक द्रव्यका एक अग गुणका नाम लिया, तब जितने उस द्रव्यके गुण पर्याय थे सो सबको ग्रहण करे उसका नाम संग्रह नय है ।

इस संग्रह नयका दृष्टान्त भी देकर दिखाते हैं कि जैसे कोइ बड़ा आदमी अपने घरके दर्वाज़ेपर बैठा हुआ नोकरसे कहे कि दाँतौन (दाँतन) तो लाओ, तब वो नोकर दाँतौन ऐसा शब्द सुन कर दाँतोंके माँजनेका मञ्जन, कूँची, जिभी, पानीका लोटा, रूमाल आदि सब चीज़ ले आया, तो इस जगह विचार करना चाहिये कि उस बड़े आदमीने तो एक दाँतनका नाम लिया था, परन्तु जो दाँतन करनेकी सामग्री थी उस सबका संग्रह हो गया । तैसे ही द्रव्य ऐसा नाम कहनेसे द्रव्यके जो गुण पर्याय थे सबका ग्रहण हो गया ।

इस रीतिसे सग्रहनयकी व्यवस्था कही । सो उस संग्रह नयके दो भेद हैं—१ सामान्य सग्रह, २ विशेष संग्रह । सो सामान्य संग्रहके भी दो भेद हैं। १ मूलसामान्यसंग्रह, २ उत्तरसामान्यसंग्रह, सो मूलसामान्यसंग्रहके तो अस्तित्वादिक ६ भेद हैं। और उत्तर-सामान्यके दो भेद हैं । एक जाति सामान्य, २ समुदाय सामान्य । जाति सामान्य तो उसको कहते हैं कि, जैसे एक जाति मात्रको ग्रहण करे। और समुदाय सामान्य उसको कहते हैं कि, जो समूह अर्थात् समुदाय सबको ग्रहण करे। अथवा उत्तर सामान्य चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनको ग्रहण करता है। और मूल सामान्य हैं सो अवधि दर्शन तथा केवलदर्शनको ग्रहण करता है। अथवा इस सामान्य, विशेषका ऐसा भी अर्थ होता है कि, द्रव्य ऐसा नाम लेनेसे सर्व्व द्रव्योंका संग्रह हो गया, इसका नाम सामान्य संग्रह हैं। और केवल

एक जीव द्रव्य कहा तो सर्व जीव द्रव्यका संग्रह होगया, परन्तु अजीव सब टल गया। इसका नाम विशेष संग्रह हैं।

इस संग्रह नयका विस्तार बहुत है क्योंकि देखो "विशेषाविशेष" ग्रन्थमें संग्रहनयके चार भेद कहे हैं सो भी दिखाते हैं, कि एक वचनमें एक अध्यवसाय उपयोगमें ग्रहण आवे तिसका सामान्य रूपपने सर्व वस्तुको ग्रहण करे सो संग्रह कहिये, अथवा सर्व भेद सामान्य पने ग्रहण करे तिसको संग्रह कहिये, अथवा 'संग्रीहते' समुदाय अर्थ ग्रहण करे, वा वचनको ग्रहण करे सो बचन संग्रह कहिये, सो इसके चार भेद हैं। १ संग्रहीतसंग्रह, २ पण्डितसंग्रह, ३ अनुगमसंग्रह, ४ व्यतिरेकसंग्रह।

प्रथम भेद कहते हैं कि—सामान्य पने वचनके विना जो ग्रहण होय ऐसा जो उपयोग, अथवा ऐसा जो धर्म कोई बस्तुके विषयते संग्रह करे, अथवा एक जाति एकपनो मानें, वा एक मध्ये सर्वको ग्रहण करे, यह प्रथम भेद हुआ।

अब दूसरा भेद पण्डित संग्रह का कहते हैं कि,—जैसे "एगे आया एगे पुग्गला" इति वचनात्, इस वचनसे सब वस्तुको संग्रह करे, क्योंकि देखो "एगे आया" कहता जीव अनन्ता है, "एगे पुग्गला" कहता पुद्गलपरमाणु अनन्ता है, परन्तु एक जाति होनेसे एक वचनसे सबका संग्रह कर लिया, इस लिये इसको पण्डित संग्रह कहा।

अब तीसरा भेद कहते हैं, कि सब समयमें अनेक जीव रूप अनेक विक्ति हैं सो सर्वमें पाती हैं तिसको अनुगतसंग्रह कहते हैं, जैसे सत्चित् आनन्दमयी आत्मा, इसलिये सर्व जीव तथा सर्व प्रदेश सर्व गुण हैं सो जीवका चेतना लक्षण कहते हैं, इस लिये इसको अनुगत सग्रह कहा।

अब चौथा भेद कहते हैं कि—जिसका वर्णन करे उसके व्यतिरेक सर्वसग्रह व्यतिरेकका सर्व संग्रह पने ज्ञान होय, तिसका नाम व्यतिरेक संग्रह है, जैसे जीव है तिस जीवसे व्यतिरेक (जुदा) अजीव है।

इस रीतिसे व्यतिरेक वचन अथवा उपयोगसे जीवका ग्रहण होता

है। इस लिये इसको व्यतिरेक संग्रह कहा, और रीतिसे भी इसके दो भेद होते हैं—एक तो महासत्तारूप, दूसरा अवान्तरसत्तारूप। इस रीतिसे संग्रह नय कहा। सो इस संग्रह नयमें सब वस्तुका ग्रहण होता हैं, ऐसी जगत्‌में कोई वस्तु नही है कि जो संग्रह नयके ग्रहणमें न आवे किन्तु सर्व ही आवें, इस रीतिसे संग्रह नय कहा।

३ व्यवहार नय।

अब व्यवहार नय कहते हैं कि—बाह्य स्वरूपको देखकर भेद करे, क्योंकि व्यवहार नय जैसा जिसका व्यवहार देखे तैसाही तिसका स्वरूप कहे, अन्तरंग स्वरूपको न माने, इस लिये इस व्यवहार नयमे आचार क्रियाको देखे, अन्तरङ्गके परिणामको न जाने अर्थात् न देखे, और नयगम, संग्रह नयवाला अन्तरङ्ग परिणामको ग्रहण करता है, क्योंकि यह दोनों नय सत्ताको ग्रहण करते हैं। और व्यवहारनय-वाला केवल करनीको देखता है। इस लिये नयगम साग्रह नय वाला तो जीवकी अनेक व्यवस्था है तौ भी सत्ताको ग्रहण करके एक रूप कहता है। और व्यवहारनय वाला जीवकी अनेक व्यवस्था मानता है सो ही दिखाते हैं।

व्यवहार नयवाला जीवके दो भेद मानता है—१ सिद्ध २ संसारी। उस संसारी जीवके भी दो भेद हैं। एक तो अयोगी १४ वे गुणठाने वाला, दूसरा सयोगी। उस सयोगीके भी दो भेद हैं—एक तो केवली १३ में गुणठाने वाला, २ छद्मस्थ। उस छद्मस्थके भी दो भेद हैं, एक क्षीणमोही १२ वे गुणठाने वाला, २ उपसान्त मोह वाला। उस उप-सान्त मोह वालेके भी दो भेद हैं—एक तो अकषाई अर्थात् क्रोध, मान, माया करके रहित ११ वे गुणठानेवाला जीव, २ सकषाई अर्थात सूक्ष्म लोभ। उस सकषाईके भी दो भेद हैं—एक तो श्रेणी अर्थात् ऊपरको चढ़नेवाला, २ श्रेणीकरके रहित अर्थात् न चढ़नेवाला। उस श्रेणी रहितके भी दो भेद हैं—१ अप्रमादि, २ प्रमादी। उस प्रमादीके भी दो भेद हैं—१ सर्व वृत्तिवाला साधू, २ देश वृत्तिवाला श्रावक। उस देश

वृत्तिवालेके भी दो भेद हैं—१ तो वृत्ति परिणाम वाला, २ अवृत्ति परिणाम वाला ? उस अवृत्ती परिणाम वालेके भी दो भेद हैं ? अवृत्ती समगती, २ मिथ्यात्वी ? उस मिथ्यात्वीके भी दो भेद हैं एक तो अभव्य, २ भव्य । उस भव्यके भी दो भेद हैं ? ग्रंथी करके रहित, २ ग्रंथी करके सहित । इसरीतिसे जैसा जीव देखे तैसा ही कहे ।

अब इसी व्यवहार नयसे पुद्गलके भी भेद करके दिखाते हैं कि,- पुद्गल द्रव्यके दो भेद हैं-एक तो परमाणु, २ खन्द ? उस खन्दके भी दो भेद हैं-एक तो जीव सहित अर्थात् जीवसे कर्मरूपपुद्गल लगा हुआ, २ जीव रहित । १ जीव सहित खन्दके दो भेद हैं एक तो सूक्ष्म २ बादर ।

यहां वर्गणाका विचार लिखते हैं कि पुद्गलकी वर्गणा आठ हैं सो उनके नाम कहते हैं १ औदारीक वर्गणा, २ वैक्रिय वर्गणा, ३ आहारक वर्गणा, ४ तेजस्वर्गणा, ५ भाषावर्गणा, ६ उस्वासवर्गणा, ७ मन वर्गणा, ८ कारमण वर्गणा, यह आठ वर्गणाका नाम कहा ।

अब इनकी व्यवस्था कहते हैं कि- वर्गणा किसरीतिसे बनती है और कितने परमाणु इकट्ठा होनेसे वर्गणा होती है सो ही दिखाते हैं । दो परमाणु इकट्ठा (भेला) होते हैं तब द्विणुकखन्द होता है, तीन परमाणु इकट्ठा होय तब त्रिणुक खन्द होय. चार मिले तो चतुर्णुक खन्द होय, ऐसे ही संख्यात परमाणु इकट्ठा मिले तो संख्यात् परमाणुका खन्द बने, ऐसे ही असंख्यात परमाणु मिले तो असंख्यात् परमाणुका खन्द बने, अनन्ता परमाणु मिले तो अनन्ता परमाणुका खन्द बने । यह अजीव खन्द जीवको ग्रहण करनेके योग्य नहीं है क्योंकि, अभव्यसे अनन्त गुणा परमाणु इकट्ठा होय तब वैक्रिय वर्गणा लेनेके योग्य होय, और वैक्रिय वर्गणामें जितने परमाणु हैं उस वर्गणासे अनन्त गुणे परमाणु इकट्ठे होय तब अहारकवर्गणा होय, इसरीतिसे एक २ वर्गणासे अनन्त २ गुणे परमाणु ज्यादा होय तब आगेकी वर्गना होय, इसरीतिसे सातवीं मनोवर्गणामें जितने परमाणु ज्यादा २ मिलते हुए मनोवर्गणामें इकट्ठे हुए हैं उस मनोवर्गणासे भी अनन्तगुणे परमाणु मिले तब कारमण वर्गणा होय । इस रीतिसे वर्गनाका विचार कहा ।

इन वर्गनामें भी दो भेद हैं १ बादर, २ सूक्ष्म, सो पेश्तर बादर वर्गनाको कहते हैं कि—एक तो औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तेजस, ये चार वगणा बादर हैं। इन वर्गणामें ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्स, ये २० गुण हैं। और ४ वर्गणासूक्ष्म हैं १ भाषा, २ उस्वास, ३ मन, ४ कारमण, ये ४ सूक्ष्मवर्गणा में ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ४ स्पर्स, ये १६ गुण हैं। और एक परमाणुमें १ वर्ण. १ गन्ध, १ रस, २ स्पर्स ये पाच गुण हैं। इस रीतिसे पुद्गल की व्यवस्था व्यवहारनय वाला मानता है।

व्यवहारनयवाला व्यवहारके भी ६ भेद कहता हैं सो ही दिखाते हैं। सो प्रथम व्यवहारके दो भेद होते हैं एकतो शुद्ध * व्यवहार. दूसरा अशुद्ध व्यवहार।

सो शुद्ध व्यवहारके भी दो भेद हैं—एक तो वस्तुगततत्व ग्रहणव्यवहार, दूसरा वस्तुगततत्वजाननव्यवहार ? प्रथम भेदको कहते हैं कि आत्मतत्व अर्थात् अपने निजस्वरूपको ग्रहण करे, और परवस्तुगत तत्वको छोड़े, उसका नाम वस्तुगततत्वग्रहणव्यवहार है ॥

अब दूसरे भेदको कहते हैं कि वस्तुगततत्वजाननव्यवहारके दो भेद हैं—ऐकतो स्वयवस्तुगततत्वजाननव्यवहार, दूसरा परवस्तुगततत्वजाननव्यवहार। सो प्रथम भेदका तो अर्थ इस रीतिसे होता है कि स्वय क० अपनी आत्माका जो तत्व क० ज्ञान, दर्शन, चरित्र, वीर्य्य आदि अनन्तगुण आनन्दमयी है, मेरा कोई नहीं, और मैं किसी का नहीं हूं, ऐसा जो अपने स्वरूपको जानना उसका नाम स्वयवस्तुगततत्वजाननव्यवहार है। दूसरा जो पर वस्तुगततत्वजानन व्यवहार उसके कोई अपेक्षासे तो एकही भेद है, और कोई अपेक्षासे चार अथवा पांच भेद भी हो सक्ते हैं। सो सबको एक साथ दिखाते

---

* नोट—इसी को जिन मत में निश्चय अर्थात् निसन्देह तत्वको ग्रहण करे इसी का नाम निश्चयनय है, सो इसका वर्णन अच्छो तरहसे पीछे कर चुके हैं।

हैं कि—जैसे धर्मास्तिकायमें चलनसहायआदि गुण हैं और अधर्मास्तिकायमें स्थिरसहायआदि गुण, आकाशमें अवगहनादि गुण, पुद्गलमें मिलन विखरन आदि गुण, कालमें नया पुराना वर्त्तनादि गुण, इत्यादिक इन सर्वको वस्तुगततत्वको जानना उसका नाम परवस्तुगततत्वजानन व्यवहार है। इसरीतिसे इसके भेद कहे।

और रीतिसे भी इस वस्तुगतव्यवहारके तीन भेद होते हैं सो भी दिखाते हैं। एकतो द्रव्यव्यवहार, दूसरा गुणव्यवहार, तीसरा स्वभावव्यवहार? सो द्रव्यव्यवहार तो उसको कहते हैं कि–जो जगत् में द्रव्य (पदार्थ) हैं उनको यथावत जानें, इस भेदके कहनेसे बौद्धादि मतका निराकरण है। दूसरा गुण व्यवहार उसको कहते हैं कि–गुण गुणीका सम्वायसम्बन्ध है, उसको यथावत जाने और गुण गुणीका परस्पर भेद अभेद दोनोंको माने, जो एकान्त भेदको ही माने तो दूसरा द्रव्य ठहरे सो दूसरा द्रव्य गुण है नहीं, किन्तु गुणसे हीं गुणीकी प्रतीत होती है, इसलिये एकान्त भेद नहीं। और जो गुणसे गुणीको एकान्त अभेद ही माने तो गुणीके विना गुणकी प्रनीत होय नही, क्योंकि जव गुण और गुणीका एकस्वरूप हुआ और भेदको माने नहीं तो उस गुणीकी प्रतीत क्योंकर होगी, इसलिये एकान्त अभेद नहीं, इस गुणव्यवहारसे वेदान्तमतका निराकरण है। क्योंकि वेदान्त मतवाला आत्माका जो ज्ञानगुण उसको एकान्त करके गुण गुणीका अभेद मानता है, इसलिये गुण व्यवहार उसके निराकरणके वास्ते कहा। तीसरा स्वभावव्यवहार कहते हैं कि—द्रव्यमें जो स्वभाव है उसको यथावत जानें, इस स्वभाव व्यवहार कहनेसे नैय्यायकमतका निराकरण हैं। इसरीतिसे वस्तुगतव्यवहारके तीन भेद कहे।

अब इस शुद्धव्यवहारके और रीतिसे भी भेद दिखाते हैं कि—एक तो साधनव्यवहार, २ विवेचनव्यवहार? सो साधनव्यवहार तो उसको कहते हैं कि उत्सर्गमार्गसे नीचेके गुणस्थानको छोड़े और ऊपरके गुणस्थानमें श्रेणी आरोहणरूप करके समाधिमें होकर आत्म रमण करे।

अब विवेचन व्यवहारके दो भेद हैं। एक तो स्वय विवेचनव्यवहार, दूसरा पर ग्रहण करानेके वास्ते विवेचनव्यवहार। सो स्वय विवेचनके दो भेद हैं। एक तो उत्सर्ग, दूसरा अपवाद। सो उत्सर्ग स्वय विवेचन व्यवहार निर्विकल्पसमाधि रूप है, दूसरा अपवादसे विकल्प सहित शुकलध्यानका प्रथम पाया स्वय विवेचन अपवाद व्यवहार।

अब पर ग्रहण करावनरूप विवेचनव्यवहार कहते हैं कि—यद्यपि ज्ञान, दर्शन, चरित्र आदि आत्मासे अभेद होकर एक क्षेत्र अर्थात् आत्म प्रदेशमें रहते हैं, परन्तु जिज्ञासुके समझानेके वास्ते ज्ञान, दर्शन, चारित्र को जुदा कहकर आत्म बोध कराना, इसरीतिसे शुद्ध व्यवहार कहा॥

अब अशुद्धव्यवहारके भेद दिखाते हैं कि—अशुद्ध व्यवहारके दो भेद हैं एकतो सश्लेषितअशुद्धव्यवहार, दूसरा असंश्लेपितअशुद्ध व्यवहार ?

प्रथम सश्लेपितअशुद्धव्यवहार उसको कहते हैं कि—यह शरीर मेरा है, मैं शरीरका हूं इसरीतिका जो कहना उसका नाम असद्भूत सश्लेपित व्यवहार है।

अब दूसरा असंश्लेपितअशुद्ध व्यवहार कहते हैं कि-धनादिक मेरा है, यह असश्लेषितअशुद्धव्यवहार हुआ, यह भेद महाभाष्यमें कहे हैं।

अब दूसरी रीतिसे भी इस अशुद्धव्यवहारके भेद कहते हैं कि-इस अशुद्धव्यवहारके मूलमें दो भेद हैं। एक तो विवेचनरूप अशुद्ध व्यवहार, दूसरा प्रवृतीरूप अशुद्धव्यवहार। सो वह विवेचनरूप अशुद्धव्यवहार अनेक प्रकारका है। दूसरा जो प्रवृत्तीरूप अशुद्ध व्यवहार है उसके दो भेद हैं। एकतो साधनरूप प्रवृत्ती, दूसरी लौकिक प्रवृत्ती। सो एकतो लोकउत्तरसाधन प्रवृत्ती, आत्म स्वरूप जाने विना धर्मादिक द्रव्यक्रियाका करना, दूसरी लौकिक प्रवृत्ती उसको कहते हैं कि जिस २ देश, जिस २ कुलमें, तिस २ प्रवृत्ती अनुसार चले।

अब तीसरी रीति और भी इस अशुद्धव्यवहारकी दिखाते हैं कि—इस अशुद्धव्यवहारके चार भेद हैं। एकतो शुभव्यवहार, २ अशुभ व्यवहार, तीसरा उपचरितव्यवहार, चौथा अनुपचरितव्यवहार।

पहला शुभव्यवहार उसको कहते हैं कि—जो पुन्यादिककी क्रिया करे। और अशुभव्यवहार उसको कहते हैं कि—जो पापादिककी क्रिया करे। और उपचरितव्यवहार उसको कहते हैं—जो धनादि परवस्तु है उसको अपना कहना।

अनुपचरितव्यवहार उसको कहते हैं कि—शरीर (देह) मेरा है, सो शरीर उस जीवका है नहीं, क्योंकि परवस्तु है सो यद्यपि धनादिक की तरह शरीर नहीं हैं, तथापि अज्ञान दशासे लौलीभावपना तदात्मभाव से अपना मान रक्खा है, इसलिये इसको अनुपचरित व्यवहार कहते हैं, इसरीतिसे व्यवहारके भेद कहे।

इन नयोंके भेद द्वादशनयचक्रमें तो एक २ नयके बारह २ भेद कहे हैं, सो वहांसे जानना। परन्तु इस जगह तो कई ग्रंथोंकी अपेक्षासे कहे हैं। सो इसरीतिसे व्यवहारनय कहा।

४ ऋजुसूत्रनय

अब ऋजुसूत्रनय कहते हैं कि—ऋजु के० अवक्रपने अर्थात् सरल (सीधा), सूत्रके० वस्तुका सरल पनेसे जो बोध, उसका नाम ऋजुसूत्र नय है। इस नयमें वक्रता करके रहित अर्थात् सरल स्वभावको अंगीकार करे, इस कहनेका तात्पर्य्य यही है कि यह ऋजुसूत्रनय केवल एक वर्त्तमानकालको ग्रहण करे, और अतीत, अनागतकी अपेक्षा न करे, क्योंकि अतीतकालमें जो पदार्थ था सो तो नष्ट हो गया, और भविष्यत कालमें जो होनेवाला है सो उसकी खबर है नहीं, इसलिये एक वर्त्तमानकालको ही ग्रहण करे, इसलिये इसको ऋजुसूत्रनय कहा। सो इस ऋजुसूत्रनयमें किसी अपेक्षासे नामादि निक्षेपा भी इस नयके अन्तरगत है, सो विशेष २ ग्रंथमें ऋजुसूत्रनयमें ही नामादि निक्षेपा कहे हैं। और कई ग्रंथोंमें शब्दनयके अन्तरगत नमादि निक्षेपा कहे हैं, सो इन दो नयके अन्तरगत निक्षेपा कहनेकी अपेक्षा है, सो हम निक्षेपाका वर्णन तो शब्दनयमें करेंगे, इस जगह तो केवल इतना ही कहना था कि नामादिनिक्षेपा ऋजुसूत्रनयमें भी किसीं अपेक्षासे ग्रंथकार कहते हैं।

इस ऋजुसूत्रनयके दो भेद है, एकतो सूक्ष्मऋजुसूत्र, दूसरा स्थूलऋजुसूत्र। सो सूक्ष्मऋजुसूत्रवाला तो एक समयमें जैसा परिणाम होय तैसा ही माने, वाह्यक्रियाको न देखे, सो ही द्रष्टान्त देकर दिखाते हैं कि–जैसे कोई जीव ग्रहस्थ अवस्था में गहना, कपड़ा, श्रृङ्गार सहित बैठा हुआ है, परन्तु अन्तरंग परिणाम साधूके समान अर्थात इन्द्रियोंके विपयसे अलग होकर आत्मगुणके चिन्तवनमें लग रहा है उस जीवको सूक्ष्मऋजुसूत्रनयवाला साधू अर्थात् त्यागी कहेगा। तैसेही जो जीव साधूका भेप अर्थात् ओघा, मुंहपत्ती नंगे पग, नंगे सिर, लोचादिकिये हुए हैं, परन्तु उसके अन्तरग चितमे इन्द्रियोके विपयभोगनेकी अभिलाषा (इच्छा) है, उसको सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयवाला अवृत्ती, अपचखानी ग्रहस्थी ही कहेगा, नतु साधूका भेष देखकर साधू कहेगा। इसीरीतिसे इस स्थूल ऋजुसूत्र नयवाला वाह्यरूपवृत्ती, अथवा कथनीके कथनेवालेको जैसा देखेगा तैसा कहेगा, सो इनदोनों भेदमें केवल वर्त्तमान कालको ही अपेक्षा हैं, नतु भूत, भविष्यतकी। इसरीतिसे ऋजुसूत्रनय कहा।

५ शब्दनय

अब शब्दनय कहते हैं–शब्द अर्थात् वचनसे कहने मे आवे उसका नाम शब्दनय है। सो शब्द दो प्रकार का है – एकतो ध्वनिरूप, दूसरा वर्णात्मक। सो ध्वनिरूप शब्द तो कोई आपस में मिलकर सांकेत करे तो उनके सांकेत मूजिब भावार्थ मालूम पड़े, नही तो कुछ नहीं। सो साकेतका किंचित् वर्णन करते हैं–कि जैसे वर्तमानकाल में अगरेजलोगोंने विजलीके ज़ोरसे तार आदिकका खटका चलाया है और सब जगह खटके के हिसाबसे हरेक वात मालूम हो जाती है, सो यह रीति इस आर्य्यक्षेत्र में ध्वनिरूपसे पेश्तर भी लोग आपसमे करते थे, सो उसका किंचित् खुलासा करके दिखाते हैं। सो पेश्तर उसके खुलासा होनेको एक छन्द लिखाते हैं।

अहिफन, कमल, चक्र, टंकार, तरु, पल्लव, यौवन, श्रृङ्गार।

उंगली अक्षर, चुटकी मात, लक्ष्मण करे राम सूंवात ॥ १ ॥

अब इसका अर्थ समझाते हैं कि अहिफन कहनेसे अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ये अक्षर आते हैं और सांप कैसा आकार हाथसे किया जाता है। और कमल कहनेसे कवर्गके अक्षर आते हैं। और चक्र कहनेसे चवर्गके अक्षर आते हैं। और टंकार कहनेसे टवर्गके अक्षर आते हैं। और तरु कहनेसे तवर्गके अक्षर आते हैं। और पल्लव कहनेसे पवर्गके अक्षर आते हैं। और यौवन कहनेसे य, र, ल, व. ये अक्षर आते हैं। श्रृङ्गारके कहनेसे श, ष, स, ह, क्ष, इत्यादि अक्षर आते हैं। सो इनके जुदे २ इशारे हाथसे किये जाते हैं। उस इशारेसे तो वर्ग मालूम हो जाता है। और उंगलियोंके उठानेसे अक्षर मालूम हो जाता है, सो उगलियोंका उठाना इस रीतिसे है कि—जिस वर्गका पहला अक्षर कहना होय तो एक उंगली उठावे, दूसरा कहना होयतो दो उंगली उठावे, तीसरा कहना होय तो तीन उंगली उठावे, इस रीतिसे उंगली उठानेसे अक्षर मालूम हो जाता है। फिर चुटकी बजानेसे मात्राका इशारा मालूम होता है सो ही दिखाते है कि—एक चुटकी बजानेसे तो ह्रस्व, अक्षरकी मात्रा होती है, दो बजानेसे दीर्घ आकारकी मात्रा होती है, तीन बजानेसे ह्रस्व इकारकी मात्रा होती है, चारबजानेसे दीर्घ ईकारकी मात्रा होती है, पाच बजानेसे ह्रस्व उकारकी मात्रा होती है, इसीरीतिसे जितनी चुटकी बजावे उसी स्वरकी मात्रा समझ लेना। इसरीतिसे तो (सन्मुख) वार्ता लाप होती है। और उस वार्त्ताको जो साकेत समझने वाला है वही समझ सक्ता है, नतु हरेक मनुष्य समझेगा।

अब इसीकी दूरखवर देनी होय तो ध्वनि अर्थात नगारेकी आवाज़ या वन्दूक, तोप आदिकके शब्दसे इस साकेत का समझनेवाला उस ध्वनि रूप शब्दसे समझ सका है, सो उसका भी सांकेत दिखाते हैं - कि तीन दफेकी ध्वनिसे एक अक्षर बनता है, सो पेश्तर तो अक्षरोंके आठ वर्ग होते हैं, सो जिस वर्गको कहना होय उतनेही ध्वनिरूप शब्द करे, फिर दूसरी दफे जौनसा अक्षर कहना होय उतनी ही वार ध्वनि करे,

फिर तीसरी दफे जौनसी मात्रा देनी होय, उतनेही दफे ध्वनि करे। इसरीतिसे दूर देश में भी वार्तालाप होता है। और जो कई अक्षर मिलाकर ध्वनिमें कहना होय तो जिस अक्षरको पहले कहना होय उस अक्षरके वर्ग और अक्षरको कहकर फिर दूसरे अक्षर और वर्गको कहे, सो जितने अक्षर मिलाने होय उतने ही अक्षरोंके वर्ग और अक्षरोंकी ध्वनि करके वाद सबसे पीछे मात्राकी ध्वनि करे तो मिला हुआ अक्षर भी उस सांकेतवालेको ध्वनिसे मालूम हो जाय।

अव इसकी एक दूसरी रीतिभी और कहते हैं कि–सोलहतो स्वर होते हैं और तेंतीस (३३) व्यंजन होते हैं और तीन अक्षर क्ष, त्र, ज्ञ, के जुदे होते हैं। इस रीतिसे कुल वावन (५२) अक्षर होते हैं, सो इन अक्षरों के साकेत करनेमें दो ध्वनिमें ही सांकेत करनेसे मतलव यथावत मालूम हो जाता है सोही दिखाते हैं— कि इन वावन (५२) अक्षरोंमेंसे जिस अक्षरको पेश्तर कहना होय उतनो ही ध्वनी करे, फिर पीछेसे मात्राकी ध्वनि करे, इस रीतिसेभी ध्वनि रूप इशारा होनेसे जहां तक ध्वनि वा इशारा होगा, तहां तक वह सांकेतवाला समझ लेगा। और इसका विशेष खुलासातो गुरु चरण सेवाके विना लिखा हुआ देखकर वोध होना मुशकिल है, हमने इस वर्तमानकालकी व्यवस्था देखकर इसका किंचित् खुलासा किया है, कि वर्तमामकालमें अंगरेजी पढ़े हुए लोग इन अंगरेजोंके तार आदि देखकर कहते हैं कि अंगरेजोंके पेश्तर यह वातें नहीं थी, इस लिये किञ्चित् इशारा किया है, कि विनय, विवेक, काल दूषणसे जिज्ञासुमें न रहा और छल,कपट, झूंठ,मायावृति, तर्क विशेष वढ़गया, इससे गुरूआदिकका विद्या देनेसे चित्त हटगया। इस रीतिसे ध्वनिरूप शब्दका वर्णन किया।

अव जो वर्णात्मक शब्द हैं उसके अनेक भेद हैं सोही दिखाते है— कि एकतो सस्कृत वा प्राकृत आदि जो व्याकरण हैं, उस व्याकरणकी रीतिसे जो धातु प्रत्ययसे शब्द वनता है, उस शब्दको अंगीकार करे, सो उसके तीन भेद होते हैं—एकतो यौगिक, २ रूढ़ि, ३ योगरूढि, अव इन तीनोंका अर्थ करते हैं—कि योगिकतो उसको कहते हैं कि "पच-

तोति पाचिका" कि जो रसोईके करनेवाला होय उसका नाम पाचक अर्थात पकानेवाला है।

और रूढ़ि शब्द उसको कहते हैं कि-जैसे हरड, वेहडा, आंवला, इन तीनोंके मिलने से त्रफला कहते हैं। सो यह रूढ़ि शब्द है क्योंकि इन तीनोंहीके मिलनेसे त्रफला होय सो तो नहीं, किन्तु हेरक तीन फल मिलनेसे त्रफला होता है, परन्तु और कोई तीन फलोंके मिलनेको कोई त्रफला नहीं कहता और इन्हो तीनोंके मिलनेसे सब जगह इसको त्रफला कहते हैं। इसलिये इसका नाम रूढि शब्द है। और भी अनेक बातोंके स्व २ देशमें अनेक तरहके रूढिशब्द हैं। सो रूढि नाम उसका है कि धातु प्रत्ययसे तो उस शब्दके अर्थकी प्रतीति न होय, परन्तु लौकिककी रूढि करनेसे उस शब्दके उच्चारण मात्रसे ही उस वस्तुका बोध हो जाय, इसलिये इसको रूढ़ि कहा॥

अब तीसरा योगरूढ" शब्दका अर्थ करते हैं कि "पके जायते इति पंकजा" इसका अर्थ ऐसा है कि—पक नाम है कादा (कीच) का उसमें जो उत्पन्न होय उसका नाम पंकज है, सो उस कादामें कौड़ी, शंख सीप, वागल, कमलादि अनेक चीज़ उत्पन्न होती है, सो व्युत्पत्तिसे तो सभोंका नाम पंकज होना चाहिये, परन्तु योगिक और रूढि मिलनेसे, पकज कहनेसे केवल कमलको ही लेते हैं और को नहीं। इसलिये इसको योगारूढ कहा, क्योंकि इसमें यौगिक अर्थात् व्युत्पत्ति और रूढि दोनों मिलकर वस्तुका बोध कराया, इसलिये इसको योगरूढ कहा॥

इसरीतिसे तो व्याकरण आदिसे जो शब्द उच्चारण और भाषा जो कि अनेक देशोंमें अनेक तरहकी बोलियोंसे शब्द उच्चारण होता हैं, सो उन बोलियोंको जिस २ देशकी भाषा उच्चारण होय तिस २ देशके मनुष्य उस भाषाको यथावत समझ सक्ते हैं, सो शब्द मात्र अर्थात् वर्णात्मक उच्चारण करनेसे जो शब्दका बोध होय उसका नाम शब्द है। इस भाषावर्गनाके बोलनेसे ही सांकेतसे जिनमतमें शब्द नय कहते है। सो इस शब्द नयके ही अन्तरगत नामादि चार निक्षेपा हैं, सो वे चारो निक्षेपा वस्तुका स्वधर्म है, जो वस्तुका स्वधर्म न माने तो वस्तु

का यथावत बोध ही न होय, इसलिये चारो निक्षेपा वस्तुका स्व धर्म है।

(प्रश्न) जो तुम निक्षेपाको कहते हो सो वस्तुका स्वधर्म बनता नही, क्योंकि देखो निक्षेपा शब्द जिस धातुसे बनता है उस शब्दका अर्थ दूसरा होता है, कि 'नि' तो उपसर्ग है और 'क्षिप' धातु क्षेपनअर्थ में है। तो इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस रीतिसे होती है कि "निक्षप्तित्ते अनेनस निक्षेपा" इसका अर्थ ऐसा है कि नि के० निश्चय करके क्षेपन किया जाय अन्य वस्तुमें, उसका नाम निक्षेपा है। इसलिये वस्तुका स्वयधर्म नहीं बनता।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इस श्याद्वाद सिद्धान्तका रहस्य अर्थात् प्रयोजन तेरेको न मालूम होनेसे ऐसा विकल्प तेरेको उठा, सो तेरा प्रश्न करना निष्प्रयोजन है, क्योंकि देख जो अर्थ तेंने निक्षेपाका किया सो धातु प्रत्ययसे तो वही अर्थ है, परन्तु इस क्षेपनके दो भेद हैं-एकतो स्वभाविक है, दूसरा कृत्रिम है। सो कृत्रिम अर्थमे तो जो धातुका अर्थ है सो ही बनेगा, परन्तु स्वभाविकमें सांकेतअर्थसे वस्तुका स्वयधर्म ही चारो निक्षेपा है, जो स्वयधर्म वस्तुका न माने तो वस्तुकी ओल-खान अर्थात् पहचान न बने। क्योंकि देखो विना नामके उन पदार्थों को क्योंकर बुलाया जायगा, इसलिये नाम स्वयधर्म है, जो नाम स्वधर्म न होता तो पदार्थोंका जुदा २ कहना ही नहीं बनता, इसलिये नाम वस्तुका स्वयधर्म ठहरा। जब वस्तुका नाम स्वयधर्म ठहरा तो वस्तुका स्थापना भी स्वयधर्म हैं, क्योंकि जिसका नाम है, उसका कुछ आकार भी होगा, जो जिस वस्तुका आकार है वही उस वस्तुकी स्थापना है। इसलिये स्थापना भी वस्तुका स्वय धर्म है। जब स्थापना भी वस्तुका स्वयधर्म ठहरा तो, द्रव्य भी वस्तुका स्वयधर्म होनेमें क्या आश्चर्य है, क्योंकि देखो जिस आकारमें उस वस्तुका गुण, पर्याय अवश्यमेव रहेगा जिस अकारमें गुण पर्याय रहेगा, उसीका नाम द्रव्य है। इसलिये द्रव्य भी वस्तुका स्वयधर्म है। जब वस्तुका द्रव्य भी स्वयधर्म ठहरा तो, भाव स्वयधर्म क्यों न होगा, किन्तु होगा

ही. क्योंकि जब नाम, आकार, द्रव्य, वस्तुका तो मोजूद है, परन्तु उसमें जिस मुख्य लक्षण वा स्वभावसे उसको पहचाना जाय सो ही उसका स्वभाव है। इसलिये स्वभाव भी वस्तुका स्वयधर्म ठहरा। इस रीतिसे चारों निक्षेपा वस्तुका स्वयधर्म है।

सो अब इसको लौकिक द्रष्टान्त भी देकर समझाते हैं कि-किसी पुरुष ने कहाकि 'घट' लाओ। तब उस लानेवालेने 'घट, ऐसा नाम सुना तब वो 'घट, लेनेकोचला, तो जिस कोठारमे 'घट, रक्खा था, उसमें अन्य भी अनेक तरह की वस्तु रक्खी थी, सो उन सर्व वस्तुओंमेंसे उसका आकार देखनेसे प्रतीत हुआ कि कम्बूग्रीवादिकवाला घट, यह है। तब उसका द्रव्य भी देखा कि यह कच्चा है, अथवा पक्का है, लाल है, वा काला है, इनतीनोंके दखनेसे प्रतीत होगया कि यह जल भरने वाला है, इसलियेउसमें जल रक्खा जायगा! यह भावभी उसमें प्रतीत हो गया। इसरीतिसे जो यह घट का नाम, आकार, द्रव्य और भाव स्वयधर्म न होता तो उस कोठारमें सब वस्तु रक्खीहुईमेंसे एक घटको कदापि न लाय सक्ता। इसी रीतिसे जो कोई वस्तु कही से लानी होयतो प्रथम उसका नाम लेगा तो वो वस्तु मिलेगीजब वहवस्तु मिलेगी तो उसका आकार, द्रव्य और भाव देखना ही होगा। इसलिये यह चारो निक्षेपा वस्तुका स्वयधर्म है। जो वस्तुका नामादि स्वयधर्म न होता तो जितने मतवाले है वो उस नामादि लेकरके जुदे २ पदार्थ न कहते। और उनके मतादिक भी न चलते, और सर्व मतावलम्बियोंमें आपसमें वाद विवाद भी न होता। कदाचित् तुम ऐसा कहो कि वेदान्तमतवाला एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं कहता है। तो हम कहते हैं कि ब्रह्म, ऐसा नाम तो वो भी लेता है, तब नामादि चार निक्षेपा वस्तुके स्वयधर्म सिद्ध हो गये॥

॥ अब इन चारो निक्षेपोंका किंचित् वर्णन करते हैं॥

नामनिक्षेप।

प्रथम नामनिक्षेपाको कहते हैं। सो उस नामनिक्षेपाके दो भेद

हैं—एकतो अनादि, स्वाभाविक अकृत्रिम, दूसरा सादी कृत्रिम, सो उस अनादिअकृत्रिमके भी दो भेद हैं— एकतो स्वभाविक, दूसरा संयोग सम्बन्धसे । सो अनादि स्वभाविक तो उसको कहते हैं कि जैसे जिन-मतमें जीव, अजीव । सो जीवका तो चेतना लक्षण ज्ञानमय जो संयोग करके रहित, सिद्ध अथवा संसारीजीव ऐसा नाम । और अजीवमें आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मस्तिकाय और पुद्गलपरमाणु । उस जीव कोही कोई तो आत्मा कहता है । कोई ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है, सो ये स्वभाविक अनादि नाम है ।

अब दूसरा आदि संयोग नामका भेद कहते हैं कि जीवोंके कर्मोंका संयोग अनादि कालसे हो रहा है सो ही दिखाते हैं कि—जीव कर्मके संयोगसे ८४ लाख योनिमें भ्रमण करता है, सो वो ८४ लाख योनि अनादि कालसे है, सो वो संयोग सम्बन्धसे ८४ लाख योनियोंके जुदे २ नाम अनादिसे है । इसरीतिसे अनादिसंयोगसम्बन्धसे नामका वर्णन किया ॥

अब कृत्रिम नामका कथन करते है । सो उसके भी दो भेद हैं— एकतो सांकेतिक, दूसरा आरोपक । सो सांकेतिक तो उसको कहते हैं कि जिस वक्तमे जो मनुष्यादि जन्म लेता है, उस वक्तमें उसके माता, पिता अपनी इच्छानुसार उसका नाम देते हैं और उसी सांकेतिक नामसे उसको सब कोई बुलाते हैं । और उस नामके अनुसार उसमें गुण नहीं होता, इसलिये इसको सांकेतिक कहा । क्योंकि देखो जैसे ग्वालिया लोग गायके चराने वाले अपने पुत्रादिकका 'इन्द्र' नाम रख लेते हैं और वह इन्द्रके ही नामसे बोलता है, परंतु उसमें इन्द्रका गुण कुछ है नहीं ॥

अब दूसरा आरोपका भेद कहते हैं कि—जैसे कितनेक मनुष्य गाय, भैंस आदिकको लायकर लाड़ (प्यार) से उसका नाम रख लेते हैं कि गंगा, जमुना, सो जबतक वह गाय आदि उनके यहां रहती है, तब तक तो वे उसको उसी आरोप नामसे बुलाते हैं, परन्तु जब वे दूसरेको बेचदेते हैं तो वह ले जाने वाला फिर उसको उस नामसे नहीं बुलाता, इसलिये इसको आरोप कहा ।

इसी आरोप के और भी भेद दिखाते हैं—कि जैसे लड़के (बालक) लोग लकड़ी को लेकर दोनों पगों के बीचमें करके आवाज़ देते हैं कि हटजाओ हमारा घोड़ा आता है, ऐसा वचन बोलते हैं, परन्तु उन लड़कोंके पासमे कोई घोड़ेके आकारकी वस्तु अथवा घोड़ेका गुण नहीं, केवल नाम मात्र वचनसे उच्चारण करते हैं, इसलिये वो लकड़ीका टुकड़ा नाम घोड़ा है। अथवा कोई पुरुष काली डोरी रस्तामें गेरकर किसीसे कहे कि सांप है, तो उस सांपका नाम श्रवण करनेसे दूसरे मनुष्यको भय लगता है, परन्तु उस काली डोरीमें सर्पका आकार और गुण कोई नही, परन्तु नाम सर्प होनेहीसे भयका कारण हो गया, इसलिये वो नाम सर्प है। इसरीतिसे नाम निक्षेपाका वर्णन किया॥

स्थापनानिक्षेप।

अब स्थापनानिक्षेपाका वर्णन करते हैं कि—किसीमें किसीका आकार देखकर उसे वस्तु कहे। जैसे चित्राम अथवा काष्ट पाषाणकी मूर्त्ति देखें और उसको हाथी घोड़ा, गाय आदि आकार देखकर उसका नाम लेकर बोले उसका नाम स्थापना है। सो ये स्थापना निक्षेपा नामनिक्षेपा सहित होता है। सो स्थापना दो प्रकारकी होती है—एकतो असद्भुतस्थापना, दूसरी सद्भुतस्थापना, सो पेश्तर असद्भूतस्थापना का अर्थ करते हैं कि—वैष्णवमतमें तो व्याह आदिक कराते हैं तब मट्टी की डली रखकर गणेशजीकी स्थापना करते हैं। और जैनमतमें शंख वा चन्दनकी अथवा गोमतीचक्र आदिककी बिना आकारकी स्थापना रखते हैं। यह असद्भूत स्थापना कही।

अब सद्भुतस्थापना कहते हैं कि—एकतो कृत्रिम, दूसरी अकृत्रिम। अकृत्रिम उसको कहते हैं कि—जैसे नन्दीस्वरद्वीप अथवा देवलोक आदिमें जिनप्रतिमा है, वे किसीकी बनाईहुई नहीं, अर्थात् साश्वती है। कृत्रिम प्रतिमा उसको कहते हैं कि जो किसीने बनाई होय, अथवा जो इस आर्य्यावर्तके देशोंमें सब मन्दिरोंमे स्थापनाकी गई है, वह सब

कृत्रिम प्रतिमा है, इसलिये प्रतिमा माननेयोग्य है। क्योंकि देखो जैसे किसी मकानमें स्त्री आदिका चित्राम होय उस जगह साधू न रहे, क्योंकि उस जगह स्त्रीकी स्थापना है, इसरीतिसे जिनप्रतिमा भी जिनभगवान्‌की स्थापना होनेसे पूजनेके योग्य है, सो इस स्थापनाकी विशेष चर्चा तो हमारा किया हुआ "स्याद्वादअनुभवरत्नाकर में है" उसमें देखो ग्रंथ बढ़जानेके भयसे इस जगह नहीं लिखते हैं, और इसकी चर्चा और भी अनेक ग्रंथोंमें है सो उन ग्रंथोंसे जानो।

द्रव्यनिक्षेप ।

अब द्रव्यनिक्षेपाका वर्णन करते हैं कि—जिसका नाम होय और आकार गुण होय और लक्षण मिले परन्तु आत्मउपयोग न मिले वो द्रव्यनिक्षेपा है। क्योंकि देखो जैसे जीव स्वरूप जाने विना द्रव्य जीव है, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, कि मनुष्यजैसा शरीर आंख, नाक, कान सूरत, शकल लक्षण आदि दीखता है, परतु अकल अर्थात् बुद्धिके न होनेसे उसको लोग कहते हैं कि विना सींग पूंछका पशु है, एक देखने मात्र मनुष्य दीखता है, क्योंकि इसमें बोल, चाल, बैठक, उठक बड़े, छोटे पनेका विवेक न होनेसे पशुके समान है, इसरीतिसे उपयोग के विना जो, वस्तु है सो द्रव्य है, ऐसा शास्त्रोंमें भी कहा है "अणुवउगो दव्व" यह वचन अनुयोगद्वार" सूत्रमें कहा है। और शास्त्रोंमें ऐसाभी कहते हैं कि—पद, अक्षर, मात्रा, शुद्ध उच्चारण करे अथवा सिद्धान्त को वाचे वा पूछे और अर्थ करे और गुरु मुखसे श्रद्धा रक्खे, तौभी निश्चय सत्ता जाने (ओलखे) विना सर्व द्रव्य निक्षेपामें है, इसलिये भाव विना जो द्रव्यका करना है सो सब पुण्यबन्धनका हेतु है, मोक्षका हेतु नहीं, इसलिये जो कोई आत्मस्वरूप जाने विना करणी रूप कष्ट तपस्या करते हैं और जीव, अजीवकी सत्ता नहीं जानते उनके वास्ते भगवती सूत्रमें अवृत्ती, अपच्चखानी कहा है। अथवा जो कोई एकली बाह्यकरनी अर्थात् क्रिया करें है और अपनेमें साधूपनो लोगोंमें कहलावें हैं वो मृषा वादी हैं, क्यों कि श्री उत्तराध्ययन जीमें कहा है कि "नमुनी रण वासेणं"

इसका अर्थ ऐसा है कि-वाह्य क्रियारूप करनी अथवा जंगलमें वास करनेसे ही मुनि अर्थात् साधू नहीं होता, ज्ञानसे साधू होता है। सो श्री उत्तराध्ययनजीमें कहा है यदिउक्त "नाणेनय मुनी होई" इस वचनके कहनेसे मालूम होता है कि ज्ञानी है सो मुनी है, अज्ञानी है सो मिथ्यात्वी है, इसलिये ज्ञान सहित जो क्रियाका करने वाला है सो ही मुनि अर्थात् साधू है। अथवा कोई गणितानुयोगसे नर्क, देवता आदिककी बोल चाल जाने अथवा यति श्रावकका आचार विचार जाने और विवेकशुन्यवुद्धिकी विचक्षणतासे कहे कि हम ज्ञानी हैं सो ज्ञानी नहीं, श्रीउत्तराध्ययनजीमोक्षमार्गअध्ययनमें कहा है "एयं पंचविहनाण द्व्वाणय गुणाणय पज्जवाणयसथे सिंनाणं नाणी हिदं सियं" इसरीतिसे जबतक द्रव्य, गुण, पर्यायको न जाने और जीव अजीवकी सत्ताको जाने विना ज्ञानी नही है। ज्ञानी वही है जो कि नवतत्वको जाने सो समगती है, क्योंकि ज्ञान,दर्शन विना जो कहे कि वाह्यरूप क्रिया करनेसे चारित्रिया अर्थात् साधू बने सो भी मृषा वादी अर्थात् झूठा है, क्योंकि श्रीउत्तराध्ययनजी में कहा है कि "नाणं मिदंसनिस्स नाण णणेन पिणान हुन्ति चरणा गुणा नत्थि अगुणी यस्स मुक्खो नत्थिअमोक्खस्स निव्वाणं" इस बचनके कहने से जो कोई ज्ञान हीन क्रियाका आडम्बर दिखायकर भोले जीवोंको अपने जालमें फसाते हैं सो जिनाज्ञाके चोर महाठग हैं। उन ठगोंका संग आत्मार्थी भव्य जीवको न करना चाहिये, क्योंकि यह वाह्य रूप करनी (क्रिया) अभव्य भी करे है। इसलिये इस वाह्यरूपक्रिया को देखकर उसके मिथ्या जालमें न फसना, क्योंकि आत्मस्वरूपको जाने विना समायिक पड़िकमणा, पच्चखान, आदि द्रव्यनिक्षेपामें पुण्यबन्ध अर्थात् पुण्य आश्रव हैं, सम्बर नहीं। क्योंकि श्रीभगवती सूत्रमें कहा है कि "आया खलु सामाइयं" इस आलावे अर्थात इस सूत्र से जान लेना। क्योंकि जीव स्वरूप जाने विना तप, संयम, क्रिया आदिक का करना केवल पुण्यप्रकृती देवभव, अर्थात् देवता होनेका कारण है, मोक्षका कारण नहीं। यदिउक्त श्री भगवतीसूत्रे "पुव्वा तवेणं पुव्व संय

मेणं देवलोए उववज्जति नो चेवणं आयं भाव वत्तव्व याए" इस लिये यह तप, संयम-वाह्यरूप ज्ञान विना पुण्यवन्धन का हेतु है। अथवा कितने ही लोग क्रियालोपी अर्थात् आचार करके हीन हैं और ज्ञान करके हीन हैं और गच्छकी लज्जा (शर्म) से सूत्र पढ़ते हैं और वांचते हैं अथवा उसी शर्म से वृत पच्चखानादि करते हैं, वे पुरुष भी द्रव्यनिक्षेपामें है। क्योंकि श्री अनुयोगद्वार सूत्र मे ऐसा कहा है कि

"ज्जे इमे समण गुण मुक्क जोगी छकाय निरणूकम्पाहया इव उद्या इव निरंकुशा घट्ठामट्ठानुप्योट्ठा पंडूरण उरणा जिणाणं आणारहिय छन्दविहरिउणउभडंकाल आवस्स गस्स उवदं तितंलो गुत्तरियं दव्वा वस्सियं"

इसका अर्थ करते हैं कि–जिन पुरुषों को छः काय के जीवों की दया नही है, वह अश्व (घोड़ा) की तरह उन्मत हैं। अथवा हाथीकी तरह निरांकुश है, और अपने शरीरको खूब धोना, मसलना, सावून लगाना, और अच्छे २ सफेद कपड़ा धोवी से धुलायकर पहनना अच्छी तरहसे शरीरका शृङ्गार करते हैं, और गच्छके ममत्वभाव में फसे हुए स्वइच्छाचारी वीतरागकी आज्ञाको भांजते (छोड़ते) हुए जो कोई तपस्याआदि क्रिया करते हैं सो सव द्रव्यनिक्षेपा में है। अथवा ज्योतिप अर्थात टेवा जन्मपत्री वा वर्ष वनाते हैं, ग्रह गोचर वताते हैं, और वैद्यक अर्थात नाड़ी का देखना औपध दवा करते हैं, और अपनेको आचार्य्य, उपाध्याय, अथवा यति कहलातेहैं, और लोगोंकेपासमें अपनी महिमाकराते हैं वे लोग पत्रीवंध (तांवेके रुपया पर झोल फिरा हुआ) खोटे रुपयाके समान है, और घना संसारमें भ्रमण अर्थात् जन्म मरण करनेवाले हैं। इसलिये वे लोग अवन्दनीक हैं। क्योंकि श्री उत्तराध्ययमजीके अनाथीअध्ययनमें विस्तारपूर्वक लिखा है वहासे जानो।

और जो कोई सूत्रका अर्थ गुरुमुखसे सीखे विना और नय, निक्षेप, प्रमाण, जाने विना अथवा निश्चय आत्मस्वरूप जाने विना और निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, विना उपदेश देते हैं, वे लोग आप तो संसारमें डुवते हैं और दूसरोंको भी डुबाते हैं, क्योंकि जो उनके पासमें बैठता हैं सो ही डूबता है। इसलिये उनका संग न करना, क्योंकि जव तक निर्युक्ति आदि अथवा व्याकरणके शब्द न जाने वो उपदेश न देय। क्योंकि श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र और अनुयोग-द्वारसूत्रमें ऐसा कहा है कि "अज्झत्थं चेव सोलसम" इत्यादिक। जव तक सोलह वचन नहीं जाने, तबतक उपदेश नहीं देवे, अथवा पंचांगी समझे विना भी उपदेश न देवे, यदुक्तं श्री भगवतीसूत्रे :—

"सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निउत्तिमीसओ भणिओ।
इत्तो तईयणुओगो नाणुन्नाओ जिणवरेहिं" ॥१॥

इसरीतिसे कहा है तो फिर पंचांगीके बिना भी उपदेश देना मिथ्या बात है, इसलिये पचागीको मानना अवश्यमेव चाहिए।

अव यहां कोई विवेकशून्य बुद्धिविचक्षण होकर बोले कि हम सूत्रके ऊपर अर्थ करते हैं तो फिर निर्युक्ति और टीकाका क्या काम है? ऐसा कहनेवाला पुरुष भी महामूर्ख और मिथ्यावादी है। क्योंकि श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र में ऐसा कहा है कि "वयणतियं लिंगतियं" इत्यादि जाने विना और नयनिक्षेपा जाने विना जो उपदेश देते हैं वे अवश्यमेव मृषा अर्थात् झूठ बोलते हैं। ऐसा अनेक सूत्रोंमें कहा है। इसलिये बहुश्रुत अर्थात् पण्डितके पासमें उपदेश सुनें। ऐसा श्रीउत्तराध्ययनजी मे कहा है कि बहुश्रुत मेरू, अथवा समुद्र, वा कल्पवृक्ष के समान हैं। इसलिये आत्मार्थी भव्यजीव बहुश्रुतोंके पासमें उपदेश सुने। कपटी, वाचाल, मूर्ख, धूर्तोंके पासमें न जाय। इस जगह इस द्रव्यनिक्षेपा की चर्चा तो बहुत है, परन्तु ग्रन्थके बढ जानेके भयसे नहीं लिखते हैं।

इस द्रव्यनिक्षेपाके भेद दिखाते हैं। इस द्रव्यनिक्षेपाके दो भेद हैं—एक तो आगमसे द्रव्यनिक्षेपा, दूसरा नोआगमसे द्रव्यनिक्षेपा।

सो आगमसे द्रव्यनिक्षेपा तो उसको कहते हैं कि जैसे जिनागम अथवा व्याकरण आदि सूत्र तो पढ़ लिया और उसका भावार्थ अर्थात् तात्पर्य्य न जाना, अथवा देशना अर्थात् दूसरोंको उपदेश दे रहा है, परन्तु अपनेमें उस उपदेशका उपयोग नहीं, इसरीतिसे इसके भी बुद्धिमान अपेक्षासे अनेक भेद कह सक्ता है। और जिज्ञासुको भी समझाय सक्ता है।

दूसरा भेद नोआगम करके द्रव्यनिक्षेपा है, उसके तीन भेद हैं। एक तो ज्ञशरीर (देह), दूसरा भव्यशरीर, तीसरा तद्व्यतिरिक्त। सो ज्ञशरीर द्रव्यनिक्षेपा इस रीतिसे है कि—जैसे तीर्थंकर आदिकों का जिस वक्तमें निर्वाण होय उस वक्तमें वो तीर्थंकरोका जीव तो सिद्धक्षेत्रमें पहुंचे और वह शरीर जब तक अग्निसंस्कार न होय तब तक ज्ञशरीर है। अथवा किसी मट्टीके वर्त्तनमें घी आदिक रखा होय फिर वो घी तो उसमेंसे निट जाय अर्थात् न रहे तब उसको घीका वर्त्तन बोले तो वो भी वर्त्तन घीका ज्ञवर्त्तन है। अथवा कोई भव्य जीव देवका स्वरूप अथवा अपना आत्मअनुभव स्वरूप जानता होय और वह शरीर छोड़कर जीव तो दूसरे भवमें जाय और वह शरीर पड़ा रहे, उसको भी ज्ञशरीर-द्रव्यनिक्षेपा कहेंगे।

इसरीतिसे जिस जीव वा अजीव अथवा देवता, नारकी, मनुष्य, तिर्यंच आदिमें इस द्रव्यनिक्षेपा-ज्ञशरीरको बुद्धिमान स्याद्वाद-सिद्धान्तके रहस्य जाननेवाले गुरूचरणसेवी आत्मअनुभवके रसीया घटाय सक्ते हैं। और फिर इस ज्ञशरीर-द्रव्यनिक्षेपाको क्षेत्रसे और कालसे भी उतारते हैं। सोभी दिखाते हैं कि— जैसे श्री ऋषभ देवस्वामी अष्टापदजी पहाडके ऊपर मोक्ष पधारे थे। सो उस क्षेत्रमें जब तक उसका शरीर को अग्निसंस्कार न हुआ तबतक उस क्षेत्रको अपेक्षासे उस क्षेत्रमें ऋषभदेवस्वामीका द्रव्यज्ञशरीर है। ऐसे ही श्रीमहावीरस्वामीका पावापुरी क्षेत्रमें निर्वाण हुआ था और उस जगह जबतक भगवतके शरीरका अग्नि संस्कार न हुआ तबतक पावापुरी

क्षेत्रमें कह सक्ते हैं कि श्री महावीरस्वामीका पावापुरीक्षेत्रमें द्रव्य-ज्ञशरीर है।

इस रीतिसे जिस चीज़के ऊपर क्षेत्रअपेक्षासे उतारे उसके ऊपर ही उतर सक्ते हैं। परन्तु अपेक्षा रख करके, न तु निरपेक्षासे।

ऐसे ही कालके ऊपर कि—जिस वक्तमें श्रीऋषभदेवस्वामीका निर्वाण हुआ उस कालको श्री ऋषभदेव स्वामीके शरीरके संग लगावें। उसको काल अपेक्षासे ज्ञशरीर कहेंगे। सो यह कालका भी ज्ञशरीर हरएक वस्तुके ऊपर उतरता है, इसरीतिसे ज्ञशरीर द्रव्यनिक्षेपा कहा।

अब भव्यशरीर-द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं कि—जब तीर्थंकर महाराज माताके पेटमेंसे जन्म लेकर बाल अवस्थामें रहते थे उनका जो शरीर था उसको भव्यशरीर-द्रव्यनिक्षेपा कहते थे। अथवा किसी भव्यजीवको बालअवस्थामें किसी आचार्यने ज्ञानसे देखा कि यह भव्यशरीर कुछ दिनके बाद भाव करके देवका स्वरूप जानेगा, उसको भी भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं। अथवा किसी शख्सने अच्छी मट्टीकी हाडी पुख्ता देखकर कहा कि इसमें मधु (शहद) अच्छी तरहसे रक्खा जायगा, इसलिये इस हाड़ीको मधु रखनेके वास्ते जावता (जतन) से रखना चाहिये, तो उस हांड़ीको मधुकी भव्य-द्रव्य-हांडी कहेंगे। अथवा किसी घोड़ा वा हाथीको छोटासा देखकर उसके चिन्होंसे बुद्धिमान विचार करते हैं कि कुछ दिनके बाद यह घोड़ा वा हाथी सवारीके वास्ते बहुत उम्दा (अच्छा) होगा, उसको भी द्रव्यभव्य शरीर कहेंगे। सो ये भी भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपा हरेक वस्तुके ऊपर उतरता है। और क्षेत्र, काल करके भी यह भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपा उतरता है सो ज्ञ-शरीरमें जो रीति कही है उसी रीतिसे बुद्धिमान जान लेवें।

तीसरा तद्व्यतिरिक्त द्रव्यनिक्षेपाके अनेक भेद हैं, सो उन अनेक भेदोंको जो इस द्रव्यानुयोगके जाननेवाले अनेक रीति, अनेक अपेक्षासे जिज्ञासुको समझाय सक्ते हैं, इसरीतिसे द्रव्यनिक्षेपा कहा।

भावनिक्षेप ।

अब भावनिक्षेपा कहते हैं कि-जिसका नाम, आकार और लक्षण गुण-सहित वस्तुमें मिले उस वक्तमें भावनिक्षेपा होय, क्योंकि अनुयोगद्वारसूत्रमें कहा है कि-"उवओगो भाव"। इसलिये पूजा, दान, तप, शील, क्रिया, ज्ञान सर्व भाव निक्षेपा सहित होय तो लाभकारी है।

इस जगह कोई विवेकशून्य बुद्धिविचक्षण ऐसा कहे कि मनपरिणाम दृढ़ करके करे उसीका नाम भाव है। ऐसा जो कोई कहता है वह सुखकी वांछाका अभिलाषी है, क्योंकि मिथ्यात्वी भी सुखकी वांछाके वास्ते मनको दृढ़ करके करते हैं, तो वह मनका दृढ़ करना सो भाव नहीं, इस जगह तो सूत्र अनुसार विधी और वीतराग की आज्ञामें हेय और उपादेय कहा है। उसकी परीक्षा करके अजीव आश्रव, बन्ध के उपर हेय—त्याग भाव, और जीवका स्वगुण सम्वर, निर्जरा, मोक्ष, उपादेय अर्थात् ग्रहण करने का भाव। और रूपी गुण है तिसको द्रव्य जानकर छोडे, जैसे मन, वचन, काय, लेश्यादिक सर्व पुद्गलीक रूपी गुण जानकर छोड़े। और ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य्य, ध्यान प्रमुख जीवका गुण सर्व अरूपी जानकर ग्रहण करे, उसका नाम भावनिक्षेपा हैं, इस रीतिसे यह चार निक्षेपा कहे।

यह चारों निक्षेपा वस्तुका स्वधर्म है। सो हरेक वस्तुमें इस स्याद्वादसिद्धान्त के जाननेवाले अनेक रीति से अनेक निक्षेपा उतारते हैं। श्री अनुयोगद्वारजीमें ऐसा कहा है कि:—

"जत्थ य जं जाणिज्जा निक्खेवे निक्खिवै निरवसेसं।
जत्थ य नो जाणिज्जा चोक्कयं निक्खवे तत्थं" ॥१॥

इस रीति से निक्षेपा के अनेक भेद हैं, परन्तु अनेक भेद न आवें तौभी यह चार निक्षेपा वस्तु का स्वधर्म अवश्यमेव उतारे। और सूत्र में ४२ भेद निपेक्षा के कहे हैं। और फिर ऐसा कहा है कि जो

बुद्धिमान होय सो अपेक्षासे जितनी बुद्धि पहुंचे उतने ही निक्षेपाके भेद करे। क्योंकि देखो इन चारो निक्षेपाके सोलह (१६) भेद होजाते हैं सो भी दिखाते हैं। प्रथम नामनिक्षेप के ही चार भेद हैं, एक तो नामका नाम, दूसरा नामकी स्थापना, तीसरा नामका द्रव्य, चौथा नामका भाव। इसरीतिसे जो इस स्याद्वादसिद्धान्तके जाननेवाले, गुरु चरणसेवी, आत्मअनुभवसे षट्द्रव्य के विचार करनेवाले, आप जानते हैं और दूसरे जिज्ञासुओंको समझाते हैं, न कि दुखगर्भित, मोह गर्भित वैराग्यवाले भेषधारी जैनीनाम धरानेवाले। सो यह निक्षेपा बुद्धि अनुसार अनेक रीतिसे होते हैं और अनेक चीजके ऊपर उतरते हैं। परन्तु इस जगह ग्रन्थ बढजानेके भयसे किसी पर उतार कर न दिखाया, केवल जो मुख्य प्रयोजन था सो ही लिखाया है, सो मैंने भी किंचित भेद दिखाया है। और जो बुद्धिमान होय सो और भी भेद कर लें। इसरीति से चार निक्षेपा पूर्ण करके शब्द-नय कहा।

६ समभिरूढ नय।

अब समभिरूढ नय कहते हैं कि–जिस वस्तुका कितना ही गुण तो प्रगट हुआ है और कितनाही नहीं हुआ, परन्तु जो गुण प्रगट नहीं हुआ है सो गुण अवश्यमेव प्रगट होगा, इस लिये उस वस्तुको सम्पूर्ण माने। क्योंकि देखो जैसे केवलज्ञानी १३ वें गुणठानेवालेको सिद्ध कहे और १३ वें गुणठानेवाला सिद्ध है नहीं, किन्तु शरीर-समेत है, परन्तु आयुकर्म क्षय होने से अवश्यमेव सिद्ध होगा, इसलिये उसको सिद्ध कहा. क्योंकि यह समभिरूढनयवाला एक अंश ओछी वस्तु को भी सम्पूर्ण वस्तु कहे, इस रीतिसे समभिरूढनय कहा।

७ एवंभूत नय।

अब एवंभूत नय कहते हैं कि-जो वस्तु अपने गुणमें सम्पूर्ण होय और अपने गुणकी यथावत् क्रिया करे, उसीको पूर्ण वस्तु कहे, क्योंकि देखो मोक्ष स्थान पहुंचे हुए जीवकोही सिद्ध कहे, अथवा स्त्री पानीका

घड़ा भरकर सिरके ऊपर लाती है, उस वक्तमें घट अथवा घड़ा कहे, अन्यथा रक्खे हुए को घड़ा न कहे। इस लिये जो वस्तु अपने गुणक्रियामें यथावत् प्रवृत्त है, उस वक्त उसको वस्तु कहे, इस रीतिसे एवंभूत नय कहा।

इन सातो नयका किंचित् वर्णन किया है और विशेषावश्यक ग्रंथमें इन सातो नयके बावन (५२) भेद कहे हैं सो भी दिखाते हैं। नैगमनयके (१०) भेद, संग्रहनयके (१२) भेद, व्यवहारनयके (४) भेद, ऋजुसूत्रनयके (६) भेद, शब्दनयके (७) भेद, समभिरूढनयके (२) भेद और एवंभूतनयका (१) भेद।

स्याद्वाद-रत्नाकर-अवतारिकामें भी नयका स्वरूप विस्तारपूर्वक कहा है, परन्तु वो ग्रंथ मेरे पास है नहीं, तोभी किंचित् नयका भावार्थ दिखाते हैं–कि नय किसको कहना और इस नय कहनेका प्रयोजन क्या है। सोही दिखाते हैं-कि वस्तुमें अनेक धर्म है सो विना नयके कहनेमें न आवे, इसलिये नय कहनेका प्रयोजन है, सो नय उसको कहते हैं कि-जिस अंशको लेकर वस्तु कहे, उस अंशको मुख्यता, और दूसरे अंशोंसे उदासीनपना रहे। परन्तु जो मुख्य अंश लेकर कहे और दूसरे अंशका निषेध न करे उसका नाम तो सुनय (अच्छा) और जो जिस अंशको लेकर कहे उस अंशको मुख्यता करके स्थापे और दूसरे अंशोंको न गिने, उसको नयाभास कहते हैं। और जो जिस अंशको मुख्यपने लेकर प्रतिपादन करे और दूसरे अशोंको निषेध अर्थात् विलकुल उत्थापे, उसको दुर्नय कहते हैं। इस वास्ते वस्तुका अनेक धर्म कहनेके वास्ते नय कहा है। सो इन नयों का स्वरूप यथावत् तो स्याद्वाद-सिद्धान्त अर्थात् जिनमतमें ही है। और मतावलम्बियों में नहीं। उनमें नयाभास, और दुर्नयका कथनहै। सो सर्व मतावलम्बि जो चार सुनय है उन्हीं चार नयोंके आभास और दुर्नयमें अन्तर्गत है। सो इन सातो नयके दो भेद हैं–एक तो द्रव्यार्थिक, दूसरा पर्यायार्थिक। सो द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिकके भेद तो हम पीछे कह चुके हैं, इस रीतिसे किंचित् भेद कहा।

अब इन सातो नयमें किस नयका विषय बहुत और किस नयका विषय थोड़ा है सो भी दिखाते हैं कि-सबसे ज्यास्ती विषय नैगमनय का है, क्योंकि नैगमनय भाव, अथवा संकल्प अथवा अभाव, आरोपादि सबको ग्रहण करता है इसलिये इसका विषय बहुत है।

इस नैगमनयसे संग्रहनयका विषय थोडा, है क्योंकि एक सत्ता रूप सामान्यविशेषको ग्रहण करे, इस लिये नैगम से थोड़ा विषय है।

और संग्रह नयसे व्यवहारनयका विषय थोडा है, क्योंकि संग्रहनय तो सामान्य, विशेष दोनोंको ग्रहण करता था, और व्यवहारनय केवल विशेष—बाह्य दीखते हुएको ग्रहण करे। इसलिये संग्रह नयसे व्यवहार नयका विषय थोड़ा है।

और व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका विषय अल्प अर्थात् थोड़ा है, क्योंकि व्यवहारनय तो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीन काल को अंगीकार करता है, और ऋजुसूत्रनय एक वर्त्तमानकाल को ही ग्रहण करे, इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय थोडा है।

और ऋजुसूत्रसे शब्दनयका विषय थोड़ा है, क्योंकि ऋजुसूत्रनयवाला तो लिंगादि का भेद करे नही, और शब्दनय लिंगादिक से अर्थका भेद कहे, इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय बहुत और शब्दनयका विषय थोडा है।

और शब्द नयसे समभिरूढनय का विषय थोड़ा, क्योंकि शब्दनय तो लिगादि भेदसे अर्थ भेद करे, परन्तु पर्यायवाची शब्दसे अर्थ भेद न करे, और समभिरूढ़नयवाला पर्याय शब्दका भी अर्थ भेद करे, इसलिये शब्द-नयका विषय बहुत और समभिरूढनयका विषय थोड़ा है।

और समभिरूढनयसे भी एवंभूतनयका विषय थोड़ा है, क्योंकि देखो समभिरूढनयवाला तो अर्थ के भेदसे वस्तुमें भेद माने, और उस शब्दमें जैसा अर्थ होय तैसा वस्तुका स्वरूप माने, परन्तु एवंभूतनयवाला तो अर्थ से वस्तुको माने नहीं, जिस वक्तमें जो वस्तु अपनी यथावत् क्रिया करे उस वक्तमें उस वस्तुको क्रिया सहित देखकर वस्तु कहे, इसलिये इस एवंभूतनय का विषय सबसे थोड़ा है। इस रीतिसे नय का स्वरूप कहा।

अब इन सातों नयों को जिस रीतिसे "श्री अनुयोग द्वार सूत्र" में दृष्टान्त देकर उतारा है उसी रीतिसे उतार कर दिखाते हैं कि-एक पुरुष ने दूसरे पुरुषसे पूछा कि तुम कहां रहते हो ? तब वह बोला कि मैं लोक में रहता हूं। तब उसने कहा कि भाई लोकके तीन भेद हैं-एक तो अधो (नीचा) लोक, दूसरा ऊर्ध्व (ऊंचा) लोक, तीसरा तिरछा अर्थात् मध्य लोक, इसलिये इन तीनोंमें से तू किस लोकमें रहता है ? तब वह बोला कि तिरछे अर्थात् मध्यलोक में रहता हू । फिर उसने पूछा कि भाई! मध्यलोकमें तो असख्याते द्वीप, समुद्र हैं तूं किस द्वीपमें रहता है ? तब वह बोला कि मैं जम्बूद्वीपमें रहता हूं। फिर उसने पूछा कि भाई जम्बूद्वीपमें क्षेत्र बहुत हैं तूं किस क्षेत्रमें रहता है ? तब वह बोला कि मैं भरतक्षेत्रमें रहता हूं। फिर उसने पूछा कि भाई भरतक्षेत्रमें तो देश बहुत हैं, तूं किस देशमें रहता है ? तब उसने कहा कि मैं अमुक देशमें रहता हूं। फिर उसने पूछा कि भाई! उसदेशमें तो ग्राम, नगर बहुत हैं तूं किस गांव या नगर में रहता है ? तब उसने कहा कि मैं अमुक नगरमें रहता हूं। फिर उसने पूछा कि भाई! उस नगरमें तो मुहल्ला (वाड़े) अथवा ग्वाड (वास) इत्यादिक होते हैं तूं किस मुहल्लामें रहता है ? तब उसने कहा कि मैं अमुक मुहल्ला में रहता हूं। फिर उसने पूछा कि भाई उस मुहल्लामें तो घर बहुत हैं तूं किस घरमें रहता है ? तब वह बोला कि मैं अमुक घरमें रहता हूं। यहां तक तो नैगमनय जानना।

अब संग्रहनयवाला बोला कि तूं कहां रहे है ? तब वो बोला कि मैं अपने शरीर में रहता हूं। तब व्यवहार नयवाला कहने लगा कि मैं अपने बिछौना(आसन)पर बैठा हूं इस जगह रहता हूं। तब ऋजुसूत्रनयवाला बोला कि मैं अपने असंख्यात प्रदेशमें रहता हूं। तब शब्दनयवाला बोला कि मैं अपने स्वभावमें रहता हूं। तब समभिरूढ़नयवाला बोला कि मैं अपने गुणमें रहता हूं। तब एवभूत नयवाला बोला कि मैं अपने ज्ञान, दर्शनमें रहता हूं। इस रीतिसे (७) नयके ऊपर दृष्टान्त कहा।

(प्रश्न) आपने जो सातो (७) नय उतारा जिसमें ऋजुसूत्रनय तक तो जुदा २ अंश प्रतीत हुआ, परन्तु शब्द, समभिरूढ, एवंभूतनयमें जो

कहा कि स्वभाव, गुण और ज्ञान दर्शन, ऐसा कहा, सो इनमें किसी तरह का फर्क तो नहीं मालूम होता हैं, क्योंकि देखो जो स्वभाव है सो ही गुण है, और जो गुण है सोही स्वभाव है, इसलिये ये दोनों एक ही है। तीसरा गुण हैं सोही ज्ञान, दर्शन है और ज्ञान, दर्शन वही जीवका गुण है। इसलिये इस एक वस्तुको तीन जगह भिन्न २ कहना युक्तिके बाहर और पीसेका पीसना है।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय! इस स्याद्वादसिद्धांत श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव की वाणीका रहस्य समझनेवाले अथवा समझानेवाले बहुत थोड़े हैं और तेरेको इस द्रव्यानुयोगका यथावत् गुरुसे उपदेश न हुआ, केवल छापेकी पुस्तकसे बांचा और पीसेका पीसना कह दिया और तीनोंको एकही समझ कर अभिप्राय विना जाने प्रश्न उठा दिया। सो अब तेरेको इन तीनों शब्दोको जुदा २ कहनेका और स्याद्वादसिद्धान्त का रहस्य सुनाते हैं कि— जो शब्दनयवाला कहता है कि मैं अपने स्वभाव में रहता हूं सो उसका अभिप्राय यह है कि विभाव को छोड़ कर केवल स्वभावको अङ्गीकार किया, तो उस स्वभाव में अनन्त गुण पर्याय आदि हैं सो सबको समुच्चय (शामिल, इकट्ठा) किया। तब समभिरूढनयवाला बोला कि भाई! तू सबको शामिल लेता है, परन्तु जो वस्तु में अनेक गुण हैं उनके अनेक स्वभाव हैं इस लिये उसने गुणको अंगीकार किया, क्योंकि समभिरूढ़वाला जिस शब्दका अर्थ हो उसको ही मानता है सोही दिखलाते हैं कि जैसे अव्याबाध गुण कहा तो अव्याबाधगुणका अर्थ होता है कि नही है बाधा अर्थात् दुख जिसमें, उसका नाम अव्याबाध है। तैसे ही निरंजनगुण है उसका अर्थ होता है कि नहीं है अंजन अर्थात् मलरूपी मेल जिसमें उसका नाम निरंजन है। ऐसे ही अलख शब्दका अर्थ होता है कि न लखा अर्थात् किसी इन्द्रिय करके देखनेमें न आवे उसका नाम अलख हैं, इस रीति से अनेक गुण हैं। सो उन अनेक गुणोंके अनेक रीतिकी व्युत्पत्तिसे अर्थ होता है, इस अभिप्राय से समभिरूढनयवालेने कहा किमें गुणमें रहूं हूं। इस अभिप्रायसे स्वभाव से जुदा छांटकर गुणको अङ्गीकार किया। तब एवंभूतनयवाला कहने

लगा कि गुण तो अनेक हैं परन्तु सर्व गुणोंमें मुख्य ज्ञान, दर्शन-स्वयं प्रकाश है, इसलिये एवंभूतनयवाला कहने लगा कि मैं ज्ञान दर्शनमें रहूं हूं। क्योंकि ज्ञानसेही सब कुछ जाना जाता है, विना ज्ञानके कुछ मालूम नहीं होता, इसलिये ज्ञान दर्शनको ही मुख्य मानकर उसमें बसना कहा। इस अभिप्राय से इन तीनों नयवालोंने अपने अभिप्राय से जुदा २ कहा। क्योंकि पीछे हम नयके अभिप्रायमें कह आयेहैं कि-नय है सो एक अंशको लेकर अन्य अंशोंसे उदासपने रहे और उन अंशोंको निषेध न करे उसी का नाम नय है। इस अभिप्रायसे तीनोंको एक कहना नहीं बनता, किन्तु जुदा २ प्रयोजन है। इस रीतिसे सिद्धान्तके रहस्य को जान, सद्गुरुके उपदेशको मान, मतकर खैंचातान, जिससे होय तेरा कल्यान, भगवनकी धरो सिरपर आन, जिससे होय तेरेको जिनमतका यथावत् ज्ञान, तिससे अध्यात्म रसका करे तूं पान, इस रीतिसे सद्गुरुके वचनोंको मान, जिससे उगे तेरे हृदय कमल में भान। इस रीतिसे मेरी बुद्धि अनुसार किंचित् अभिप्राय कहा।

अब एक प्रदेशको अंगीकार करके सात(७)नय उतारे हैं कि कोई पुरुष एक प्रदेश मात्र क्षेत्रको अंगीकार करके पूछने लगा कि यह प्रदेश किसका है? उस वक्त नैगमनयवाला कहने लगा कि यह प्रदेश छओं द्रव्य का है, क्योंकि एक आकाश प्रदेशमें छओ द्रव्य रहते हैं, इसलिये छओ द्रव्य इकट्ठे हैं। तब संग्रहनयवाला कहने लगा कि काल तो अप्रदेशी है, क्योंकि सर्व लोकमें काल एक समय वर्त्ते है सो आकाश प्रदेशमें जुदा २ नहीं, इसलिये पांचका है छः का नहीं। तब व्यवहार नयवाला कहने लगा कि जिस द्रव्यका मुख्य प्रदेश दीखे उसी द्रव्यका प्रदेश है, इसलिये सब द्रव्योंका नहीं। तब ऋजुसूत्र-नयवाला कहने लगा-कि जिस द्रव्यका उपयोग दे करके पूछे, उसी द्रव्यका प्रदेश है, क्योंकि जो धर्मास्तिकायका उपयोग देकरके पूछे तो धर्मास्तिकायका प्रदेश है, अथवा अधर्मास्तिकायका उपयोग देकर पूछे तो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश कहे। तब शब्द नयवाला बोला कि-जिस द्रव्यका नाम लेकर पूछे उसी द्रव्यका प्रदेश कहना। तब समभिरूढनयवाला कहने

लगा कि एक आकाश-प्रदेश में धर्मास्तिकायका एक प्रदेश, और अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश, जीवका असंख्यात प्रदेश पुद्गलपरमाणु अनन्ता है। तब एवंभूतनय वाला कहने लगा कि जिस प्रदेशमें जिस द्रव्यकी क्रिया गुण करता हुआ दीखे तिस समय तिस द्रव्यका प्रदेश में है, इसरीतिसे प्रदेशमें ७ नय कहें।

अब जीवमें ७ नय कहते हैं कि-नैगमनयवाला ऐसा कहता है कि गुण, पर्याय और शरीर सहित संसारमें है सो सर्वजीव है। इस नयवालेने पुद्गलद्रव्य, अथवा धर्मास्तिकाय आदिक सर्व जीवमें गिना। तब संग्रहनयवाला बोला कि असंख्यात प्रदेशवाला जीव है। तब व्यवहारनयवाला कहने लगा कि जो विषय लेवे, अथवा कामादिककी चिन्ता करे, पुण्यकी क्रिया करे सो जीव। इस व्यवहारनयवालेने धर्मास्तिकाय आदि और सर्व पुद्गलआदि छोड़ा, परन्तु पांच इन्द्रियाँ, मन, लेश्या आदि सूक्ष्म पुद्गल शामिल लिया, क्योंकि विषय आदिक इन्द्रियाँ लेती है, इसलिये थोड़ासा पुद्गल शामिल लेकर जीव कहा। तब ऋजुसूत्र वाला कहने लगा कि उपयोग वाला है सो जीव। इस नयवालेने इन्द्रिय आदिक पुद्गल तो न लिया, परन्तु ज्ञान अज्ञानका भेद न किया। तब शब्द नयवाला कहने लगा कि-नामजीव, स्थापनाजीव, द्रव्यजीव, और भावजीव। इस नयमें गुणी निर्गुणीका भेद न हुआ। तब समभिरूढनय वाला कहने लगा कि जो ज्ञानादिक गुणवाला है सो जीव है। इस नयवालेने मतिज्ञान और श्रुतिज्ञान जो साधक अवस्थाका गुण है सो सर्व जीवमें शामिल किया। तब एवंभूत नयवाला कहने लगा कि जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य्य, शुद्ध सत्तावाला है सो जीव है। इस नय वालेने जो सिद्ध अवस्थामें गुण हैं उस गुण वालेको ही जीव कहा, इसरीतिसे जीव ७ नय कहा।

अब धर्ममें ७ नय उतार कर दिखाते हैं कि नैगम नयवाला बोला कि सर्व धर्म है, क्योंकि धर्मकी इच्छा सब कोई रखता हैं इसलिये सर्व धर्म है। तब सग्रहनयवाला कहने लगा कि-जो बड़े (बुजुर्ग) अथवा अपनी कुल जातिकी मर्यादासे बाप दादे करते आये,

हैं सो ही धर्म हैं। इस नयवालेने अनाचार छोड़ा, परन्तु कुल आचारको अंगीकार किया। तब व्यवहारनयवाला कहने लगा कि जो सुखका कारण सो धर्म है। इस नयवालेने पुण्य करनीमें धर्म कहा। तब ऋजु-सूत्रनयवाला बोला कि उपयोग सहित वैराग्यरूप परिणाम सो धर्म है। इस नयवालेने यथाप्रवृत्ति-करणका परिणाम सर्व धर्ममें लिया, सो ऐसा वैराग्य रूप परिणाम तो मिथ्यात्वीका भी होता है। तब शब्द नयवाला बोला कि जिसको सम्यक्त्वकी प्राप्ति है सो धर्म है, क्योंकि धर्मका मूल सम्यक्त्व है। तब समभिरूढनयवाला कहने लगा कि जीव अजीव और नव तत्व अथवा छः (६) द्रव्यको जानकर अजीवका त्याग करे, एक जीव सत्ताको ग्रहण करे, ऐसा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र सहित परिणाम वह धर्म है। इस नयवालेने साधक और सिद्ध परिणाम धर्ममें लिया। तब एवंभूतनयवाला कहने लगा कि जो शुक्ल ध्यान और रूपातीत परिणाम, क्षपकश्रेणी, कर्म क्षय करनेका कारण (हेतु) है, सो धर्म, क्योंकि जो जीवका मूल स्वभाव है सो धर्म है, उस धर्मसे ही मोक्ष रूपी कार्य्यकी सिद्धि होती है, इसलिये जीवका जो स्वभाव सो धर्म है। इसरीतिसे जीवमें (७) नय कहे।

अब सिद्ध में ७ नय कहते हैं—नैगमनयवालो सर्व जीवको सिद्ध कहता है, क्योंकि सर्व जीवके ८ रुचकप्रदेश, सिद्धके समान हैं, उन आठ रुचकप्रदेशों को कदापि कर्म नही लगता, इसलिये सर्व जीव सिद्ध हैं। तब संग्रहनयवाला कहने लगा सर्व जीव की सत्ता सिद्धके समान हैं, इस नय वालेने पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा तो छोड़ दी और द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अगीकार करी। तब व्यवहारनयवाला कहने लगा कि विद्या, लब्धि, चेटक, चमत्कार आदि सिद्धि जिसमें होय सो सिद्ध है, क्योंकि यह व्यवहारनय वाला देखी हुई वस्तुको मानता है। इसलिये जो बाह्य तप प्रमुख अनेक तरह की सिद्धि बालजीवोंको दिखानेवाले हैं उनको सिद्ध मानता है। इसलिये इस नयवालेने बाह्य सिद्धि अङ्गीकार करी। तब ऋजुसूत्रनयवाला बोला कि जिसने सिद्धकी सत्ता और अपनी आत्मा की सत्ता औलखी अर्थात् जानी

और उपयोग सहित ध्यानमें जिस वक्त अपने जीवको सिद्ध माने उस वक्तमें वो सिद्ध है। इसलिये इस नय वालेने क्षायिकसमकितवालेको सिद्ध माना। तब शब्दनयवाला कहने लगा कि जो शुद्ध शुक्लध्यान रूप परिणाम और नामादि निक्षेपासे होय सो सिद्ध है। तब समभिरूढ़ नयवाला बोला कि जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यातचारित्र आदि गुणवन्त होय सो सिद्ध है। इस नय वालेने १३ वें गुणठाने अथवा १४ वें गुणठाने वाले केवलीको सिद्ध कहा। तब एवंभूत नयवाला बोला कि जो सकल कर्म क्षय करके लोकके अन्तमें विराजमान अष्टगुण करके संयुक्त है सो सिद्ध हैं। इस रीतिसे, सिद्धपदमें (७) नय कहे।

इसीरीतिसे अनेक चीजोंके उपर यह सातो नय उतरते हैं परन्तु इस जगह तो एक जिज्ञासुके समझानेके वास्ते थोड़ासा ही उतारकर दिखाया है, क्योंकि ज्यास्ती चीजोंके ऊपर उतारनेसे ग्रंथ बहुत बढ़ जायगा।

इस रीतिसे (७) नय करके वचन है सो प्रमाण है। इन सातो नयोंमें से जो एक भी नय उठावे सो ही अप्रमाण है। जो कोई इन सात नय संयुक्त वचनके मानने वाले हैं वे ही इस स्याद्वादमती अर्थात् जिनधर्मी हैं। इससे जो विपरीत सो मिथ्यात्वी है।

इस रीतिसे यह एक-अनेक पक्ष दिखलाया है, किञ्चित् विस्तार बतलाया है, द्रव्यका ध्रुव लक्षण इसके अन्तर्गत आया है, अब सत्य असत्य और वक्तव्य अवक्तव्य कहनेको चित्त चाया है, उसके अन्तर्गत श्री वीतरागदेवने प्रमाणका स्वरूप फरमाया है, उसके अनुसार किंचित् चित्त मेरा कहनेको हुलसाया है. इस ग्रंथमें अनुभव रस छाया है, आत्मार्थियोंको द्रव्यका अनुभव बताया है, इसमें करेगा अभ्यास उसके वास्ते इसमें आत्मस्वरूपको लखाया हैं, इसमें कितना ही रहस्य सिद्धान्तका दिखाया है, आत्मार्थी जिज्ञासुओंके यह कथन मन भाया है, चिदानन्द शुद्ध गुरु उपदेश चित्त भाया है, जैन धर्म चिन्तामणि रत्न समान कोई विरला जन पाया हैं।

इस रीतिसे यह एक-अनेक पक्ष कहा।

अब सत्य, असत्य, और वक्तव्य, अवक्तव्य इन पक्षोंका किञ्चित्

विस्तार रूप दिखाते हैं, और प्रमाणको बतलाते हैं, पीछेसे सप्त-भङ्गीका स्वरूप लाते हैं, इन बातोंको कहकर द्रव्यका लक्षण पूरा कराते हैं ।

प्रमाण ।

अब प्रमाणका स्वरूप कहते हैं कि प्रमाण क्या चीज है और प्रमाण कितने हैं और सांख्य, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा आदि कौन २ कितने २ प्रमाण मानता है उसीका किञ्चित् वर्णन करते हैं । प्रमाणके छः भेद हैं—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, तीसरा शाब्द, चौथा उपमान, पांचवा अर्थापत्ति, छठा अनुपलब्धि । अब इसको इस तरहसे अन्य मतवाले कहते हैं कि प्रत्यक्ष-प्रमा का जो करण सो प्रत्यक्ष प्रमाण है । अनुमिति-प्रमाका जो करण सो अनुमान प्रमाण है । शाब्दी प्रमाका जो करण सो शब्द प्रमाण है । उपमिति-प्रमाका जो करण सो उपमान प्रमाण है । अर्थापत्ति-प्रमाका जो करण सो अर्थापत्ति प्रमाण है । अभाव-प्रमाके करणको अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं । प्रत्यक्ष और अर्थापत्ति प्रमाणके प्रमाको एक ही नामसे कहते हैं । सो यह षट् प्रमाण भट्टके मतमें हैं । अद्वैतवादी अर्थात् वेदान्ती भी ये ही छः प्रमाण मानते हैं । न्याय मतमें चार ही प्रमाण माने हैं । अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को नही माने हैं । इन दोनोंको चार ही प्रमाणके अन्तर्गत करे हैं । सांख्य मतवाला तीन ही प्रमाण मानता है । उपमान प्रमाणको इन तीनों प्रमाणके अन्तर्गत करता है । बौद्ध मतवाला दो प्रमाण मानता है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान । जैन शास्त्रोंमें भी दो प्रमाण कहे हैं—एक तो प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष । इन दोनों ही प्रमाणोंमें सब प्रमाण अन्तर्गत हो जाते हैं । सो इसका वर्णन, अन्यमतावलम्बियों जिस रीतिसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाण मानते हैं उनका किञ्चित् वर्णन करके, पीछेसे कहेंगे ।

न्याय-शास्त्र की रीतिसे प्रत्यक्ष प्रमाणका वर्णन करते हैं कि नैयायिक किस रीतिसे प्रत्यक्ष प्रमाणको मानता है सो ही दिखाते हैं कि जो

प्रमाका करण होय सो प्रमाण है। प्रत्यक्ष प्रमाके करण नेत्र आदिक इन्द्रियां हैं इस लिए नेत्र आदिक इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। व्यापार-वाला जो असाधारण कारण होय सो करण है। ईश्वर और उसके ज्ञान, इच्छा, कृति, दिशा, काल, अदृष्ट, प्रागभाव, प्रतिबन्धकाभाव ये नव साधारण कारण हैं, इनसे जो भिन्न, सो असाधारण कारण है। असाधारण कारण भी दो प्रकारका हैं। एक तो व्यापारवाला है, दूसरा व्यापार करके रहित हैं। कारणसे ऊपजके कार्य्यको ऊपजावे सो व्यापार है। क्योंकि देखो, जैसे कपाल घटका कारण है और कपाल दोका संयोग भी घटका कारण है तिस जगह कपालकी कारणतामें संयोग व्यापार है, क्योंकि कपाल संयोग कपालसे ऊपजे हैं और कपालके कार्य्य घटको ऊपजावे हैं। इस लिये सयोग रूप व्यापारवाला कारण कपाल है। और जो कार्य्यको किसी रीतिसे उत्पन्न करे नहीं, किन्तु आप ही उत्पन्न होवे सो व्यापार करके रहित कारण है। ईश्वर आदि नव साधारण कारणोंसे भिन्न व्यापारवाला कारण कपाल है। इस लिये घटका कपाल करण है। और कपालका सयोग असाधारण तो है परन्तु व्यापार-वाला नहीं, इस लिये करण नही हैं, केवल घटका कारण ही है। तैसे प्रत्यक्ष प्रमाके नेत्रादिक इन्द्रियां करण हैं, क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंका अपने २ विषयसे सम्बन्ध नही होवे तो प्रत्यक्ष प्रमा होय नही; इन्द्रिय और विषयका सम्बन्ध जब होय तब ही प्रत्यक्ष प्रमा होती है। इस लिये इन्द्रिय और उसका विषयका सम्बन्ध इन्द्रियसे उत्पन्न होकर प्रत्यक्ष प्रमाको उत्पन्न करे हैं, सो व्यापार है। इसलिये सम्बन्ध रूप व्यापारवाले प्रत्यक्ष प्रमाके असाधारण कारण इन्द्रियाँ हैं। इस रीतिसे इन्द्रियको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं और इन्द्रिय-जन्य यथार्थ ज्ञानको न्याय मतमें प्रत्यक्ष प्रमा कही है। प्रत्यक्ष प्रमाके करण ६ इन्द्रियाँ हैं, इस लिये प्रत्यक्ष प्रमाके छः भेद हैं। सोही दिखाते हैं-श्रोत्र, त्वचा (त्वक्), नेत्र, रसना, घ्राण (नासिका), मन ये ६ इन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र जन्य यथार्थ ज्ञानको श्रोत्र प्रमा कहते हैं, त्वचा-इन्द्रिय-जन्य यथार्थ ज्ञानको त्वचा-प्रमा कहते हैं, नेत्र-इन्द्रिय-जन्य यथार्थ ज्ञानको चाक्षुष-प्रमा कहते हैं, रसना-इन्द्रिय-जन्य यथार्थ

ज्ञानको रसना-प्रमा कहते हैं, घ्राण-इन्द्रिय-जन्य यथार्थ ज्ञानको घ्राणज प्रमा कहते हैं और मन-इन्द्रिय-जन्य यथार्थ ज्ञानको मानस-प्रमा कहते हैं ।

यद्यपि न्याय मतमें शुक्ति-रजतादिक भ्रम भी इन्द्रिय-जन्य है, परन्तु केवल इन्द्रिय-जन्य न होकर दोषसहित-इन्द्रिय-जन्य होनेसे विसंवादी है, यथार्थ नहीं, इस लिये शुक्ति (छीप) में रजत (चांदी) का ज्ञान चाक्षुष ज्ञान तो है, परन्तु चाक्षुषी प्रमा नहीं। इस रीतिसे अन्य इन्द्रिय से भी जो भ्रम होता है सो प्रमा नही है।

अव जिस रीतिसे इस न्याय मतमें जो सम्बन्धके साथ इन्द्रियसे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसका किञ्चित् भावार्थ दिखाते हैं—न्याय शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि श्रोत्र इन्द्रियसे शब्दका ज्ञान होता है वैसे ही शब्दमें जो शब्दत्व जाति है उसका भी ज्ञान होता है, शब्दके व्याप्य कत्वादिकका और तारत्वादिक का भी ज्ञान होता है, तथा शब्दके अभाव और शब्दमें तारत्वादिकके अभावका ज्ञान भी उससे ही होता है। जिसका श्रोत्र इन्द्रियसे ज्ञान होता है तिस विषय से श्रोत्र इन्द्रिय का सम्बन्ध कहना चाहिये। इस लिये सम्बन्ध कहते हैं—न्याय मतमें चार इन्द्रियां तो वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से क्रम सहित ऊपजे हैं और श्रोत्र तथा मन नित्य है। कर्ण-गोलक में स्थित आकाश को श्रोत्र कहते हैं। जैसे वायु आदिकसे त्वक् आदिक इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं, वैसे ही आकाशसे श्रोत्र उत्पन्न होता है, यह श्रोत्र की उत्पत्ति नैयायिक मतमें नहीं मानते हैं।

किन्तु कर्णमें जो आकाश तिसको ही श्रोत्र कहते हैं, क्योंकि गुणका गुणीसे समवाय सम्बन्ध है, और शब्द आकाशका गुण है। इसलिये आकाश रूप श्रोत्रसे शब्दका समवाय सम्बन्ध है। यद्यपि भेरी-आदिक देशमें जो आकाश है उसमें शब्द उत्पन्न होता है, और कर्ण-उपहित आकाशको श्रोत्र कहते हैं, इस लिये भेरी-आदिक-उपहित आकाशमें शब्द-सम्बन्ध है, कर्ण-उपहित आकाशमें नहीं, तौभी भेरी-डंडके संयोगसे भेरी-उपहित आकाशमें शब्द उत्पन्न होता है, तिसका कर्ण-उपहित आकाशसे सम्बन्ध नहीं, इसलिये प्रत्यक्ष होय नहीं। परन्तु तिस शब्दसे और शब्द दस-दिशा-उपहित आकाशमें उत्पन्न होते हैं, तिससे और उत्पन्न होते हैं। इस माफिक

कर्ण-उपहित आकाशमें जो शब्द उत्पन्न होता है, तिसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और का नही होता। इस लिये शब्दकी प्रत्यक्ष-प्रमा फल है, श्रोत्र इन्द्रिय करण है। और त्वचा आदिक प्रत्यक्ष ज्ञानमें तो सारे विषयका इन्द्रियसे सम्बन्ध ही व्यापार है किन्तु श्रोत्र-प्रमामें विषयसे इन्द्रियका सम्बन्ध व्यापार बने नहीं, क्योंकि और स्थानमें विषयका इन्द्रियसे संयोग सम्बन्ध है जब शब्दका श्रोत्रसे समवाय सम्बन्ध है। समवाय सम्बन्ध नित्य है, और संयोग सम्बन्ध जन्य है। त्वक् आदिक इन्द्रियका घटादिकसे संयोग सम्बन्ध त्वक् आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न होता है, और प्रमाको उत्पन्न करता है इसलिये व्यापार है। तैसे ही शब्दका श्रोत्रसे समवाय सम्बन्ध श्रोत्र-जन्य नही है। इस लिये व्यापारवाला नहीं, किन्तु श्रोत्र और मनका संयोग व्यापार है। और संयोग दोके आश्रित होता है। जिनके आश्रित संयोग होय वे दोनों सयोगके उपादान कारण हैं, इसलिये श्रोत्र-मनका जो संयोग उसका उपादान कारण श्रोत्र और मन दोनों हैं। इसलिये श्रोत्र-मनका सयोग श्रोत्र-जन्य हैं। और श्रोत्र-जन्य ज्ञानका जनक है, इस वास्ते व्यापारवाला है।

अब इस जगह ऐसी शंका होती है कि श्रोत्र-मनको संयोग श्रोत्र-जन्य तो है परन्तु श्रोत्र-जन्य प्रमाका जनक किस रीतिसे बनेगा ?

इसका समाधान इस रीतिसे है कि आत्मा और मनका सयोग तो सर्व ज्ञानका साधारण कारण है, इसलिये ज्ञानकी सामान्य सामग्री तो आत्म-मनका सयोग है, और प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानकी विशेष सामग्री इन्द्रिय आदिक हैं। इसलिये श्रोत्र-जन्य प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्व भी आत्मा-मनका सयोग होय हैं। तैसे मनका और श्रोत्रका भी संयोग होय है। मनका और श्रोत्रका संयोग हुए विना श्रोत्र-जन्य ज्ञान होय नहीं, क्योंकि अनेक इन्द्रियोंका अपने२ विषयसे एक कालमें सम्बन्ध होने पर भी एक कालमें उन सर्व विषयोंका इन्द्रियोंसे ज्ञान होय नहीं। तिसका कारण यही है कि सर्व इन्द्रियोंके साथ मनका संयोग एक कालमें होवे नहीं। जब मनके संयोगवाली इन्द्रियको उसके विषयसे सम्बन्ध होय तब ज्ञान होय है। मनसे असंयुक्त (अलग) इन्द्रियका अपने

विषयके साथ सम्बन्ध होनेसे भी ज्ञान होय नहीं। न्याय शास्त्रोंमें मनको परम अणु अर्थात् सबसे छोटा कहा है, इसलिये एक कालमें अनेक इन्द्रियोंसे मनका संयोग संभवे नही। इस कारणसे अनेक विषयका अनेक इन्द्रियोंसे एक कालमें ज्ञान होय नहीं, क्योंकि जो ज्ञान का हेतु (कारण) इन्द्रिय ओर मनका संयोग है, सो कदाचित् एक कालमें होय तो एक कालमें अनेक इन्द्रियोंका विषयसे सम्बन्ध होने पर एक कालमें अनेक ज्ञान हो सकें।

इस रीतिसे नेत्र-आदि इन्द्रियोंका मनसे संयोग चाक्षुषादि ज्ञानका असाधारण कारण है। तैसे ही त्वचा ज्ञानमें त्वक्-मनका संयोग कारण है, रस-ज्ञानमें रसना और मनका संयोग कारण है, घ्राणज-ज्ञानमें घ्राण और मनका संयोग कारण है, श्रोत्र-ज्ञानमें श्रोत्र और मनका संयोग कारण हैं।

इस रीतिसे श्रोत्र मनका जो संयोग श्रोत्रसे उत्पन्न होता है, सो श्रोत्रज ज्ञानका जनक है, इसलिये व्यापार है। आत्मा-मनका संयोग सर्व ज्ञानमें कारण (हेतु) है। इसलिये पहले आत्म और मनका संयोग होय, तिसके अनन्तर (पीछे) जिस इन्द्रिय से ज्ञान उत्पन्न होगा, उस इन्द्रिय से आत्म-संयुक्त मनका संयोग होय है, फिर मन-संयुक्त इन्द्रियका विषयसे सम्बन्ध होता है, तव वाह्य-प्रत्यक्ष ज्ञान होय है। इन्द्रिय और विषयके सम्बन्ध विना वाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान होय नहीं। विषयका इन्द्रियसे सम्बन्ध अनेक प्रकारका है सो ही दिखाते हैं। जिस जगह शब्द का श्रोत्रसे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तिस जगह केवल शब्द ही श्रोत्र-जन्य ज्ञानका विषय नहीं है, किन्तु शब्दके धर्म शब्दत्वादिक भी उस ज्ञानके विषय हैं, शब्दका तो श्रोत्रसे समवाय सम्बन्ध है, और शब्दके धर्म जो शब्दत्वादिक तिससे श्रोत्रका समवेत-समवाय सम्बन्ध है। क्योंकि गुण-गुणी की तरह जातिका अपने आश्रयमें समवाय सम्बन्ध है, इसलिये शब्दत्व जातिका शब्दसे समवाय सम्बन्ध है। समवाय सम्बन्ध से जो रहनेवाला तिसको समवेत कहते हैं। सो श्रोत्रमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले जो शब्दसे श्रोत्र-सम्बन्ध है, तिस श्रोत्र-सम-

वेत शब्दमें शब्दत्वका समवाय होनेसे श्रोत्रका शब्दत्वसे समवेत-समवाय सम्बन्ध है। तैसे ही जब श्रोत्रमें शब्दकी प्रतीति नहीं होय, तब शब्द-अभावका प्रत्यक्ष होता है; तिस जगह शब्द-अभावका श्रोत्रसे विशेषणता सम्बन्ध है। जिस जगह अधिकरणमें पदार्थका अभाव होता है, तिस जगह अधिककरण मे पदार्थके अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। जैसे वायुमें रूप नहीं है, इसलिये वायुमें रूप-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। जहा पृथिवीमें घट नही है वहां पृथिवीमें घट-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है।

इस रीतिसे शब्द-शून्य श्रोत्रमे शब्द-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। इसलिये श्रोत्रसे शब्द-अभावका विशेषणता सम्बन्ध शब्द-अभावके प्रत्यक्ष ज्ञानका हेतु (कारण) है। जहाँ श्रोत्रसे ककारादिक शब्दका प्रत्यक्ष होता है, वहां समवाय सम्बन्ध है। उस ककारादिकमें कत्वादिक जो जाति, उसका समवेत-समवाय सम्बन्धसे प्रत्यक्ष होता है, और श्रोत्रमें शब्द-अभावका विशेषणता-सम्बन्धसे प्रत्यक्ष होता हैं। जहाँ श्रोत्र-समवेत ककारमे खत्व-अभावका प्रत्यक्ष होता है, वहां श्रोत्रका खत्व-अभावसे समवेत-विशेषणता सम्बन्ध है, क्योंकि श्रोत्रमें समवेत कहिये समवाय सम्बन्धसे रहे हुए जो ककार, तिसमें खत्व-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। इस माफिक अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रके अनेक सम्बन्ध होते हैं। परन्तु विशेषणपना सर्व अभावका सम्बन्ध है। इसलिये अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्र का एक ही विशेषणता सम्बन्ध है। इस रीतिसे श्रोत्र-जन्य प्रमाके हेतु तीन सम्बन्ध है, शब्दके ज्ञानका हेतु समवाय सम्बन्ध है, और शब्दके धर्म शब्दत्व और कत्वादिकके ज्ञानका हेतु समवेत-समवाय सम्बन्ध है, और श्रोत्र-जन्य ज्ञानके अभायका विषय-विशेषणता सम्बन्ध हैं। विशेषणत नाना प्रकार की है। शब्द-अभावके प्रत्यक्षमें शुद्ध-विशेषणता सम्बन्ध हैं, ककार-विषय खत्व-अभावके प्रत्यक्षमें विषय-विशेषणता है। सो विशेषणता सम्बन्धके अनन्त भेद हैं, तौभी विशेषणता सर्व में हैं, इसलिये विशेषणता एक ही कहनी चाहिये।

शब्दके दो भेद हैं—एक तो भेरी आदिक देशमें ध्वनिरूप शब्द होता है

और दुसरा कण्ठादिक देशमें वायुके संयोगसे वर्ण रूप शब्द होता है। सो श्रोत्र इन्द्रियसे दोनों प्रकारके शब्दका प्रत्यक्ष होता है। और, वर्णरूप शब्दमें कत्वादिक जाति है उसका जैसे समवेत-समवाय सम्बन्धसे प्रत्यक्ष होता है तैसे ही ध्वनि रूप शब्दमें जो तारत्व-मन्दत्वादिक धर्म है उसका भी श्रोत्रसे प्रत्यक्ष होता है। परन्तु कत्वादिक तो वर्णके धर्म जातिरूप है, इसलिये कत्वादिकका ककारादिरूप शब्दसे समवाय सम्बन्ध है, और ध्वनि-शब्दके तारत्वादिक जातिरूप नहीं, किन्तु उपाधि रूप है, इसलिये तारत्वादिकका ध्वनि-रूप शब्दमें समवाय सम्बन्ध नही, किन्तु स्वरूप सम्बन्ध है, क्योंकि न्याय मतमें जाति रूप धर्मका, गुणका, तथा क्रियाका अपने आश्रयमें समवाय सम्बन्ध है, जाति, गुण और क्रियासे भिन्न धर्मको उपाधि कहते हैं। उपाधिका और अभावका जो अपने आश्रयसे सम्बन्ध, उसको स्वरूप सम्बन्ध कहते है। स्वरूप सम्बन्धको ही विशेषणता कहते हैं। इसलिये जातिसे भिन्न जो तारत्वादिक धर्म, उसका ध्वनि रूप शब्दसे स्वरूप सम्बन्ध है, जिसको विशेषणता कहते हैं। इसलिये श्रोत्रमें समवेत जो ध्वनि, उसमें तारत्व-मन्दत्वका विशेषणता सम्बन्ध होनेसे श्रोत्रका और तारत्व मन्दत्वका श्रोत्र-समवेत-विशेषणता सम्बन्ध है। इस रीतिसे श्रोत्र इन्द्रिय श्रोत्र-प्रत्यक्ष-प्रमाका करण है, श्रोत्र-मनका संयोग व्यापार है, शब्दादिका प्रत्यक्ष-प्रमा रूप ज्ञान फल है। इस रीतिसे श्रोत्र-इन्द्रिय-जन्य प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन किया।

अब त्वक् (त्वचा) इन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है उसका भी वर्णन करते हैं कि—त्वक् इन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है। तथा स्पर्शके आश्रयका ज्ञान होता हैं और स्पर्श आश्रित जो स्पर्शत्व जाति उसका और स्पर्श अभावका भी त्वक् इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है। क्योंकि जिस इन्द्रियसे जिस पदार्थका ज्ञान होय, उस पदार्थके अभावका और उस पदार्थकी जातिका उस इन्द्रियसे ज्ञान होता है। सो पृथिवी, जल, तेज (अग्नि) इन तीन द्रव्योंका त्वक् इन्द्रियसे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। वायुका प्रत्यक्ष ज्ञान होय नहीं, क्योंकि जिस द्रव्यमें प्रत्यक्ष योग्य रूप

और प्रत्यक्ष योग्य स्पर्श ये दोनों होय उस द्रव्यका त्वचा प्रत्यक्ष होता है। वायुमे स्पर्श है और रूप नहीं है। इसलिये वायुका त्वचा-प्रत्यक्ष होय नहीं किन्तु वायुके स्पर्शका तुक् इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है, सो स्पर्शके प्रत्यक्षसे वायुका अनुमिति (अनुमान) ज्ञान होता है।

मीमांसाके मतमें वायुका प्रत्यक्ष होता है। उसका ऐसा अभिप्राय है कि प्रत्यक्ष योग्य स्पर्श जिस द्रव्यमें होय तिस द्रव्यका त्वचा प्रत्यक्ष होता है, क्योंकि तुक्-इन्द्रिय-जन्य द्रव्यके प्रत्यक्षमें रूपकी कुछ अपेक्षा नहीं, केवल स्पर्शको अपेक्षा है। जैसे द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमें उद्‌भूत रूपकी अपेक्षा है, स्पर्शकी नहीं, क्योंकि यदि द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमे उद्‌भूत स्पर्शकी अपेक्षा होय तो जिस द्रव्यमें दीपक अथवा चन्द्रकी प्रभा (ज्योति) से उद्‌भूत स्पर्श नहीं हैं तिसका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिये और चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। ऐसे ही त्र्यणुकमें स्पर्श तो है, किन्तु उद्‌भूत स्पर्श नहीं है, इसलिये त्वचा प्रत्यक्ष नहीं होता, केवल चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार जैसे केवल उद्‌भूत-रूपवाले द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तैसे ही केवल उद्‌भूत-स्पर्शवाले द्रव्यका त्वचा-प्रत्यक्ष होता हैं। सो वायुमें रूप तो नही है किन्तु उद्‌भूत स्पर्श है, इसलिये चाक्षुष प्रत्यक्ष वायुका होय नहीं किन्तु त्वचा प्रत्यक्ष होता है। सर्व लोगोंको ऐसा अनुभव भी होता है कि वायुका मेरेको त्वचा से प्रत्यक्ष होता है। इसलिये वायुका भी त्वचा इन्द्रियसे प्रत्यक्ष है। इसमें कुछ सन्देह नही। इस रीतिसे भी मीमांसा मतवाला कहता है।

परन्तु न्याय सिद्धान्तमें वायुका प्रत्यक्ष नही होता है, बल्कि पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि) में भी जहां उद्‌भूत रूप और उद्‌भूत स्पर्श है, उसका ही त्वचा प्रत्यक्ष होता हैं औरोंका नहीं होता, क्योंकि प्रत्यक्ष योग्य जो रूप और स्पर्श सो उद्‌भूत कहाते हैं। जैसे घ्राण, रसना, नेत्रमें रूप और स्पर्श दोनों हैं, परन्तु उद्‌भूत नहीं, इसलिये पृथ्वी, जल, तेज, रूप तीन इन्द्रियोंका भी त्वचा-प्रत्यक्ष और चाक्षुष-प्रत्यक्ष होय नहीं। क्योंकि देखो—जो झरोखादार (रोशनदार) मकानमें मोखा हैं, उसमें जो परम सूक्ष्म रज प्रतीत होता है सो त्र्यणुक रूप पृथिवी है। उसमें

उद्भूत रूप है, इसलिये त्र्यणुकका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है और उद्भूत स्पर्शके अभावसे (नहीं होनेसे) त्वचा प्रत्यक्ष होय नही। त्र्यणुकमें स्पर्श भी है परन्तु वह स्पर्श उद्भूत नहीं। वायुमें उद्भूत स्पर्श तो है किन्तु रूप नही है। इसलिये वायुका त्वचा-प्रत्यक्ष तथा चाक्षुष-प्रत्यक्ष होय नही। इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमें उद्भूत रूप हेतु (कारण) है और द्रव्यके त्वचा प्रत्यक्षमें उद्भूत रूप और उद्भूत स्पर्श दोनों हेतु हैं, क्योंकि जिस द्रव्यमें उद्भूत रूप और उद्भूत स्पर्श होय उसका ही त्वचा प्रत्यक्ष होता हैं। जिस द्रव्यका त्वचा प्रत्यक्ष होय उस द्रव्यकी प्रत्यक्ष योग्य जातिका भी प्रत्यक्ष होता हैं। जैसे घटका त्वचा प्रत्यक्ष होय वहां घटमें प्रत्यक्ष योग्य जाति घटत्व है उसका भी त्वचा प्रत्यक्ष होता हैं। और उस द्रव्यमें जो स्पर्श, संख्या, परिमाण, संयोग, विभागादिक योग्य गुण हैं उनका और स्पर्शादिकमें स्पर्शत्वादिक जातिका भी प्रत्यक्ष होता है। और कोमल द्रव्यमें कठिन स्पर्शका अभाव है और शीतल जलमें ऊष्ण स्पर्शका अभाव है उसका भी त्वचा प्रत्यक्ष होता है। उस जगह घटादिक द्रव्यसे इन्द्रियका संयोग सम्बन्ध होता है, सो क्रिया-जन्य संयोग होता है। दो द्रव्योंका संयोग होता है। त्वक् इन्द्रिय वायुके परमाणुसे जन्य है, इसलिये वायुरूप द्रव्य हैं, घट भी पृथ्वीरूप द्रव्य है। किसी जगह तो त्वचा इन्द्रियका गोलक जो शरीर, उसकी क्रियासे त्वक्-घटका संयोग होता है और किसी जगह घटकी क्रियासे त्वक्-घटका संयोग होता हैं, और किसी जगह दोनोंकी क्रियासे संयोग होता है। नेत्रमें तो गोलकको छोड़कर केवल इन्द्रियमें क्रिया होती है, किन्तु त्वक् इन्द्रियमें गोलकको छोड़कर स्वतन्त्रमें क्रिया कदापि होय नही। इसलिये त्वक् इन्द्रियका गोलक जो शरीर उसकी क्रिया वा घटादिक विषयकी क्रिया से अथवा दोनों की क्रियासे त्वक्का घटादिक द्रव्यसे संयोग होय, तब त्वचा ज्ञान होता हैं। उस जगह त्वचा-प्रत्यक्ष-प्रमा फल है, त्वक् इन्द्रिय करण है, त्वक् इन्द्रियका घटसे संयोग व्यापार हैं। क्योंकि त्वक् और घटके संयोगके

उपादान कारण घट और त्वक् दोनों हैं, इसलिये त्वक्-इन्द्रिय-जन्य वह संयोग है, और त्वक् इन्द्रियका कार्य्य जो त्वचा-प्रमा उसका जनक हैं, इस कारणसे त्वक्से घटका संयोग व्यापार है। जिस जगह त्वक्से घटकी घटत्व-जातिका और स्पर्शादिक गुणका त्वचा प्रत्यक्ष होता है, उस जगह त्वक् इन्द्रिय करण है और प्रत्यक्ष-प्रमा फल है, और संयुक्त-समवाय सम्बंध व्यापार है, क्योंकि त्वक् इन्द्रियसे संयुक्त कहिये संयोग वाला जो घट, उसमे घटत्व जातिका और स्पर्शादिक गुणका समवाय हैं। तैसे ही जहा घटादिकके स्पर्शादिक गुणमें जो स्पर्शत्वादिक जाति, उसकी त्वचा-प्रत्यक्ष-प्रमा होय, उस जगह त्वक् इन्द्रिय करण हैं, स्पर्शत्वादिककी प्रत्यक्ष-प्रमा फल है, और संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बंध है, सो व्यापार है, क्योंकि त्वक् इन्द्रियसे संयुक्त जो घट, उसमें समवेत कहिये समवाय सम्बंधसे रहनेवाले स्पर्शादिक, उसमें स्पर्शत्वादिक जातिका समवाय हैं। संयुक्त-समवाय और संयुक्त-समवेत-समवाय ये दोनों सम्बन्धों में समवाय भाग तो यद्यपि नित्य है, इन्द्रिय-जन्य नही, तथापि संयोगवालेको संयुक्त कहते हैं सो संयोग जन्य हैं। इसलिये त्वक् इन्द्रियकी त्वक् जन्य होनेसे, त्वक्-संयुक्त-समवाय और त्वक्-संयुक्त-समवेत-समवाय त्वक्-इन्द्रिय-जन्य हैं और त्वक्-इन्द्रिय-जन्य जो त्वचा-प्रमा, उसका जनक हैं, इसलिये व्यापार है। जिस जगह पुष्पादिक कोमल द्रव्यमें कठिन स्पर्शके अभावका और शीतल जलमें उष्ण स्पर्शके अभावका त्वचा प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह त्वक् इन्द्रिय करण है और अभावकी त्वचा-प्रमा फल है, और इन्द्रियसे अभावका त्वक्-संयुक्त-विशेषणता सम्बन्ध हैं सो व्यापार है, क्योंकि त्वक्-इन्द्रियका घटादिक द्रव्यसे संयोग हैं और त्वक्-संयुक्त कोमल द्रव्यमें कठिन-स्पर्श-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। जिस जगह घट स्पर्शमें रूपत्वके अभावका त्वचा प्रत्यक्ष होता है तिस जगह त्वक्-संयुक्त घटमें समवेत जो स्पर्श, उसके विषय रूपत्व-अभावका विशेषणता सम्बंध होनेसे त्वक्-संयुक्त-समवेत-विशेषणता सम्बंध है।

इस रीतिसे त्वचा प्रत्यक्षमें चार ही सम्बन्ध हेतु हैं- एक तो त्वक्-संयोग, दूसरा त्वक्-संयुक्त-समवाय, तीसरा त्वक्-संयुक्त-समवेत-समवाय, चौथा त्वक्-समवेत-विशेषणता। त्वक्से सम्बन्धवालेको त्वक्-सम्बद्ध कहते हैं। जिस जगह कोमल द्रव्यमें कठिन स्पर्शका अभाव है, तिस जगह त्वक्के संयोग सम्बन्धवाला कोमल द्रव्य है, तिस त्वक्-सम्बद्ध कोमल द्रव्यमें कठिन स्पर्श-अभावका सम्बन्ध स्पर्श ही है। जिस जगह स्पर्शमें रूपत्व-अभावका प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह त्वक्का स्पर्शसे संयुक्त-समवाय सम्बन्ध है, सो त्वक्से संयुक्त-समवाय-सम्बन्धवाला होनेसे त्वक्-सम्बद्ध स्पर्श है, तिसमें रूपत्व-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। इस रीतिसे त्वचा-प्रमाके हेतु संयोगादिक चार सम्बन्ध हैं।

वैसे ही चाक्षुष प्रमाके हेतु भी चार सम्बन्ध हैं। सो ही दिखाते हैं—एक तो नेत्र-संयोग, दूसरा नेत्र-संयुक्त-समवाय, तीसरा नेत्र-संयुक्त-समवेत-समवाय, चौथा नेत्र-सम्बद्ध विशेषणता। ये चार सम्बन्ध हैं वे ही व्यापार हैं। जिस जगह नेत्रसे घटादिक द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तिस जगह नेत्रकी क्रियासे द्रव्यके साथ संयोग सम्बन्ध है, सो संयोग नेत्र-जन्य है, और नेत्र-जन्य जो चाक्षुष-प्रमा, उसका जनक है, इसलिये व्यापार है। जहां नेत्रसे द्रव्यकी घटत्वादिक जातिका और रूप-संख्यादि गुणोंका प्रत्यक्ष होता है, वहां नेत्र-संयुक्त द्रव्यमें घटत्वादिक जाति और रूपादिक गुणोंका समवाय सम्बन्ध है, इसलिये द्रव्यकी जाति और गुणके चाक्षुप प्रत्यक्षमें नेत्र-संयुक्त-समवाय सम्बन्ध है। जहा गुणमें रहनेवाली जातिका चाक्षुप प्रत्यक्ष होता है वहां रूपत्वादिक जातिसे नेत्रका संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध है, क्योंकि नेत्र-सयुक्त घटादिकमें समवेत जो रूपादिक उसमें रूपत्वादिकका समवाय है। यद्यपि नेत्रसे संयोग सकल द्रव्यका सम्भवित है तथापि उद्भूत रूपवाले द्रव्यसे नेत्रका संयोग चाक्षुप प्रत्यक्ष का कारण है, और द्रव्यसे नेत्रका संयोग चाक्षुप प्रत्यक्षका हेतु नहीं है। पृथिवी, जल, अग्नि ये तीन ही द्रव्य रूपवाले

हैं और नहीं हैं । इसलिये पृथ्वी, जल, तेजका ही चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है सो इनमें भी जिस जगह उद्‌भूत रूप होय उसका चाक्षुप प्रत्यक्ष होता है । जिसमें अनुद्‌भूत रूप होय तिसका चाक्षुप प्रत्यक्ष होय नहीं । जैसे घ्राण, रसना, नेत्र यह तीनों ही इन्द्रिया क्रमसे पृथ्वी, जल, तेज रूप हैं । सो इन तीनों में ही रूप है, परन्तु इनका रूप अनुद्‌भूत है, उद्‌भूत नहीं, इसलिये इनका चाक्षुप प्रत्यक्ष होय नहीं ।

इस रीतिसे यह बात सिद्ध हुई कि उद्‌भूत रूपवाले पृथिवी, जल, तेज ही चाक्षुप प्रत्यक्षका विषय हैं । तिसमें भी कोई गुण चाक्षुष प्रत्यक्ष योग्य हैं और कोई चाक्षुप प्रत्यक्ष योग्य नहीं हैं । क्योंकि देखो—जैसे पृथ्वी मे रूप १ रस २ गन्ध ३ स्पर्श ४ संख्या ५ परिमाण ६ पृथक्त्व ७ संयोग ८ विभाग ९ परत्व १० अपरत्व ११ गुणत्व १२ द्रव्यत्व १३ सस्कार १४ ये चतुर्दश गुण हैं । इनमें से भी एक गन्ध को छोड़कर स्नेह को मिलावे तो यही चतुर्दश गुण जलके होते हैं । और इनमेंसे भी रस, गन्ध, गुरुत्व और स्नेहको छोड़कर एकादश तेज (अग्निके) हैं । इनमें भी रूप, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रव्यत्व, इतने गुण चाक्षुप प्रत्यक्ष योग्य हैं, वाकीके नहीं । इसलिये नेत्र-सयुक्त-समवाय रूप सम्बन्ध तो सर्व गुणोंसे है, परन्तु नेत्रके योग्य सारे नहीं । इसलिये जितने नेत्रके योग्य हैं उतने गुणोंका ही नेत्र-संयुक्त-समवाय सम्बन्धसे प्रत्यक्ष होता है । और स्पर्शमें त्वक् इन्द्रियकी योग्यता है नेत्र की नही । रूप में नेत्र की योग्यता है, त्वक् की नही । सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रव्यत्व में तो त्वक् और नेत्र दोनोंकी योग्यता हैं । इसलिये त्वक्-संयुक्त-समवाय और नेत्र-संयुक्त-समवाय दोनों सम्बन्ध संख्यादिकके त्वचा प्रत्यक्ष और चाक्षुप प्रत्यक्षके हेतु हैं । रसमें केवल रसनाकी योग्यता है, और इंद्रियोंकी नहीं । तैसे ही गन्धमें घ्राणकी योग्यता हैं और को नही । जिस इन्द्रियकी योग्यता जिस गुणमें है तिस इन्द्रियसे तिस गुणका प्रत्यक्ष होता हैं । अन्यके साथ इन्द्रियके सम्बन्ध होनेसे भी प्रत्यक्ष होय नही । तैसे घटादिक मे जो रूपादिक चाक्षुष ज्ञानके

विषय है, तिसकी रूपत्वादिक जाति का नेत्र-संयुक्त-समवेत-सम-वाय से प्रत्यक्ष होता है। परन्तु जो रसादिक चाक्षुष ज्ञानके विषय नहीं, तिसमें रसत्वादिक जातिसे नेत्र का संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध होनेसे भी चाक्षुष प्रत्यक्ष होवे नहीं। इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि उद्भूत रूपवाले द्रव्योंका नेत्रके संयोगसे चाक्षुष ज्ञान होता है। उद्भूत रूपवाले द्रव्यकी नेत्र योग्य जातिका, और नेत्र योग्य गुणका संयुक्त-समवाय-सम्बन्धसे चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है, और नेत्रयोग्य गुण की रूपत्वादिक जातिका नेत्र-संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध से चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। जिस जगह भूतलमें घट-अभाव का चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तिस जगह भूतलमें नेत्रका संयोग सम्बन्ध है। इस लिये नेत्र सम्बद्ध भूतलमें घट-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है। वैसे ही नील घटमें पीतरूपके अभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है, जिस जगह नेत्र संयोग होनेसे नेत्र-सम्बद्ध नील घटमें पीतरूप अभावका विशे-षणता सम्बन्ध है। तैसे ही घटके नील रूपमें पीतत्व जातिके अभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है वहां नेत्रसे संयुक्त-समवाय-सम्बन्धवाला नील रूप है, इसलिये नेत्र सम्बद्ध जो नील रूप जिसमें पीत-अभावका विशेषणता सम्बन्ध होनेसे नेत्र-सम्बद्ध-विशेषणता सम्बन्ध है।

इस प्रकार नेत्र संयोग, नेत्र-संयुक्त-समवाय, नेत्र-संयुक्त-समवेत-समवाय, और नेत्र-सम्बद्ध-विशेषणता, यह चार सम्बन्ध चाक्षुष प्रमाके हेतु हैं, वे ही व्यापार हैं, और नेत्र करण है, चाक्षुष-प्रमा फल है।

जैसे त्वक् और नेत्रसे द्रव्यका प्रत्यक्ष होता है तैसे ही रसना इन्द्रियसे द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होय नहीं, परन्तु रसका और रसत्व-मधुरत्वादिक रसकी जातिका, रस-अभावका तथा मधुरादिक रसमें अम्लत्वादिक जातिके अभावका रसना प्रत्यक्ष होता है। इसलिये रसना प्रत्यक्षके हेतु रसना इन्द्रियसे विषयके तीन ही सम्बन्ध हैं, सो ही दिखाते हैं—एक तो रसना-संयुक्त-समवाय, २ रसना संयुक्त-समवेत-समवाय, ३ रसना-सम्बद्ध-विशेषणता। जिस जगह फलके मधुर

रसका रसना इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह फल और रसना का संयोग सम्बन्ध है, क्योंकि रसना-संयुक्त फल है, तिसमें रसगु-णका समवाय होनेसे रसके रसना-प्रत्यक्ष में संयुक्त-समवाय सम्बन्ध है, सो व्यापार है। क्योंकि संयुक्त-समवाय सम्बन्ध में जो समवाय सम्बन्ध है सो तो नित्य है, रसना-जन्य नही, परन्तु संयोग अंश रसना-जन्य है। और रसना-इन्द्रिय-जन्य जो रसका रसन-साक्षात्कार, तिसका जनक है, इसलिये व्यापार है। तिस व्यापारवाले रसना प्रत्य-क्षका असाधारण कारण रसना इन्द्रिय हैं, इसलिये करण होनेसे प्रमाण हैं और रसना-प्रमा फल है। तैसे ही रसमै रसत्व-जातिका और मधुरत्व, अम्लत्व, लवणत्व, कटुत्व, कषायत्व, तिक्तत्व रूप षट् धर्मका रसना इन्द्रियसे रसन-साक्षात्कार होता है, तिस जगह रसनासे फलादिक द्रव्यका संयोग है, तिस द्रव्यमें रस समवेत होता है। इस रीतिसे रसना-संयुक्त जो द्रव्य तिसमें समवेत कहिये समवाय सम्बन्धसे रहनेवाला, सो रस है, तिसमें रसत्वका और रसत्वके व्याप्य जो मधुरत्वादिक, तिसका समवाय होनेसे रसना-संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध है। तैसे ही फलके मधुर रसमें अम्लत्व-अभावका रसना-प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह रसना इन्द्रियका अम्लत्व-अभावसे स्व-सम्बद्ध विशेषणता सम्बन्ध है, क्योंकि संयुक्त-समवाय सम्बन्धसे रसना-सम्बद्ध मधुर रस, तिसमें अम्लत्व-अभावका विशेषणता सम्बन्ध है, इसलिये रसना इन्द्रियका अम्लत्व-अभावसे संयुक्त-समवेत-विशेषणता सम्बन्ध है। इस तरह रसना इन्द्रियसे जन्य रसन-प्रत्यक्षके हेतु तीन ही सम्बन्ध हैं।

तैसे ही जिस जगह घ्राणज प्रत्यक्ष-प्रमा होती है, तिस जगह भी घ्राणके विषयसे तीन ही सम्बन्ध हेतु हैं, एक तो घ्राण-संयुक्त-समवाय, दूसरा घ्राण-संयुक्त-समवेत-समवाय, तीसरा घ्राण-सम्बद्ध-विशेषणता। घ्राण इन्द्रियसे भी द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होय नही, किन्तु गन्धगुणका प्रत्यक्ष होता है। जो द्रव्यका प्रत्यक्ष होता, तो घ्राणका संयोग सम्बन्ध प्रत्यक्षमें करण होता। किन्तु द्रव्यका प्रत्यक्ष

घ्राणसे होय नही । इसलिये घ्राण संयोग प्रत्यक्षका हेतु नहीं, और गन्धका घ्राणसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, किन्तु पुष्पादिकमें गन्धका समवाय सम्बन्ध है, और घ्राणके साथ पुष्पादिकका संयोग सम्बन्ध है, इसलिये घ्राण-संयुक्त-समवाय सम्बन्ध से गन्धका घ्राणज प्रत्यक्ष होता है, अन्य गुणका घ्राणसे प्रत्यक्ष होय नहीं । परन्तु गन्धमें जो गन्धत्व जाति, तिसका और गन्धत्वके व्याप्य जो सुगन्धत्व-दुर्गन्धत्व, तिसका भी घ्राणज प्रत्यक्ष होता है, तैसे ही गन्ध अभावका भी घ्राणज प्रत्यक्ष होता है । क्योंकि जिस इन्द्रियसे जिस पदार्थका ज्ञान होय तिसकी जातिका और तिसके अभावका भी उसी इन्द्रियसे ज्ञान होता है। जिस जगह गन्धत्वका और सुगन्धत्व-दुर्गन्धत्वका प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह घ्राण-संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध घ्राणज प्रत्यक्षका हेतु है, क्योंकि घ्राणसे संयुक्त जो पुष्पादिक उसमें समवेत गन्ध और तिसमें समवेत गन्धत्वादिक है। तैसे ही पुष्पके सुगन्धमें दुर्गन्धत्वके अभावका घ्राणज प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह घ्राणका दुर्गन्धत्व अभावसे स्व-सम्बद्ध-विशेषणता सम्बन्ध है, क्योंकि संयुक्त-समवाय सम्बन्धसे घ्राण सम्बद्ध जो सुगन्ध, तिसमें दुर्गन्धत्वाभावका विशेषणता सम्बन्ध है। जिस जगह पुष्पादिक दूर होय और गन्धका प्रत्यक्ष होय, तिस जगह यद्यपि पुष्पमें क्रिया दीखे नही, इसलिये पुष्पादिकका घ्राणसे संयोगके अभावसे घ्राण-संयुक्त-समवाय सम्बन्ध संभवे नही, तथापि गन्ध तो गुण है इससे केवल गन्धमें क्रिया होय नही, किन्तु गन्धके आश्रय जो पुष्पादिक, उनके सूक्ष्म अवयवमें क्रिया होकर घ्राणसे संयोग होता है, इस लिये घ्राण-संयुक्त जो पुष्पादिकके अवयव, तिसमे गन्धका समवाय होनेसे घ्राण-संयुक्त-समवाय सम्बन्ध ही गन्धके घ्राणज प्रत्यक्षका हेतु है। इस रीतिसे घ्राणज प्रत्यक्षके हेतु तीन ही सम्बन्ध हैं, वे व्यापार हैं, घ्राण इन्द्रिय करण है और घ्राणज-प्रत्यक्ष-प्रमा फल है ।

इस रीतिसे श्रोत्र आदिक पांच इन्द्रियोंसे बाह्य पदार्थका ज्ञान होता है। आत्मा और आत्माके सुखादिक धर्म और आत्मत्व जाति तथा

सुखत्वादिक जाति का श्रोत्र आदिकसे प्रत्यक्ष होय नहीं, किन्तु आत्मादिक आन्तर पदार्थ के प्रत्यक्षका हेतु मन इन्द्रिय है। आत्मा और उसके सुखादिक धर्म से भिन्न को वाह्य कहते हैं, आत्मा और उसके धर्मको आन्तर कहते हैं। जैसे वाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके करण श्रोत्र आदिक इन्द्रियां हैं, तैसे ही आन्तर आत्मादिक की प्रत्यक्ष प्रमाका करण मन है। इसलिये मन भी प्रत्यक्ष प्रमाण है, और इन्द्रिय भी है। जब मनमे क्रिया होकर, आत्मासे संयोग होता है, तब आत्माका मानस प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिस जगह आत्माका मानस प्रत्यक्ष होता है तिस जगह आत्माका मानस प्रत्यक्ष रूप फल तो प्रमा है, और आत्म-मनका संयोग व्यापार है। क्यों कि आत्म-मनका संयोग मन-जन्य है और मन-जन्य जो आत्मा की प्रत्यक्ष-प्रमा, तिसका जनक है इस लिये व्यापार हैं। तिस संयोगरूप-व्यापारवाला आत्माकी प्रत्यक्ष प्रमाका असाधारण कारण है सो प्रमाण है। ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख, द्वेष यह आत्माके गुण हैं। तिसका साक्षात् करनेका हेतु भी मन ही प्रमाण है। तिस जगह मनके साथ ज्ञानादिकका साक्षात् सम्बन्ध तो नही है, किन्तु परम्परा सम्बन्ध है। अपने सम्बन्धिसे जिसका सम्बन्ध होय उसका नाम परम्परा-संबन्ध है। सो ज्ञानादिक का आत्मा में समवाय सम्बन्ध हैं, इस लिये ज्ञानादिकका सम्बन्धी आत्मा है तिससे मनका संयोग होनेसे परम्परा-सम्बन्ध मनसे ज्ञानादिकका है। सो ज्ञानादिकका मनसे स्व-समवाय-सयोग सम्बन्ध है—स्व कहिये ज्ञानादिक, तिसका समवाय कहिए समवाय वाला जो आत्मा, तिसका मनसे संयोग हैं। तैसे ही मनका ज्ञानादिक से भी परम्परा सम्बन्ध हैं सो मन-संयुक्त-समवाय हैं—मनसे संयुक्त कहिये जो सयोग वाला आत्मा, तिसमे ज्ञानादिक का समवाय सम्बन्ध हैं। तैसे ही ज्ञानत्व, इच्छत्व, प्रयत्नत्व, सुखत्व, दुखत्व, द्वेषत्व का भी मनसे प्रत्यक्ष होता हैं, तिस जगह मनसे ज्ञानत्वादिक का स्वाश्रय-समवायि-संयोग सम्बन्ध हैं—स्व कहिये ज्ञानत्वादिक, तिसके आश्रय जो ज्ञानादिक, तिसका समवायी आत्मा, तिसका मनसे संयोग है।

तैसे ही मनका ज्ञानत्वादिक से मन-संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध है। क्योंकि मन-संयुक्त आत्मामें समवेत जो ज्ञानादिक, तिसमें ज्ञानत्वादिक का समवाय सम्बन्ध है। तैसे ही आत्मामे सुखाभाव और दुःखाभाव का प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह भी मन-सम्बद्ध-विशेषणता सम्बन्ध है, क्योंकि मनसे सम्बद्ध कहिये संयोगवाला जो आत्मा, तिसमे सुखाभाव और दुःखाभाव का विशेषणता सम्बन्ध है। और सुखमें दुखत्व-अभावका प्रत्यक्ष होता है तिस जगह भी मनसे संयुक्त-समवाय-सम्बन्ध वाला सुख है, क्योंकि मनसे संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा, तिसमें सुखादिक गुणका समवाय सम्बन्ध है। और सुखादिकमें दुखत्वा-भावका विशेषणता संबंध है। क्योंकि अभाव का विशेषणता सम्बन्ध ही होता है। इस रीतिसे अभावसे मानस प्रत्यक्ष का हेतु (कारण) मन-सम्बद्ध-विशेषणता सम्बन्ध एक ही है, क्योंकि—जिस जगह आत्मामें सुख-अभावादिकका प्रत्यक्ष होता हैं तिस जगह संयोग संबन्ध से मन-सम्बद्ध जो आत्मा, तिसमें सुख-अभावादिका विशे-षणता सम्बन्ध है। और जिस जगह सुखादिक में दुःखत्व-अभावा-दिकका प्रत्यक्ष होता है तिस जगह संयुक्त-समवाय-सम्बन्धसे मनके सम्बन्धवाले सुखादिक हैं। उनमें किसी जगह तो साक्षात् सम्बन्धसे मन-सम्बद्ध में और कही परम्परा सम्बन्धसे मन-सम्बद्ध में अभावका विशेषणता सम्बन्ध है।

इसी रीतिसे मानस प्रत्यक्षके हेतु चार ही सम्बन्ध हैं—१ मन-संयोग, २ मन-संयुक्त-समवाय, ३ मन-संयुक्त-समवेत-समवाय, ४ मन-सम्बद्ध-विशेषणता। मानस प्रत्यक्षके चार ही सम्बन्ध-व्यापार हेतु है, सम्बन्ध रूप व्यापारवाला असाधारण कारण मन करण है, इस लिये प्रमाण है, और आत्म-सुखादिक का मानस-साक्षात्कार रूप प्रमा फल है। जैसे आत्म-गुण सुखादिकके प्रत्यक्षका हेतु संयुक्त-समवाय सम्बन्ध, है तैसे ही धर्म, अधर्म, संस्कारादिक भी आत्माके गुण हैं। इसलिये उनसे मनका संयुक्त-समवाय सम्बन्ध तो है, परन्तु धर्मादिक गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं है, इसलिये धर्मादिकका मानस प्रत्यक्ष

होय नहीं। जिसमे प्रत्यक्ष-योग्यता नहीं हैं उसका प्रत्यक्ष होय नहीं। और जिस जगह आश्रय का प्रत्यक्ष होता है तिस जगह संयोग का प्रत्यक्ष होता है। जैसे दो उँगली संयोगके आश्रय हैं सो जब दो उंगली का चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तब ही संयोग का चाक्षुष प्रत्यक्ष होता हैं, और जब अंगुली का त्वचा प्रत्यक्ष होवे, तब ही उंगलीके संयोगका त्वचा-प्रत्यक्ष होता हैं ; तैसे ही आत्म-मनके संयोगसे आत्माका मानस प्रत्यक्ष होता हैं तिस जगह संयोगका आश्रय आत्मा हैं। इसलिये संयोग का भी मानस प्रत्यक्ष होना चाहिये, किन्तु संयोगके आश्रय दो होते हैं, जिस जगह दोनोंका प्रत्यक्ष होय, वहां संयोग का प्रत्यक्ष होता हैं, जिस जगह एकका प्रत्यक्ष होय और एकका प्रत्यक्ष होय नहीं तिस जगह संयोग का प्रत्यक्ष नहीं होता हैं।

देखिए—जिस जगह दो घट का प्रत्यक्ष होता है तिस जगह तिस घट के संयोग का भी प्रत्यक्ष होता है, और घट की क्रिया से घट-आकाश का संयोग होता है, तिस जगह संयोग के आश्रय घट और आकाश दो हैं, उनमें घट तो प्रत्यक्ष है और आकाश प्रत्यक्ष नहीं है, इसलिये उनका संयोग भी प्रत्यक्ष नहीं होता। इस रीतिसे आत्मा-मनके संयोगके आश्रय आत्मा और मन है। तिसमें आत्माका तो मानस प्रत्यक्ष होता है और मन का नही होता है, इसलिये आत्मा-मनके संयोग का मानस प्रत्यक्ष होय नहीं। आत्माका और ज्ञान-सुखादिक का मानस प्रत्यक्ष होता है, और ज्ञान-सुखादिक को छोड़ के केवल आत्मा का भी प्रत्यक्ष नहीं होता है, और आत्मा को छोडकर केवल ज्ञान-सुखादिक का भी प्रत्यक्ष नहीं होता है, किन्तु ज्ञान, इच्छा, कृति, सुख, दुःख, द्वेष इन गुणों में किसी एक गुण का और आत्मा का मानस प्रत्यक्ष होता है। क्योंकि देखो— मैं जानू हूं, मैं इच्छावाला हूं, मैं प्रयत्नवाला हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं द्वेषवाला हूं, इस रीतिसे किसी गुण का विषय करता हुआ आत्मा का मानस प्रत्यक्ष होता है। इसलिये इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष-प्रमा के हेतु इन्द्रिय के सम्बन्ध हैं, वे व्यापार हैं, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष प्रमाण है, इन्द्रिय-जन्य साक्षात्कार-प्रत्यक्ष-प्रमा फल है।

इस रीति से न्याय शास्त्र में प्रत्यक्ष प्रमाण का सिद्धान्त कहा है। परन्तु इस सिद्धान्त में भी न्याय मत के आचार्य्य अपनी २ जुदी २ प्रक्रिया कहते हैं। सो भी किञ्चित् दिखाता हूं—गौरीकान्त भट्टाचार्य्य ऐसा कहता है कि, प्रत्यक्ष-प्रमा का इन्द्रिय करण नहीं है, किन्तु जो इन्द्रिय के सम्बन्ध व्यापार कहे हैं वे करण हैं, और इन्द्रिय कारण हैं। उनका अभिप्राय यह है कि,—व्यापारवाला कारणको करण नही कहना चाहिये, किन्तु जिसके होने से कार्य्य मे विलम्ब नहीं होय, और जिसके अव्यवहित-उत्तर-क्षण में कार्य्य होय, ऐसे कारण को करण कहना चाहिये। इन्द्रियका सम्बन्ध होने से प्रत्यक्ष-प्रमा रूप कार्य्य में विलम्ब नहीं होता है, किन्तु इन्द्रिय सम्बन्ध से अव्यवहित-उत्तर-क्षण में प्रत्यक्ष-प्रमा रूप कार्य्य अवश्यमेव होता है, इसलिये इन्द्रिय का सम्बन्ध ही करण होने से प्रत्यक्ष प्रमाण है, इन्द्रिय नहीं। इस आचार्य्य के मत में घट का करण कपाल नहीं, किन्तु कपाल का संयोग करण है, और कपाल, घट का कारण तो है किन्तु करण नहीं, तैसे ही पट के कारण तन्तु नहीं, किन्तु तन्तु संयोग है तन्तु पट के कारण हैं किन्तु करण नहीं। इस रीति से प्रथम पक्ष में जो व्यापार रूप कारण माने हैं सो इस आचार्य ने करण माने हैं, और जो करण माने हैं सो इस आचार्य्य ने कारण माने हैं। और प्रत्यक्ष ज्ञान का आश्रय आत्मा है सो ही कर्त्ता हैं। उस ही को प्रमाता और ज्ञाता कहते हैं। और प्रमा-ज्ञान के कर्त्ता को प्रमाता कहते हैं और ज्ञान का कर्त्ता ज्ञाता कहाता हैं, चाहे ज्ञान भ्रम होय अथवा प्रमा होय। और न्याय सिद्धान्त में जैसे प्रमा-ज्ञान इन्द्रिय-जन्य है तैसे ही भ्रम ज्ञान भी इन्द्रिय-जन्य है, परन्तु भ्रम ज्ञान का कारण जो इन्द्रिय उसको भ्रम ज्ञान का करण तो कहते हैं परन्तु प्रमाण नहीं कहते हैं, क्योंकि प्रमा का असाधारण कारण ही प्रमाण कहलाता है।

अव इस जगह किञ्चित् न्याय मत की रीतिसे भ्रमज्ञान की प्रक्रिया दिखाते हैं—जिस जगह भ्रम होता है तिस जगह न्याय मतमें यह रीति है कि दोषसहित-नेत्रका संयोग रज्जु (सीदड़ा, जेवडी, रस्सी)

से जब होता है तब रज्जुत्व धर्म से नेत्र का संयुक्त-समवाय सम्बन्ध तो है, परन्तु दोष के बल से रज्जुत्व भासे नहीं, किन्तु रज्जु में सर्पत्व भासता है, यद्यपि सर्पत्व से नेत्र का संयुक्त-समवाय सम्बन्ध नहीं है, तथापि इन्द्रिय के सम्बन्ध बिना ही दोष-बल से सर्पत्व का सम्बन्ध रज्जु में नेत्र से प्रतीत होता है। परन्तु जिस पुरुष को दण्डत्व की स्मृति पूर्व होवे तिस पुरुष को रज्जु में दण्डत्व भासे है और जिसको सर्पत्व की पूर्व स्मृति होवे तिसको रज्जु में सर्पत्व भासे है। और इन्द्रिय के प्रत्यक्ष वस्तुके ज्ञानमें विशेषण के ज्ञान की हेतुता है। सो ही दिखाते हैं कि—जिस जगह दोष-रहित इन्द्रियसे यथार्थ ज्ञान होय उस जगह भी विशेषण का ज्ञान हेतु है। इसलिये रज्जु-ज्ञान से पूर्व रज्जुत्व का ज्ञान होता है। क्योंकि देखो—जिस जगह श्वेत-उष्णीष (पगडी वाला) श्वेत-कंचुकवान यष्टिधर ब्राह्मण से नेत्र का संयोग होता है, तिस जगह कदाचित् मनुष्य है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् श्वेत कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् श्वेत-उष्णीष वाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् श्वेत-उष्णीषवाला श्वेत-कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होता है। इस जगह नेत्र संयोग तो सर्व ज्ञानों का साधारण कारण है, किन्तु ज्ञान की विलक्षणता में ऐसा हेतु है कि जिस जगह मनुष्यत्व रूप विशेषण का ज्ञान और नेत्र का संयोग होता है तिस जगह मनुष्य है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह ब्राह्मणत्व का ज्ञान और नेत्र का संयोग होता है तिस जगह ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह यष्टी (लकड़ी) और ब्राह्मणत्व का ज्ञान और नेत्र-संयोग होता है तिस जगह यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह कंचुक और ब्राह्मणत्व रूप दो विशेषणों का ज्ञान और नेत्र का संयोग होता है तिस जगह कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा

चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह श्वेतता-विशिष्ट कंचुक रूप और ब्राह्मणत्व रूप विशेषण का ज्ञान और नेत्र का संयोग होता है तिस जगह श्वेत कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह उष्णीष और ब्राह्मण रूप दो विशेषण का ज्ञान होता है तिस जगह उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह श्वेतता-विशिष्ट उष्णीष रूप विशेषण का और ब्राह्मणत्व रूप विशेषण का ज्ञान और नेत्र-संयोग होता है तिस जगह श्वेत उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, जिस जगह उष्णीष, कंचुक, यष्टि, ब्राह्मणत्व इन चार विशेषणोंका ज्ञान और नेत्रका संयोग होता है तिस जगह उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है, और जिस जगह श्वेतता-विशिष्ट उष्णीष विशेषण का और श्वेतता-विशिष्ट कंचुक विशेषण का तथा यष्टि और ब्राह्मणत्व रूप विशेषण का ज्ञान और नेत्र का संयोग होता है तिस जगह श्वेत-उष्णीष श्वेत-कंचुकी यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुष ज्ञान होता है। इस रीति से जिस विशेषण का पूर्व ज्ञान होता है, तिस ही विशेषणसे विशिष्टका इन्द्रियसे ज्ञान होता है, सो इन्द्रियका सम्बन्ध तो सर्व जगह तुल्य है, विशिष्ट प्रत्यक्षकी विलक्षणताका हेतु विलक्षण विशेषण ज्ञान हैं। यदि विलक्षण विशेषण ज्ञानको कारण नहीं मानें तो नेत्र संयोगसे ब्राह्मणके सर्व ज्ञान तुल्य होने चाहिये।

जिस जगह घटसे नेत्रका तथा त्वक्‌का संयोग होता है, तिस जगह कदाचित् घट है ऐसा प्रत्यक्ष होता है, कदाचित् पृथ्वी है ऐसा ज्ञान होता है, कदाचित् घट-पृथ्वी है ऐसा ज्ञान होता है। जिस जगह घट स्वरूप विशेषणका ज्ञान और इन्द्रियका संयोग होता है तिस जगह घट है ऐसा प्रत्यक्ष होता है, जिस जगह पृथिवीत्व रूप विशेषणका ज्ञान और इन्द्रियका संयोग होता है तिस जगह पृथिवी है ऐसा प्रत्यक्ष होता है, और जिस जगह घटत्व-पृथिवीत्व इन दोनों विशेषणका ज्ञान और इन्द्रियका संयोग होता है तिस जगह घट-पृथ्वी है ऐसा प्रत्यक्ष होता है।

इसरीतिसे घटसे इन्द्रियका संयोग रूप कारण एक है, और विषय घट भी एक है और घटत्व, पृथिवित्व जाति सदा घटमें रहती हैं, तो भी कदाचित् घटत्व-सहित घट मात्रको ज्ञान विषय करता है, परन्तु द्रव्यत्व-पृथिवित्वादिक जाति और रूपादिक गुणको 'घट है' ऐसा ज्ञान विषय करे नही, कदाचित् 'पृथिवी है' ऐसा घटका ज्ञान घटमें घटत्वको भी विषय करे नही, किन्तु पृथिवित्व और घट तथा पृथिवित्वके सम्बन्ध को विषय करता है , और कदाचित् पृथिवित्व, घटत्व जाति और तिसका घटमे सम्बन्ध तथा घट इनको विषय करता है ।

इस प्रकार ज्ञानका भेद सामग्री-भेद विना संभवे नहीं, किन्तु विशेषण ज्ञान रूप सामग्रीका भेद ही ज्ञानके विलक्षणताका हेतु है । क्योंकि देखो-जिस जगह 'घट है' ऐसा ज्ञान होता है तिस जगह घट, घटत्व और घटमें घटत्वका समवाय सम्बन्ध भासे है। और जिस जगह 'पृथिवी है' ऐसा घटका ज्ञान होता है तिस जगह घट और पृथिवीत्वका समवाय सम्बन्ध भासे है । तिस जगह घटत्व-पृथिवीत्व विशेषण है और घट विशेष्य है, क्यों कि सम्बन्धका प्रतियोगीको विशेषण कहते हैं और सम्बन्धका अनुयोगीको विशेष्य कहते हैं । जिसका सम्बन्ध होता है सो सम्बन्ध का प्रतियोगी है, और जिसमें सम्बन्ध होय सो अनुयोगी कहाता हैं । घटत्व, पृथिवित्वका समवाय सम्बन्ध घटमें भासे है, इसलिये घटत्व, पृथिवित्व समवाय सम्बन्धके प्रतियोगी होनेसे विशेषण है, और सम्बन्धका अनुयोगी घट है इसलिये विशेष्य है। क्योंकि जिस जगह 'दण्डी पुरुष हैं' ऐसा ज्ञान होय तिस जगह दण्डत्व-विशिष्ट दंड संयोग-सम्बन्धसे पुरुषत्व विशिष्ट-पुरुषमें भासे है। तिसका ही 'काष्ठवाला मनुष्य है' ऐसा ज्ञान होय तिस जगह काष्ठत्व-विशिष्ट दण्ड मनुष्यत्व-विशिष्ट पुरुषमें संयोग सम्बन्धसे भासे है। सो प्रथम ज्ञानमें दण्डत्व-विशिष्ट दण्ड संयोग का प्रतियोगी होनेसे विशेषण है, पुरुषत्व-विशिष्ट पुरुष संयोगका अनुयोगी होनेसे विशेष्य है । द्वितीय ज्ञानमें काष्ठत्व-विशिष्ट दण्ड प्रतियोगी है और मनुष्यत्व-विशिष्ट पुरुष अनुयोगी है । दोनों ज्ञानमें यद्यपि दण्ड विशेषण है और मनुष्य विशेष्य है, तथापि प्रथम ज्ञानमे तो दण्ड

विषय दण्डत्व भासे, काष्ठत्व भासे नहीं, पुरुषमें पुरुषत्व भासे मनुष्यत्व भासे नहीं, तैसे ही द्वितीय ज्ञानमे दण्ड विषय काष्ठत्वभासे है, दण्डत्व भासे नहीं, और पुरुषमें मनुष्यत्व भासे है, पुरुषत्व भासे नहीं, दण्डत्व और काष्ठत्व दण्ड के विशेषण हैं, क्योंकि दण्डत्वादिकका दण्डमे जो सम्बन्ध तिसके प्रतियोगी दण्डत्वादिक हैं, और दण्डत्वादिकका दण्डमे सम्बन्ध है इस लिये सम्बन्धका अनुयोगी होनेसे दण्ड विशेष्य है।

इस रीतिसे दण्डत्वका दण्ड विशेष्य है और पुरुषका दंड विशेषण है क्योंकि दंडका पुरुषमें जो संयोग सम्बन्ध तिसका प्रतियोगी दण्ड है, इस लिये पुरुषका विशेषण है, तिस संयोगका पुरुष अनुयोगी है, इसलिये विशेष्य है। जैसे पुरुषका दण्ड विशेषण है, तैसे ही पुरुषत्व, मनुष्यत्व भी पुरुषके विशेषण हैं, क्योंकि जैसे दण्डका पुरुषसे संयोग सम्बन्ध भासे है, तैसे ही पुरुषत्वादिक जातिका समवाय सम्बन्ध भासे है। तिस सम्बन्धके पुरुषत्वादिक प्रतियोगी होनेसे विशेषण है, और अनुयोगी होनेसे पुरुष विशेष्य है। परन्तु इतना भेद है कि पुरुषके धर्म जो पुरुषत्व-मनुष्यत्वादिक, वे तो केवल पुरुष व्यक्तिके विशेषण हैं, और पुरुषत्वादिक-धर्म-विशिष्ट-पुरुष-व्यक्तिमें दण्डादिक विशेषण हैं, दण्डादिक भी दण्डत्वादिक धर्मके विशेष्य है, और पुरुषत्वादिकके विशेषण हैं, परन्तु दण्डत्वादिक विशेषणके सम्बन्धको धार कर पुरुषादिक विशेष्यके सम्बन्धी उत्तरकालमें दण्डादिक होते हैं। इस रीतिसे केवल व्यक्तिमें पुरुषत्व-मनुष्यत्व विशेषण हैं और पुरुषत्व वा मनुष्यत्व-विशिष्ट व्यक्तिमें दण्डत्व वा काष्ठत्व-विशिष्ट दण्ड विशेषण हैं, और केवल दण्ड व्यक्तिमें दण्डत्व वा काष्ठत्व विशेषण हैं।

इस माफिक ज्ञानके विषय का विचार बहुत सूक्ष्म है। न्याय शास्त्रके चक्रवर्ती गदाधर भट्टाचार्य्यने संगति-ग्रंथमें बहुत लिखा हैं। और जयाराम पंचानन तथा रघुनाथ भट्टाचार्य्यने विषयता—विचार आदि ग्रन्थमें उन्हें लिखा है। सो जिज्ञासुको क्लिष्ट और अनुपयोगी जानकर दुर्बोध होनेसे समझनेके माफिक रीति मात्र लिखाई है।

अब इनके विशेषण और विशेष्य ज्ञानके भेद पूर्वक न्याय मतके भ्रम-ज्ञानकी समाप्तिके अर्थ इनका नवीन और प्राचीन रीतिसे आपसके झगड़े किञ्चित् दिखाते हैं कि—इस रीतिसे जो विशिष्ट ज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञान हैं सो विशेषणका ज्ञान किसी जगह तो स्मृति रूप है, किसी जगह निर्विकल्प है और किसी जगह विशिष्ट ज्ञान ही विशेषण-विशेष्य है। पहले विशेषण मात्रसे इन्द्रियका सम्बन्ध होता है। तिस जगह विशेषण मात्रसे इन्द्रिय सम्बंध जन्य है। सो भी विशिष्ट प्रत्यक्ष ही है। क्योंकि देखो-जिस जगह पुरुषके विना दण्डसे इंद्रिय सम्बंध होता है और उत्तर क्षणमें पुरुषसे सम्बन्ध होता है, तिस जगह दण्ड रूप विशेषणका ही ज्ञान उत्पन्न होता है तैसे ही उत्तरक्षणमे दण्डी पुरुष है यह विशिष्टका ज्ञान उत्पन्न होता है। अथवा घट है यह प्रथम जो विशिष्ट ज्ञान तिससे पूर्व घटत्व रूप विशेषणका इंद्रिय सम्बन्धसे निर्विकल्प ज्ञान होता है। उत्तरक्षणमें घट है यह घटत्व-विशिष्ट घट ज्ञान होता है। जिस इंद्रिय सम्बंधसे घटत्व का सविकल्प ज्ञान होता है तिसही इंद्रिय संबंधसे घटत्व-विशिष्ट घटत्वके निर्विकल्प ज्ञानमें इंद्रिय करण है, इंद्रिय का संयुक्त-समवाय सम्बन्ध व्यापार है और घटत्व-विशिष्ट घटके सविकल्प ज्ञानमें इन्द्रिय का संयुक्त-समवाय संबंध करण है। और निर्विकल्प ज्ञान व्यापार है।

इस रीतिसे किसी आधुनिक प्राचीन नैयायिकने निर्विकल्प और सविकल्प ज्ञानमें करणका भेद कहा है, सो न्याय सम्प्रदायसे विरुद्ध है, क्योंकि व्यापारवाला असाधारण कारणको करण कहते हैं। और इस मतमे प्रत्यक्ष ज्ञानका करण होनेसे इंद्रिय को ही प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। और आधुनिक नैयायिकोंकी रीतिसे तो सविकल्प ज्ञानका करण होनेसे इंद्रिय के संबंधको भी प्रमाण कहना चाहिये, परन्तु सम्प्रदाय वाले संबंधको प्रमाण कहते ही नही हैं। इसलिये दोनों प्रत्यक्ष ज्ञानके इन्द्रिय ही करण है। इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। निर्विकल्पज्ञानमे इन्द्रियका सम्बन्ध मात्र व्यापार है और सविकल्प ज्ञानमें इन्द्रियका सम्बन्ध और निर्विकल्पज्ञान दो व्यापार हैं, और दोनों

रीतिसे प्रत्यक्ष ज्ञानके करण होनेसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है। धर्म-धर्मी के सम्बन्धको विषय करने वाला ज्ञान सविकल्प ज्ञान कहाता है। 'घट है' इस ज्ञानसे घटमे घटत्वका समवाय भासे है इसलिये सविकल्प ज्ञानके धर्म, धर्मी, समवाय तीनों ही विषय हैं। इसलिये 'घट हैं' यह विशिष्ट ज्ञान सम्बंध को विषय करनेसे सविकल्प कहलाता है। तिससे भिन्न ज्ञान को निर्विकल्प ज्ञान कहते हैं। सविकल्प- निर्विकल्प ज्ञानके लक्षणका न्याय-शास्त्रमे बहुत विस्तार है, परन्तु अतिक्लिष्ट होनेसे विस्तार पूर्वक नहीं लिखा गया।

इसरीतिसे प्रथम विशिष्ट-ज्ञानका जनक विशेषण-ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है और एक दफे 'घट है' ऐसा विशिष्ट ज्ञान हो कर फिर घटका विशिष्ट ज्ञान होय तिस जगह घटसे इन्द्रियका सम्बन्ध है। तैसे ही पूर्वअनुभवकरी घटत्वकी स्मृति होती है तिससे उत्तर क्षणमे 'घट हैं' यह विशिष्ट ज्ञान होता है।

इस प्रकार द्वितीयादिक विशिष्ट ज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञान स्मृति रूप है। और जिस जगह दोष सहित नेत्रका रज्जुसे अथवा शुक्ति (सीप) से सम्बंध होता है तिस जगह दोषके बलसे सर्पत्वकी और रजतत्वकी स्मृति होती है रज्जुत्व और शुक्तित्वकी नही, क्योंकि विशिष्ट ज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञान जो धर्मको विषय करे सो ही धर्म विशिष्ट ज्ञानसे विषयमें भासे है। सर्पत्व और रज्जुत्वको विषय करे है इसलिये सर्प है यह रज्जुके विशिष्ट ज्ञानसे रज्जुमें सर्पत्व भासे है। और 'रजत (चादी) हैं' यह शुक्तिके विशिष्ट ज्ञानसे शुक्तिमें रजतत्व भासे हैं। 'सर्प है' इस विशिष्ट भ्रममें विशेष्य रज्जु है और सर्पत्व विशेषण हैं, क्योंकि सर्पत्वका समवाय संबंध रज्जुमें भासे है, तिस समवायका सर्पत्व प्रतियोगी है और रज्जु अनुयोगी है, तैसे "रूपा है" यह भ्रमसे शुक्तिमें रजतत्व का समवाय भासे है। तिस समवायका प्रतियोगी रजतत्व है इसलिये विशेषण है और शुक्ति अनुयोगी है इसलिये विशेष्य है।

इस रीतिसे सर्व भ्रम ज्ञानसे विशेषणके अभाववालेमें विशेषण

भासे है । इसलिये न्याय मतमें विशेषणके अभाव वालेमें विशेषण है ऐसी प्रतीतिको भ्रम या अयथार्थ ज्ञान कहते हैं । इसीका नाम अन्यथा-ख्याति भी है । इस भ्रम ज्ञानमें बहुत सूक्ष्म, क्लिष्ट, विवेक-शून्य विचार अन्यथाख्यातिवाद नामक ग्रन्थमें चक्रवर्ति भट्टाचार्य, गदाधर भट्टाचार्यने लिखा है । सो ग्रंथ बढजानेके भयसे और न्यायमतको बोलीमें क्लिष्ट पदों की भरमार होनेसे जिज्ञासु को अनुपयोगी जान करके विस्तारसे नहीं लिखाते हैं । इस रीतिसे न्यायमतमें सर्पादि भ्रमके विषय रज्जु आदिक है, सर्पादिक नहीं । और प्रत्यक्ष रूप भ्रम-ज्ञान भी इन्द्रिय-जन्य है ।

इसरीतिसे इन न्याय मतवाले आचार्योंने आपसमें ही अनेक तरहके जुदे २ सदेह उठाकर जुदे २ ग्रन्थ रचकर जिज्ञासुओंको भ्रम जालमें गेरा, इनके इन्द्रिय-जन्य प्रत्यक्ष ज्ञानमें न हुआ नीवेडा, केवल क्लिष्ट शब्दोंको रचकर बोली बोलने का ही भ्रम जाल फेरा, जो इन ग्रन्थोंको पढ़े और तर्क करे तो उमर तक कदापि न आवे आत्म ज्ञान नेडा, ऐसी जब इनकी पोल देखी तब वेदान्तियोंने अपना किया जुदा डेरा, सो उनका भी किञ्चित् भावार्थ दिखानेमें हुआ दिल मेरा ।

इसलिये वेदान्तशास्त्रकी रीतिसे लिखाते हैं कि—सर्पभ्रमका विषय रज्जु नहीं है, किन्तु अनिर्वचनीय सर्प है, और भ्रमज्ञान इन्द्रिय-जन्य ही नही है । और न्यामतमें जैसे सर्व ज्ञानोंका आश्रय आत्मा है तैसा वेदान्त, मतमें आत्मा आश्रय नहीं है, किन्तु ज्ञानका उपादानकारण अंतःकरण है इसलिये-अन्तःकरण आश्रय है । और जो न्यायमतमें सुखादिक आत्मा के गुण कहे हैं, वे भी सर्व वेदान्त सिद्धान्तमें अन्तःकरण के परिणाम हैं, इसलिये अन्तःकरणके धर्म हैं, आत्माके नहीं । परन्तु भ्रमज्ञान अन्तःकरणका परिणाम नही है किन्तु अविद्याका परिणाम है । सो इन वेदान्तीयोंका इनके शास्त्रके अनुसार भ्रमज्ञानका संक्षेपसे स्वरूप दिखाते हैः— सर्प-सस्कार-सहित पुरुषके दोप-सहित नेत्रका रज्जुसे सम्बन्ध होता है, तब रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासे नही, और रज्जुमें जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासे नहीं, किन्तु रज्जुमें सामान्य

धर्म इदंता भासे हैं, तैसे ही शुक्तिमें शुक्तित्व और नीलपृष्ठता, त्रिकोणता भासे नही किन्तु सामान्य धर्म इदन्ता भासे है। इसलिये नेत्र-द्वारा अन्तःकरण रज्जुको प्राप्त होकर इदमाकार परिणामकों प्राप्त होता है, तिस इदमाकार-वृत्ति-उपहित-चेतननिष्ठ-अविद्या के सर्पाकार और ज्ञानाकार दो परिणाम होते हैं, तैसे ही दण्ड-संस्कार-सहित पुरुषके दोषसहित नेत्रकी रज्जुके सम्बंधसे जहां वृत्ति होवे तहां दण्ड और तिसका ज्ञान अविद्याके परिणाम होते हैं। माला-संस्कार-सहित पुरुषके सदोष नेत्रका रज्जु से सम्बन्ध होकर जिसकी इदमाकार वृत्ति होवे तिसकी वृत्ति-उपहित-चेतनमें स्थित अविद्याका माला और तिसका ज्ञान-परिणाम होता है। जिस जगह एक रज्जुसे तीन पुरुषके सदोष नेत्रका सम्बन्ध होकर सर्प, दण्ड, माला, एक एक का तिनको भ्रम होय, तहां जिसकी वृत्ति उपहितमें जो विषय उत्पन्न हुआ है सो तिसको ही प्रतीत होता है, अन्यको नहीं।

इस रीतिसे भ्रमज्ञान इन्द्रिय-जन्य नहीं, किन्तु अविद्याकी वृत्तिरूप है, परन्तु जो वृत्ति-उपहित-चेतनमें स्थित अविद्याका परीणाम भ्रम है सो इदमाकार-वृत्ति नेत्रसे रज्जुआदिक विषयके सम्बन्धसे होती है। इसलिये भ्रमज्ञानमें इन्द्रिय-जन्यता-प्रतीति होती है। अनिर्वचनीय-ख्यातिका निरूपण और अन्यथाख्याति आदिकका खण्डन गौड ब्रह्मानन्द कृत ख्यातिविचारमें लिखा है सो अति कठिन है, इसलिये लिखा नहीं।

इस रीतिसे वेदान्त सिद्धान्तमें भ्रमज्ञान होता है, इसलिये अभावके प्रत्यक्षका हेतु विशेषणता सम्बन्धका अंगीकार निष्फल है। और जाति-व्यक्तिका समवाय सम्बंध नहीं, किन्तु तादात्म्य सम्बन्ध है, तैसे ही गुण-गुणीका, क्रिया-क्रियावानका, कार्य-उपादान-कारणका भी तादात्म्य सम्बंध है। इसलिये समवायके स्थानमें तादात्म्य कहते हैं। और जैसे त्वक्-आदिक इन्द्रियाँ भूत-जन्य है, तैसे ही श्रोत्र इन्द्रिय भी आकाश-जन्य है आकाश रूप नहीं। और मीमांसामतमें तो शब्द द्रव्य है, वेदान्त मतमें गुण है, परन्तु न्यायमतमें तो शब्द आकाशका ही गुण है।

वेदान्तमतमें विद्यारण्य स्वामीने पाच भूतका गुण कहा है । और वेदान्तमतमें वाचस्पतिमिश्रने तो मनको इन्द्रिय माना है, और ग्रंथकारोने मनको इन्द्रिय नही माना है । जिनके मतमें मन इन्द्रिय नहीं, उनके मतमें सुख-दुःखका ज्ञान प्रमाण-जन्य नहीं, इसलिये प्रमा नहीं, किन्तु सुख-दुःख साक्षी भासे है । और वाचस्पतिके मतमें सुखादिकका ज्ञान मनरूप प्रमाण जन्य है, इसलिये प्रमा है, और ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान तो दोनों मतमे प्रमा है, वाचस्पतिके मतमें मनरूप पमाण से जन्य है और के मतमें शब्दरूप प्रमाणसे जन्य है ।

अब इस जगह इन लोगोंमे जो कुछ आपसमें प्रत्यक्षप्रमाण रूप मनको इन्द्रिय माननेमें भेद हैं तिसको भी किंचित् दीखाते हैं कि जिस मतमें मन इन्द्रिय नही है, तिस वेदान्तीके मतमें इन्द्रिय-जन्यता प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण भी नहीं है, किन्तु विषय-चेतनका वृत्तिसे अभेद ही प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण है । इसलिये वाचस्पतिका मत समीचीन नहीं है, क्योंकि वाचस्पतिके मतमे ऐसा दोष मनको इन्द्रिय नही माननेवाले देते हैं कि एक तो मनका असाधारण विषय नही है, इसलिये मन इन्द्रिय नहीं, और दूसरा गीताके वचनसे विरोध होता है, क्योंकि गीताके तीसरे अध्यायके चौथे श्लोकमें इन्द्रियसे मन परे हैं ऐसा कहा है, यदि मन भी इन्द्रिय होता तो इन्द्रियसे मन परे हैं यह कहना कदापि नहीं बनता । और मानस ज्ञानका विषय ब्रह्म भी नही है । यह लेख श्रुति-स्मृतिमें है । और वाचस्पतिने मनको इन्द्रिय मान करके ब्रह्म-साक्षात्कार भी मनरूप इन्द्रियसे जन्य है, इसलिये मानस हैं यह कहा है सो भी विरुद्ध है । और अन्तःकरणकी अवस्थाको मन कहते हैं सो अंतःकरण प्रत्यक्ष ज्ञानका आश्रय होनेसे कर्ता है । जो कर्ता होता है सो कारण नहीं होता है इसलिये मन इन्द्रिय नहीं है । यह दोष मनको इन्द्रिय माननेमें देते हैं । सो विचार करके देखो तो दोष नहीं है, क्योंकि मनका असाधारण विषय सुख, दुःख, इच्छा आदिक है, और अंतःकरण विशिष्ट जीव है । और गीतामें जो इन्द्रियसे मन परे है ऐसा कहा है सो तिस जगह इन्द्रिय शब्दसे बाह्य इन्द्रियका ग्रहण है, इसलिये बाह्य इन्द्रियसे मन परे है ।

इस रीतिसे गीता वचनका अर्थ है सो विरुद्ध नहीं और मानस ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है, यह कहनेका भी अभिप्राय ऐसा है कि— शम-दम आदि सस्कार रहित विक्षिप्त मनसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है। और मानस ज्ञानकी फल-व्याप्यता ब्रह्म विषय नहीं है, क्योंकि वृत्तिमें चिदाभास्य फल कहा है, तिसका विषय ब्रह्म नहीं है, क्योंकि घटादिक अनआत्म पदार्थको वृत्ति प्राप्ति होती है तिस जगह वृत्ति और चिदाभास्य दोनोंके व्याप्य कहिये विषय पदार्थ होता है और ब्रह्म-आकार वृत्तिमें व्याप्य कहिये विषय ब्रह्म नहीं है। जैसें मनकी विषयता ब्रह्म-विषय-निषेधकरी है तैसे ही शब्दकी विषयता भी निषेधकरी है। क्योंकि देखो—"इतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा" यह निषेध वचन है। इसलिये शब्द-जन्य ज्ञानका विषय भी ब्रह्म नहीं है। ऐसा अर्थ अंगीकार होय तो महावाक्य भी शब्दरूप ही है। सो तिससे उत्पन्न हुए ज्ञानका भी विषय ब्रह्म नहीं हो सकेगा और सिद्धांतका भी भंग होजायगा। इसलिये निषेध वचनका ऐसा अर्थ है कि शब्दकी शक्ति-वृत्ति-जन्य ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है, किन्तु शब्दकी लक्षणा-वृत्ति-ज्ञानका विषय ब्रह्म है तैसा ही लक्षणा-वृत्ति-जन्य ज्ञानमें भी चिदाभास्य रूप फलका विषय ब्रह्म नहीं है, किन्तु आवर्ण-भंगरूप-वृत्तिमात्रकी विषयता ब्रह्म विषय है। जैसे शब्द-जन्य ज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं है, तैसे ही मानसज्ञान की विषयताका भी सर्वथा निषेध नहीं है, किन्तु संस्कार रहित मनकी भ्रमज्ञानमें हेतुता नहीं और मानसज्ञानमें जो चिदाभास्य अंश हैं तिसकी विषयता नहीं है। कदाचित् ऐसा कोई कहे कि भ्रमज्ञानमें मनको कारणता है, तो दो प्रमाण जन्य ब्रह्मज्ञान कहना पड़ेगा, क्योंकि महावाक्यमें ब्रह्मज्ञान की कारणता तो भाष्यकारादिकने भी सर्वत्र प्रतिपादन करी हैं, तिस का तो निषेध होय नहीं और मनकीभी कारणता कहे तो प्रमाका करण प्रमाण कहे हैं; इसलिये ब्रह्म-प्रमाके शब्द और मन दो प्रमाण सिद्ध हो जायगे, सो दृष्ट-विरुद्ध है, क्योंकि चाक्षुपादिक प्रमाके नेत्र आदिक एक एक ही प्रमाण हैं। किसी प्रमाके हेतु दो प्रमाण देखे सुने नहीं हैं, क्योंकि नैयायिक भी चाक्षुपआदिक प्रमामें मनको सहकारी मानते हैं, प्रमाण तो

नेत्र आदिकको ही मानते हैं, मनको नही और सुखादिकके ज्ञानमें केवल मनको ही प्रमाण मानते हैं अन्यको नहीं। इसलिये एक प्रमाकी दोको प्रमाणता कहना दृष्ट-विरुद्ध है। जिस जगह एक पदार्थमें दो इन्द्रियोंकी योग्यता होय, जैसे घटमें नेत्र-त्वक्की योग्यता है, तिस जगह भी दो प्रमाणसे एक प्रमा होय नही, किन्तु, नेत्रप्रमाणसे घटकी चाक्षुष प्रमा होती है और त्वक्प्रमाणसे त्वचाप्रमा होती हैं। दो प्रमाणसे एक प्रमाकी उत्पत्ति देखी नहीं। यहां पर यह शका भी नहीं बने कि प्रत्यभिज्ञा-प्रत्यक्ष होय तिस जगह पूर्व अनुभव और इन्द्रिय दो प्रमाणसे एक प्रमा होती है, इसलिये विरोध नही है, क्योंकि जिस जगह प्रत्यभिज्ञाति होती है तिस जगह पूर्व अनुभव संस्कारद्वारा हेतु है और संयोग-आदिक-सम्बधद्वारा इन्द्रिय हेतु है, इसलिये संस्कार रूप व्यापारवाला कारण पूर्वअनुभव है, और सम्बधरूप व्यापारवाला कारण इन्द्रिय है, इसलिये प्रमाके कारण होने से दोनो प्रमाण हैं, तैसे ही ब्रह्म-साक्षात्कार रूप प्रमाके शब्द और मन दो प्रमाण हैं। यह कहनेमे दृष्टविरोध हैं, उल्टा ब्रह्म-साक्षात्कारको मनरूप इन्द्रिय-जन्य-प्रत्यक्षता निर्विवादसे सिद्ध होती है। और ब्रह्मज्ञानको केवल शब्द-जन्य माने तो विवादसे प्रत्यक्षता सिद्ध करते हैं। औरदशम दृष्टान्त विषय भी इन्द्रिय-जन्यता और शब्दजन्यताका विवाद है। इन्द्रिय-जन्य ज्ञानकी प्रत्यक्षतामें विवाद नहीं। जो ऐसे कहें की प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षमें पूर्व-अनुभव-जन्य संस्कार सहकारी है, केवल इन्द्रिय प्रमाण हैं तिसका यह समाधान है कि ब्रह्म-साक्षात्कार-प्रमामें भी शब्द सहकारी है, केवल मन प्रमाण है। वेदान्त परिभाषादिक ग्रन्थमे जो इन्द्रिय-जन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष कहनेमें दोष कहे हैं तिसके सम्यक् समाधान न्यायकौस्तुभ आदिके ग्रंथों में लिखें हैं। जिसको जिज्ञासा होवे सो उनमें देख ले। तथा, जो मनको इन्द्रिय माननेमें दोष कहा था कि ज्ञानका आश्रय होनेसे अन्त.-करण कर्ता है इसलिये ज्ञानका करण बने नही। यह दोष भी नही, क्योंकि धर्मी अतःकरण तो ज्ञानका आश्रय होनेसे कर्ता है और अन्तःकरणका परिणामरूप मन ज्ञानका करण है। इसरीतिसे मन भी प्रमा ज्ञानका करण है, इस लिये प्रमाण है, जेहा इन्द्रियसे द्रव्यका

प्रत्यक्ष होता हैं तहां तो न्याय और वेदान्त मतमें विलक्षणता नहीं, किन्तु द्रव्यका इन्द्रियसे संयोग ही सम्बन्ध हैं और इन्द्रियसे द्रव्यकी जातिका अथवा गुणका प्रत्यक्ष होता है, तिस जगह न्यायमतमे तो संयुक्त-समवाय सम्बन्ध है, और वेदान्तमतमे संयुक्त-तादात्म्य सम्बध है। क्योंकि न्याय मतमे जिसका समवाय सम्बन्ध हैं वेदान्त मतमें तिसका तादात्म्य सम्बन्ध हैं। गुणकी जातीके प्रत्यक्षमे न्याय रीतिसे संयुक्त-समवेत-समवाय सम्बन्ध हैं और वेदान्तमें संयुक्त-तादात्म्य-वत्तादात्म्य सम्बध हैं, इसीको संयुक्ताभिन्न-तादात्म्य भी कहा है। इन्द्रियसे संयुक्त जो घटादिक तिसमे तादात्म्यवत् कहिये तादात्म्य सम्बधवाले रूपादिक हैं, तिसमें तादात्म्य सम्बध रूपत्वादिक जाति का है। जैसे घटादिकमे रूपादिक तादात्म्यवत् हैं, तैसे ही घटादिकसे अभिन्न भी कहते हैं। अभिन्नका ही तादात्म्य सम्बन्ध हैं। जिस जगह श्रोत्रसे शब्दका साक्षात्कार होता है, तिस जगह न्यायमत में तो समवाय सम्बध है, और वेदान्तमतमे श्रोत्र इन्द्रिय आकाशका कार्य है, इसलिये जैसे चक्षुरादिकमे क्रिया होवे है तैसे ही श्रोत्रमें क्रिया होकर शब्दवाले द्रव्यसे श्रोत्रका संयोग होता हे, तिस श्रोत्र-संयुक्त द्रव्यमे शब्दका तादात्म्य सम्बन्ध है, क्योंकि वेदान्तमतमे पंचभूतका गुण शब्द होनेसे भेर्यादिकमें भी शब्द है। इसलिये श्रोत्रके संयुक्त-तादात्म्य सम्बन्धसे शब्दका प्रत्यक्ष होता है, और जिस जगह शब्दत्वका प्रत्यक्ष होय तिस जगह श्रोत्रका संयुक्त-तादात्म्यवत्तादात्म्य सम्बन्ध है। वेदान्तमत में जैसे शब्दत्व जाति है तैसे तारत्व-मंदत्व भी जाति है, न्याय मतके माफिक जातिसे भिन्न उपाधी नहीं, इसलिये शब्दत्वजातिका जो श्रोत्रसे सम्बन्ध है। सो ही सम्बन्ध तारत्व-मन्दत्वका है, विशेषणता सम्बंध नहीं।

और, अभावका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाणसे होता है, किसी इन्द्रियसे अभावका ज्ञान होता नही, इस लिये अभावका इन्द्रियसे सम्बन्ध अपेक्षित नही। यह न्यायमत और वेदान्तमतका प्रत्यक्ष विचारमें भेद हैं। जिस जगह एक रज्जुसे तीन पुरुषोंके दोप-सहित नेत्रका सम्बन्ध होकर

सर्प, दण्ड, माला, एक एकका तीनों को भ्रम होता है तिस जगह जिसकी वृत्ति उपहितमें जो विषय ऊपजा है सो ही विषय तिसको प्रतीत होता है, अन्यको नही। इसरीतिसे भ्रमज्ञान इन्द्रियजन्य नही किन्तु अविद्याकी वृत्ति रूप है। परन्तु जिस वृत्ति-उपहित चेतनमें स्थित अविद्याका परिणाम भ्रम है, सो इदमाकार-वृत्ति-नेत्रसे रज्जु आदिक विषयका सम्बन्ध होता है। इस लिये भ्रमज्ञानमें इन्द्रियजन्यता प्रतीत होती है, परन्तु इन्द्रियजन्य ज्ञान नही है। इसलिये वेदान्तमतवाले अनिर्वचनीय ख्याति मानते हैं। इस अनिर्वचनीय ख्यातिका निरूपण और अन्यथा-ख्याति आदिकका खण्डन गौड ब्रह्मानन्द रचित ख्यातिविचारमें लिखा है। सो ख्यातिका प्रसङ्ग तो हमको इस जगह लिखाना नही है, मेरे को तो केवल प्रसङ्गसे इतना लिखाना पड़ा। इसतरह वेदान्तसिद्धांत मे भ्रमज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं हैं, और दूसरा अभावका ज्ञान भी इन्द्रिय-जन्य नही, किन्तु अनुपलब्धि नाम प्रमाणसे अभावका ज्ञान होता है। इस लिये अभावके प्रत्यक्षका हेतु विशेषणता सम्बन्ध अङ्गीकार करना निष्फल है। और जाति-व्यक्तिका समवाय सम्बन्ध भी नही, किन्तु तादात्म्य सम्बन्ध है, उसी रीतिसे गुण-गुणीका अथवा क्रिया-क्रियावानका, कार्य-उपादानकारणका भी तादात्म्य सम्बन्ध है। इस लिये समवायके स्थानमे तादात्म्य कहना ठीक है। और जैसे त्वगादिक इन्द्रियाँ भूतजन्य हैं तैसे ही श्रोत्र इन्द्रिय भी आकाशरूप नहीं। और मीमांसाके मतमें तो शब्द द्रव्य है, वेदान्तमतमें गुण है, परन्तु न्यायमतमें तो शब्द आकाशका ही गुण है। और वेदान्तवाले विद्यारण्यस्वामी पांचभूतका गुण कहते हैं। और वेदान्तमतमें वाचस्पति मिश्र तो मनको इन्द्रिय मानता है, और ग्रन्थकार वेदान्तमतवाले मनको इन्द्रिय नही मानते हैं। कई वेदान्तियोंके मतमें सुख-दुखका ज्ञान प्रमाणजन्य नहीं इस लिये प्रमा नहीं, किन्तु सुख-दुःख साक्षी भासै। और वाचस्पतिके मतमें सुखादिकका ज्ञान मन-रूप प्रमाणजन्य है, इस लिये प्रमा है। और ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान तो दोनों मतमे प्रमा है। वाचस्पतिके मतमें मनरूप प्रमाणजन्य है। और जिनके मतमे

मनको इन्द्रिय नहीं मानी है, तिनके मतमें इन्द्रियजन्यता प्रत्यक्ष ज्ञाका लक्षण नहीं, किन्तु विषय-चेतनका वृत्ति-चेतनसे अभेद हो प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण है। इस रीतिसे इनके प्रत्यक्ष ज्ञानमें अनेक तरहके आपसमें झगड़े हैं। जो इनके ग्रन्थानुसार लिखाऊँ तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा, इस भय से नहीं लिखाता।

अब इस जगह बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये कि, न्यायमतमें कोई तो इन्द्रियको करण मानता है और कोई कारण मानता है, और कोई सन्निकर्षादिकको प्रमाण मानता है। जब इसरीतिसे आपसमें ही इनके विवाद चल रहे हैं तो जिज्ञासुको क्योंकर इनके कहने मे विश्वास होय? क्योंकि जिनके मनमे आप ही संदेह बना हुआ है वे दूसरेका सन्देह क्योंकर दूर करेंगे? अलबत्त, इनके इस विचार के ऊपर बुद्धिमान लोग विचार करेंगे तो डूंगरको खोदना और चूहे को निकालना ही नैयायिकके शास्त्रोंके अवगाहनका फल मालूम होगा। इस रीतिसे वेदान्तमतवालेके प्रत्यक्षके कथनमें भी जुदे २ आचार्योंकी जुदी २ प्रक्रिया है। इसलिये इनका भी प्रत्यक्ष प्रमाण कहना ठीक नहीं। इन मतवालोंके प्रत्यक्ष प्रमाणको देखकर मेरेको एक मसल याद आती है कि रागाका भाई प्रागा। सोही दिखाते हैं कि जैसे नैयायिकने जिज्ञासु को भ्रमजालमें गेरनेके वास्ते किसी जगह चार सम्बन्ध और किसी जगह तीन सम्बन्ध लगा कर केवल तोत का झाड़ बना लिया है। समवाय सम्बन्ध, समवेत-समवाय सम्बन्ध, विशेषणता सम्बन्ध, संयोग सम्बन्ध लगाकर प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन तो किया, किन्तु जिज्ञासुको उल्टा भ्रमज्ञान में गेर दिया; प्रत्यक्ष प्रमाणका कुछ निर्णय न किया; केवल बाह्यदृष्टिको देखकर प्रत्यक्ष ज्ञानमें लिया, आत्मज्ञानका किंचित् भी वर्णन न किया; इसलिये नैयायिककी पोल देख वेदान्तीने अविद्याका झगड़ा उठा दिया। सो वेदान्तियोंने भी केवल अविद्याको मान कर अन्तःकरणसे ही प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन किया, उस ब्रह्मरूप आत्माके प्रत्यक्ष ज्ञानका तो किञ्चित् भी वर्णन न किया। और जो कितने ही वेदान्ती मन

को इन्द्रिय नही मानते हैं, वे लोग भी केवल विवेकशून्य बुद्धि-विचक्षण-पणा दिखाय कर ग्रन्थोंमें केवल मनःकल्पित वर्णन करते हैं। और जिन ग्रन्थोका मनके इन्द्रिय न होनेमें प्रमाण देते हैं, वे ग्रन्थ भी भी, उनके ही जैसे पुरुषोंके रचे हुए हैं। इसपर एक मसल याद आई है सो लिखता हूं कि, "अन्धे चूहे थोथे धान, जैसे गुरू तैसे जजमान"। इसरीतिसे इन मतावलम्बियोंका प्रत्यक्ष प्रमाण जो है सो उपेक्षा करनेके योग्य है अर्थात् जिज्ञासुके अनुपयोगी है। दूसरा जो ये लोग प्रमाण और प्रमासे प्रमेयका ज्ञान होनेको कहते हैं, सो यह भी इनका कहना विवेकशून्य है, क्योंकि जब प्रमाण और प्रमेयसे ही जिज्ञासुको यथावत् ज्ञान हो जाय तो फिर प्रमाका मानना निष्फल है, क्योकि जब प्रमाणसे प्रमा पैदा होगी तब प्रमेयका ज्ञान प्रमा करेगी, तब तो प्रमाणका कुछ काम नहीं रहा, प्रमा ही ज्ञान करानेवाली ठहरी, तो फिर प्रमाणको मानना ही निष्प्रयोजन हो गया। इस लिये हे भोले भाइयो! इस पदार्थको ज्ञानमें प्रमाण और प्रमा दो मत कहो, किन्तु एक प्रमाण कोई अङ्गीकार करो, और इस अज्ञान को परिहरो, सद्गुरुका लक्षण प्रमाणका हृदय बीच धरो।

अब स्याद्वादसिद्धान्तमे प्रमाणका लक्षण किया है सो दिखाते हैं कि,—"स्वपरव्यवसायि ज्ञान प्रमाणम्" ऐसा श्रीप्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार ग्रन्थमें सूत्र कहा है। इसका स्याद्वादरत्नाकर अथवा स्याद्वाद-रत्नाकर-अवतारिका आदि ग्रन्थोंमें विस्तार से वर्णन है। एक तो वे ग्रन्थ मेरे पास नहीं है, और दूसरा, ग्रन्थ बढ़ जानेका भी भय है, तीसरा, इन खण्डन-मण्डनों के विषय बहुत सूक्ष्म विचार-पूर्ण और क्लिष्ट है, इन कारणों से विस्तार न करके श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवने जिस रीति से प्रमाण का वर्णन किया है उस्त रीति से किंचित् लिखाता हूं कि जिन मत मे प्रमाण के दो भेद हैं, एक तो प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष नाम स्पष्ट का है अर्थात् अनुमानादिकसे अतिउत्तम निर्मल प्रकाशवाला होय उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। सो प्रत्यक्षके भी दो भेद हैं, एक तो सांव्यवहारिक, सराद्

पारमार्थिक। प्रथम सांव्यवहारिकका वर्णन करते हैं कि एक तो पाच इन्द्रियों से होय, दूसरा मन इन्द्रियसे होय। सो इन्द्रियसे ज्ञान होने के चार कारण (हेतु) है सो वे चारों हेतु एक २ से अतिउत्तम हैं सो अव उन चारों कारणोंका नाम कहतेहैं कि एक तो अवग्रह, दूसरा ईहा, तीसरा अवाय, चौथा धारणा। यदुक्तं प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारे "एतद्द्वितयमप्यवग्रहेहावायधारणाभेदादेकैकशश्चतुर्विकल्प" इसका विशेष विस्तार और लक्षण स्याद्वादरत्नाकरावतारिका अथवा स्याद्वाद-रत्नाकर आदिक जो इस ग्रंथकी टीकाएं हैं, उनमें है। चारों हेतु सर्व इन्द्रियोंके साथ जोडना. इसरीतिसे इन्द्रिय-प्रत्यक्ष-ज्ञानके भेद हैं। इनक जिनमतमे व्यवहारिक प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं। अव दूसरा पारमार्थिक ज्ञानो है। सो इन्द्रियके विना केवल आत्मा-मात्रसे प्रत्यक्ष होता है इसीको अतीन्द्रिय-प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, क्योंकि जिसमें इन्द्रियआदिककी अपेक्षा नहीं है उसका नाम अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है। उसके भी दो भेद हैं, एक तो देशप्रत्यक्ष दूसरा सर्वप्रत्यक्ष। देशप्रत्यक्षके भी दो भेद हैं, एकतो अवधिज्ञान दूसरा मनपर्यव ज्ञान। अवधिज्ञानके दो भेद हैं, एक तो कर्मक्षय होनेसे, दूसरा स्वभावसे। कर्मक्षयसे होनेवाले अवधिज्ञानके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट करके असंख्यात भेद होते हैं, और कर्मग्रन्थादिकमें छः प्रकारके मुख्य भेद लिखे भीहैं। और जो स्वाभाविक अवधिज्ञान है, सो देवगति और नारकगतिमें होता है। देवलोकमें जिस २ पुण्य प्रकृतिसे जिस२ देवलोकमें जो२ देवता उत्पन्न होता है उसीके माफिक विशेष २ उत्तम अवधिज्ञान होता है, और नारको में जिस २ पापके उदयसे जिस २ नारकीमें जाता है तिस २ पापके उदयसे मलिन २ अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। इसरीतिसे इस अवधिज्ञान देशप्रत्यक्षके अनेक भेद हैं। दूसरा जो देशप्रत्यक्ष मनपर्यव ज्ञान है, वह विशेषकरके संयमकी शुद्धि और चारित्र के पालनेसे जव कर्मक्षय होता है तव ही उत्पन्न होता है। उस मनपर्यव ज्ञान के दो भेद हैं, एक तो विपुलमति, दूसरा ऋजुमति। अव इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि मनपर्यवज्ञान किसको कहते हैं ? उसका सन्देह दूर करने के वास्ते इस मनपर्यवज्ञानका आशय कहते हैं कि ढ़ाई दीपमें जो

संज्ञि-पंचेन्द्रिय अर्थात् मनवाले मनुष्योंका जो संकल्प-विकल्प अर्थात् जैसौ २ जिसके मन में वासना अथवा विचार होय उसको जो यथावत् जाने उसका नाम मनपर्यवज्ञान हैं, क्योंकि दूसरेके मनकी बातको जानना उसीका नाम मनपर्यव ज्ञान है। सो ढाई द्वीप अर्थात् जम्बू-द्वीप, धातकी खण्ड, और आधा पुष्करावर्त, इस अढ़ाई द्वीपके मनवाले मनुष्योंके मनकी बातको सम्पूर्ण जाने और जो आगे कहा जानेवाला केवलज्ञान को उत्पन्न करके ही नाश पावें उसको तो विपुलमति मनपर्यव ज्ञान कहते हैं, और थोड़ेसे मनुष्योंके मनकी बात जाने तथा विना ही केवलज्ञान उत्पन्न किये नाश पावे उसको ऋजुमति मनपर्यव ज्ञान कहते हैं। इस रीति से श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवने अपने ज्ञानमें देख कर देशप्रत्यक्ष ज्ञानका सिद्धान्तोंमें वर्णन किया है। अब सर्वप्रत्यक्ष ज्ञान जिनमत में उसको कहते हैं कि समस्त ज्ञानावरणादिक चार कर्मको क्षय करके जो ज्ञान उत्पन्न होय उसका नाम सर्वप्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान है। उसीको केवलज्ञान कहते हैं। उस सर्वप्रत्यक्ष ज्ञानमें मुख्यतः आत्मज्ञान—अपने आत्मस्वरूप को देखनेवाले पुरुष का फिर जन्म मरण नहीं होता है। और उसके इस प्रत्यक्ष ज्ञानसे लोक, अलोक, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानमें जैसा कुछ हाल है तैसा यथावत् मालूम होता है। जैसे अच्छी दृष्टिवालेको हाथमें रक्खा हुआ आँवला दीखता है, तैसे ही उस अतीन्द्रिय केवलज्ञानवालेको जगत्का भाव दिखता है। इसलिये जिनमतमें उसको सर्वज्ञ कहते हैं। इस रीतिसे किञ्चित् प्रत्यक्ष प्रमाणका वर्णन किया।

परोक्ष-प्रमाण।

अब परोक्ष-प्रमाणका वर्णन करते हैं—परोक्ष नाम है अस्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानसे मलिन ज्ञानका। इस परोक्षज्ञानके पाँच भेद हैं, एक तो स्मरण (स्मृति), दूसरा प्रत्यभिज्ञान, तीसरा तर्क, चौथा अनुमान, पाँचवाँ आगम। इसरीतिसे इस परोक्ष प्रमाणके पाँच भेद हैं। सो प्रथम स्मरणका विषय कहते हैं कि, जिस किसी जीवको पिछला

संस्कारसे भूतकालके अर्थका, उसी माफ़िक़ आकारको देखकर, स्मरण होना उसका नाम स्मरणज्ञान है। अब दूसरा प्रत्यभिज्ञान उसको कहते हैं कि जिसमें अनुभव और स्मरण यह दोनों हेतु अर्थात् कारण हैं, जैसे गऊको देखने से गवयका ज्ञान होता है इसका नाम प्रत्यभिज्ञान है। अब तीसरा तर्क उसको कहते हैं कि 'यत्सत्त्वे तत्सत्त्व' 'यस्याभावे तस्याप्यभावः' अर्थात् एक वस्तुकी विद्यमानता मे दूसरी चीज़की अवश्य विद्यमानता हो और उसके अभाव में उस चीज़ का भी अवश्य अभाव हो, ऐसे ज्ञान को तर्क कहते है। जैसे "यत्र २ धूमस्तत्र २ वह्निः"—जिस जगह धूम है उस जगह वह्नि अवश्यमेव होगी और जिस जगह वह्नि नही है उस जगह धुँवाँ कदापि न होगा। क्योंकि धूमके विना अग्नि तो रह सकती है परन्तु विना अग्निके धुँवाँ कदापि नही रह सकता, इस ज्ञानका नाम तर्क है। अब चौथा अनुमान कहते हैं कि अनुमानके दो भेद हैं, एक तो स्वार्थ, दूसरा परार्थ। स्वार्थअनुमान उसको कहते हैं कि, निजसे हेतुका दर्शन और सम्बन्धका स्मरण करके साध्यका ज्ञान होना उसका नाम स्वार्थ अनुमान है। और परार्थ उसको कहते हैं कि, जो दूसरेको वैसे ही ज्ञान करावे, उसका नाम परार्थ अनुमान है। इस अनुमानमें व्याप्ति आदिक अनेक रीतिसे प्रतिपादन होता है। सो इसका विस्तार तो स्याद्वादरत्नाकर, संमतितर्क आदिक अनेक ग्रन्थोंमे है। परन्तु इस जगह तो नाममात्र कहता हूँ। लिङ्ग देखनेसे लिङ्गिका ज्ञान होना, जैसे किसी पुरुषने पर्वतपर धूम देखा, इस धूमको देखनेसे अनुमान किया कि इस पर्वतमें अग्नि है। सो उस धुँवाँ रूप लिङ्ग देखनेसे लिङ्गी जो अग्नि उसका अनुमान किया। इसरीतिसे अनुमानका प्रतिपादन करते हैं। इसके पञ्च अवयव हैं—एक तो पक्ष, दूसरा हेतु, तीसरा दृष्टान्त, चौथा उपनय, पाँचवाँ निगमन। जिसमें बुद्धिमान् पुरुषको तो दो ही अवयवसे अनुमान यथावत् हो जाता है। और जो मन्दमती जिज्ञासु हैं, उनके वास्ते पाँचों अवयव हैं। इस अनुमानका विशेष

विस्तार और नैयायिक आदिकोंके अनुमानका खंडन तो स्याद्वाद-रत्ना-कर-अवतारिका, स्याद्वादरत्नाकर और सम्मतितर्क आदि ग्रन्थों मे है। इस अनुमानके व्याप्ति आदिकके खंडन-मडनकी कोटि भी बहुत क्लिष्ट है और ग्रन्थ बढ़ जानेके भो भय से यहाँ पर विस्तार न किया।

आगम-प्रमाण।

अब पाँचवाँ भेद आगम को कहते हैं। पेस्तर तो आगमका लक्षण कहते हैं कि, आगम क्या चीज हैं और आगम किसको कहते हैं? यदुक्त' प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारे "आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः" इस का अर्थ ऐसा होता है कि आप्त-पुरुषोंके वचनसे जो प्रगट हुआ अर्थ उसका जो यथावत् जानना उसका नाम आगम है। अब आप्त किसको कहते हैं सो उसका भी लक्षण उसी जगह ऐसा कहा है कि "अभिधेयं वस्तु यथावस्थितं यो जानीते यथाज्ञातं चाभिधत्ते स आप्तः" अर्थात् कही जानेवाली वस्तु-पदार्थ को जो ठीक ठीक रीति से जानता हो और जानने के माफिक ठीक तौर से कहता हो सो आप्त हैं। यह आप्तके दो भेद हैं, एक तो लौकिक, दूसरा लोकोत्तर। लौकिक-आप्त मे तो जनक आदिक अनेक सत्यवादि हैं। और लोकोत्तर तो श्री तीर्थंकर आदि अरहन्त वीतराग सर्वज्ञदेव तथा गणधरादि महापुरुष हैं।

उनका जो वचन है सो वर्णात्मक हैं, अर्थात् पौद्गलिक भाषा वर्गणा से बने हुए अकार आदिक अक्षर रूप हैं। उसी को शब्द भी कहते हैं। यहां पर जो और मतावलम्बी जिस रीति से शब्द प्रमाण से शाब्दो प्रमा मान कर पद से पदार्थ का अर्थ वा शक्ति का वर्णन करते हैं उसको दिखाते हैं। शाब्दी प्रमा के दो भेद हैं, एक तो व्यावहारिक, दूसरी पारमा-र्थिक। सो व्यावहारिक के भी दो भेद है, एक लौकिक वाक्य जन्य, दूसरी वैदिक। 'नीलो घटः' इत्यादिक लौकिक वाक्य हैं। 'वज्रहस्तः पुरंदर.' इत्यादिक वैदिक वाक्य हैं। पदके समुदायको

वाक्य कहते हैं। अर्थवाला जो वर्ण अथवा वर्णका समुदाय उसको पद कहते हैं। अकारादिक वर्ण भी ईश्वर आदिक अर्थवाले हैं और घटादिक पदमें वर्णका समुदाय अर्थवाला हैं। व्याकरण की रीतिसे तो 'नीलो घटः' इस वाक्यमें दो पद हैं, और न्यायकी रीतिसे चार पद हैं, परन्तु व्याकरणके मतमें भी अर्थ-बोधकता चार ही समुदायमें है, पद चार नहीं हैं। सो इस शाब्दीप्रमाकी यह प्रक्रिया है कि 'नीलो घटः' इस वाक्य को सुननेसे श्रोताकों सकल पदका श्रवण साक्षात्कार होता है। पदके साक्षात्कार से पदार्थकी स्मृति होती है। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करता है कि पदका अनुभव पदकी स्मृतिका हेतु है, अथवा पदार्थका अनुभव पदार्थकी स्मृतिका हेतु है; पदका साक्षात्कार पदार्थ की स्मृतिका हेतु बने नहीं. क्योंकि जिस वस्तु का पूर्व (पहले) अनुभव होता है उसकी स्मृति होती है, अन्यके अनुभवसे अन्यकी स्मृति होवे नहीं। इसलिये पदके ज्ञानसे पदार्थकी स्मृति बने नहीं। इस शङ्काका ऐसा समाधान है कि यद्यपि संस्कार-द्वारा पदार्थ अनुभव ही पदार्थकी स्मृतिका हेतु है, तथापि उद्भूत संस्कारसे स्मृति होती है, अनुद्भूत संस्कार से स्मृति होय नहीं। जो अनुद्भूत संस्कारसे भी स्मृति होती होय तो अनुद्भूत पदार्थकी स्मृति होनी चाहिये। इसलिये पदार्थके संस्कार के उद्भव का हेतु पद-ज्ञान है, क्योंकि सम्बंधिके ज्ञानसे तथा सदृश पदार्थके ज्ञानसे अथवा चिन्तवन से संस्कार उद्भूत होते हैं। तिससे स्मृति होती है। जैसे पुत्रको देख के पिता की और पिताको देखके पुत्रकी स्मृति होती है, क्योंकि तिस जगह सम्बंधी का ज्ञान संस्कार के उद्भव का हेतु है। तैसे ही एक तपस्वीको देखे तब पूर्व देखे हुए अन्य तपस्वी कि स्मृति होती है, तिस जगह संस्कार का उद्बोधक सदृश-दर्शन है। और जिस जगह एकान्तमें बैठके अनुद्भूत पदार्थका चिन्तवन करे, तिसमें अनुद्भूत अर्थ को स्मृति होती है, तिस जगह संस्कार का उद्बोधक चिन्तवन है। इस रीति से सम्बन्ध-ज्ञानादिक, संस्कार-उद्बोध-द्वारा स्मृति के हेतु हैं। और संस्कार की उत्पत्ति द्वारा

समान विषयक पूर्व (पहला) अनुभव स्मृति का हेतु है। इसलिये पदार्थ का पहला अनुभव तो पदार्थ विषयक संस्कार की उत्पत्ति द्वारा हेतु है, परन्तु पदार्थ के सम्बन्धी पद है। इसलिये पदार्थ के सम्बन्धी जो पद, तिसका ज्ञान संस्कार के उद्बोध द्वारा पदार्थ की स्मृति का हेतु है। इसलिये पद के ज्ञान से पदार्थ की स्मृति संभवती है। जिस जगह एक सम्बन्ध के ज्ञान से दूसरे सम्बन्धी की स्मृति होय, तिस जगह दोनों पदार्थ के सम्बन्ध का जिसको ज्ञान है तिसको एकके ज्ञान से दूसरे की स्मृति होती है। परन्तु जिसको सम्बन्ध का ज्ञान नहीं है, उसको एकके ज्ञान से दूसरे को स्मृति होय नहीं, जैसे पिता पुत्र का जन्य-जनकभाव सम्बन्ध है। सो जिसको जन्य-जनकभाव सम्बन्ध का ज्ञान होगा, तिसको तो एक के ज्ञान से दूसरे की स्मृति होगी, परन्तु जिसको जन्य-जनकभाव सम्बंधका ज्ञान नही है, तिसको एकके ज्ञानसे दूसरे की स्मृति होय नहीं। तैसे ही पद और अर्थका आपस में सम्बंध को वृत्ति कहते हैं, तो वृत्तिरूप जो पद-अर्थका सम्बध, तिसका जिसको ज्ञान होगा उसको पदके ज्ञानसे अर्थकी स्मृति होगी। पद और अर्थका वृत्तिरूप सम्बंध के ज्ञान से रहित को पदके ज्ञानसे अर्थकी स्मृति नहीं होगी। इसलिये वृत्ति-सहित पदका ज्ञान पदार्थ की स्मृति का हेतु है, सो वृत्ति दो प्रकारकी है, एक तो शक्ति रूप वृत्ति है, दूसरी लक्षणारूप वृत्ति है। न्यायमत में तो ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति है, और मीमांसकके मतमें शक्ति नाम कोई भिन्न पदार्थ है, वैयाकरण और पतजलि के मतमें वाच्यवाचक भावका मूल जो पदार्थका तादात्म्य सम्बंध सो ही शक्ति है, और अद्वैतवादी अर्थात् वेदान्तमतमें सर्व जगह अपने कार्य करने का सामर्थ्य ही शक्ति है, जैसे ततुमें पट करनेका सामर्थ्य रूप शक्ति है, अग्निमें दाह करने का जो सामर्थ्य सो शक्ति है, तैसे ही पदमें अपने अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्य रूप शक्ति है। परन्तु इतना भेद है कि अग्नि आदिक पदार्थमें जो सामर्थ्य रूप शक्ति है, उसमें ज्ञानकी अपेक्षा नहीं, शक्ति-ज्ञान हो अथवा नहो दोनों स्थानोंमें अग्नि आदिकसे दाह-आदिक कार्य होता है, परंतु

पदकी शक्तिका ज्ञान होय तब ही अर्थकी स्मृति रूप कार्य होता है। शक्तिका ज्ञान होय नहीं तो अर्थकी स्मृति रूप कार्य भी होय नहीं। इस लिये जब पदकी सामर्थ्य रूप शक्ति ज्ञात होती है, तब पदार्थके स्मृति रूप कार्य होता है। इसके ऊपर शंका समाधान भी वेदान्त ग्रन्थोंमें अनेक रीतिसे हैं और उन्हीके अनुसार वृत्तिप्रभाकर नामक ग्रन्थमें भी हैं। परन्तु इस जगह उस वेदान्तके अनुसार शंका-समाधान लिखानेका कुछ प्रयोजन नही हैं, क्योंकि हमको तो केवल उनके शास्त्रानुसार उनकी मुख्य वृत्ति-रीति जिज्ञासुको दिखानी थी। उन लोगोंके मतमें इसरीति से शक्ति-सहित पदज्ञानसे पदार्थकी स्मृति होती है। और जितने पदार्थकी स्मृति होगी उतने ही पदार्थोके सम्बन्ध का ज्ञान होगा। अथवा सम्बध-सहित सकल पदार्थके ज्ञानको वाक्यार्थ ज्ञान कहते है, उसको ही शाब्दी प्रमा कहते हैं। जैसे 'नीलो घट.' ऐसा वाक्य हैं, उसमें चार पद हैं, एक तो नील पद हैं, दूसरा ओकार पद है, तीसरा घट पद है, चौथा विसर्ग पद हें। नील-रूप-विशिष्ट मे नीलपदकी शक्ति है, ओकार पद निरर्थक है, यह कथन व्युत्पत्तिवाद ग्रन्थमें स्पष्ट है, सो वहांसे देखना चाहिये, अथवा ओकार पदका अर्थ भेद भी है, तीसरा घटपदकी घटत्व-विशिष्टमे शक्ति है, और विसर्गकी एकत्व-संख्यामें शक्ति हैं। नीलपीतादिक पदको वर्णमें और वर्णवालेमें शक्ति है, ऐसा कोश में लिखा है, और विसर्ग की एकत्व-संख्या में शक्ति हैं, यह बात भी व्याकरणसे जानी जाती है। घट पदकी घटत्व-विशिष्टमे शक्ति है, यह तो व्याकरण-ग्रन्थसे और शक्ति-वादादि ग्रन्थ से मालुम होता है। न्यायसूत्रमें गौतमऋषिने तो ऐसा कहा है कि जाति, आकृति, व्यक्तिमें सकलपद की शक्ति है। वे अवयव के संयोगको आकृति कहते हैं, और अनेक पदार्थमें रहनेवाले एक नित्य धर्म को जाति कहते हैं, जैसे अनेक घटमें एक घटत्व नित्य है सो जाति है, जातिके आश्रयको व्यक्ति कहते हैं। इस मतमें घट पद की शक्ति कपाल-संयोग-सहित घटत्व-विशिष्ट घट में है। और दीधितिकार शिरोमणि भट्टाचार्य के मतमें सकलपद की व्यक्ति-मात्र मे शक्ति है, जाति और आकृति मे नहीं। सो इस मतमे घट पदका वाच्य केवल व्यक्ति

है, घटत्व और कपाल-संयोग घटपद के वाच्य नहीं, क्योंकि जिस पदकी जिस अर्थमें शक्ति होय तिस पदका सो अर्थ वाच्य कहाता है। केवल व्यक्तिमें शक्ति है इसलिये केवल व्यक्ति ही वाच्य है। इसरीतिसे इन मतो मे शंका-समाधानके साथ अनेक ग्रन्थकारोंने अपने जुदे २ अभिप्राय दिखाये हैं। सो एक तो ग्रन्थ बढ जानेके भयसे, दूसरा क्लिष्ट बहुत है, इसलिये जिज्ञासुके समझनेमें कठिन होजाय, इस भयसे भी नमूना मात्र दिखाया है। इसी तरह लक्षणावृत्तिमें भी अनेक तरह के इन लोगों के वादविवाद हैं, सो भी उपर्युक्त कारणोंसे नहीं लिखाया।

अब पाठकगण इनके उपर लिखे हुए लेखको देखकर बुद्धिपूर्वक विचार करें कि नैयायिक तो शब्दमें ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति मानते हैं, और मीमांसकके मतमे शक्ति नाम कोइ भिन्न पदार्थ है, और व्याकरण मतमें अथवा पतञ्जलिके मतमें वाच्य-वाचकभावका मूल जो पद-अर्थका तादात्म्य-सम्बन्ध सो ही शक्ति है। इस रीतिसे इनके इस शब्द-निरूपणमें अनेक विवाद है। और इनमें भी एक २ मतके अनेक२ आचार्य अपनी २ बुद्धिविचक्षणता दिखानेके वास्ते जुदी २ प्रक्रिया दिखा गये हैं। जब इन लोगोंमें आपसमें ही विवाद चलरहा है तो फिर इस शब्दप्रमाणसे दूसरे जिज्ञासुको बोध क्योंकर करावेंगे? इन सब मतोंके मंतव्य पदार्थोंमें अनेक तरहके विसंवाद हैं, जिसका सक्षिप्त निरूपण मैंने स्याद्वादानुभव-रत्नाकरके दूसरे प्रश्नके उत्तर में दिखाये हैं, सो वहांसे जिज्ञासुको देखना चाहिये।

अब मैं इन विवेकशून्य बुद्धिविचक्षणों की बातोंका झगड़ा छोड़कर शुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग, जगद्गुरु, जगद्बंधु, जगदुपदेशदाता, पदार्थको यथावत् कहनेवाले, जिनेश भगवान के शास्त्रानुसार शब्द प्रमाण कहता हूं। यद्यपि इस वीतराग सर्वज्ञदेव के भी मतमें काल (हुंडावसर्पिणी) के दोषसे अनेक अव्यवस्था हो गई है, और वर्तमानमें भी दिगम्बर-श्वेताम्बर दो आम्नाय है। तिसमें भी दिगम्बरियोंमें तो तेरहपन्थी, बीसपन्थी, गुमानपन्थी आदि भेद हैं, और श्वेताम्बर आम्नायमें भी यती, संवेगी, ढुंढ़िया, (बाइस टोला), तेरहपन्थी, गच्छादिक, अनेक भेद हैं,

तथापि इन सबोंमें प्रमाण-आदिके निरूपण और पदार्थ-निर्णय में तो कोई तरह का भेद नहीं है, केवल क्रियाकलापादि प्रवृत्तिमें भेद होनेसे इनके भेद हैं। इसलिये जो इनके शास्त्रोंमें आप्तोंका लक्षण किया है सो यथावत् मिलता है। सो ही इस जगह प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारके चतुर्थ परिच्छेदसे उद्धृत कर दिखाता हूं। इसमें आप्तका लक्षण मैं पहले लिख चुका हूँ। उसके बाद से वह ग्रन्थ, इस शब्द-प्रमाणको ज्ञातव्य बाबतमें इस प्रकार है—

"तस्य हि वचनमविसंवादि भवति ५, स च द्वेधा लौकिको लोकोत्तरश्च ६ लौकिको जनकादिर्लोकोत्तरस्तु तीर्थकरादिः ७ वर्णपदवाक्यात्मकं वचनम् ८ अकारादिः पौद्गलिको वर्णः ९ वर्णानामन्योन्यापेक्षाणां निरपेक्षा संहतिः पदं, पदानां तु वाक्यं १० स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामर्थबोधनिबन्धनं शब्दः ११ अर्थप्रकाशकत्वमस्य स्वाभाविकं प्रदीपवत्, यथार्थायथार्थत्वे पुनः पुरुषगुणदोषावनुसरतः १२ सर्वत्रायं ध्वनिर्विधि-प्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधान सप्तभंगीमनुगच्छति १३ एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यनुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगी १४"

इन सूत्रोंका विशेष अर्थ तो इनकी टीका स्याद्वादरत्नाकरमें और उसमें प्रवेश करनेके वास्ते बनी हुई स्याद्वादरत्नाकरावतारिका में है। इस जगह तो किंचित् भावार्थ कहता हूं,—पूर्वोक्त लक्षणवाले आप्तके वचन में विसंवाद किंचित् न होगा, जिसके वचनमें विसंवाद है सो आप्त नहीं है। वह आप्तके दो भेद हैं, एक तो लौकिक, दूसरा लोकोत्तर। लौकिक में तो जनकादिक अनेक पुरुष है, और लोकोत्तरमें तीर्थकर अर्थात् श्री वीतराग सर्वज्ञदेव आदि हैं। वर्ण-पद-वाक्य रूप वचन है। अकारादिक पौद्गलिक वस्तुको वर्ण कहते हैं। परस्पर अपेक्षा रखनेवाले उन वर्णों का जो निरपेक्ष (दूसरे पदों के वर्णों की अपेक्षा नहीं रखनेवाला) समुदाय, उसका नाम पद है। और पदोंका वैसा ही जो समुदाय उसका नाम वाक्य है। शब्दमें अर्थ प्रकाश करनेकी स्वाभाविक सामर्थ्य है, जैसे दीपक में प्रकाश करने की सामर्थ्य है।

उस सामर्थ्य और संकेत से अर्थ-बोध का कारण शब्द होता है। परन्तु उसमें यथार्थता और अयथार्थता, कहनेवाले पुरुष का गुण और दोष के अनुसार, होती हैं। इस रीति से सर्वत्र ध्वनि (शब्द) विधि और प्रतिषेध करके स्वार्थ धारण करती हुई सप्त-भंगीको प्राप्त करती है। एक वस्तुके धर्म अर्थात् गुण अथवा पर्यायमें अनुयोग (प्रश्न) वशसे अविरोध से व्यस्त और समस्त जो विधि और निषेध, उनकी कल्पना करके 'स्यात्' शब्द युक्त जो सात प्रकारका वाक्—प्रयोग है उसका नाम सप्तभंगी है। इस रीतिसे सूत्रोंका भावार्थ कहा।

सप्त-भंगी।

. अब इस जगह किंचित् सप्तभंगीका स्वरूप लिखाता हूं। प्रथम सात ७ भंगीके नाम कहते हैं १ स्यात् अस्ति २ स्यात् नास्ति ३ स्यात् अस्ति नास्ति ४ स्यात् अवक्तव्य ५ स्यात् अस्ति अवक्तव्य ६ स्यात् नास्ति अवक्तव्य ७ स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्य। स्यात् शब्द का अर्थ यह है कि स्यात् अव्यय है सो अव्ययके अनेक अर्थ होते हैं, कहा है कि "धातुनामाव्ययानि अनेकार्थानि बोध्यानि" इस वास्ते स्यात्पदके अनेक अर्थ हैं। इस सप्तभगीको देव के ऊपर उतार कर इस जगह दिखाते हैं। उसी रीतिसे हरेक चीजके ऊपर उतरती है। इसलिये इसको देवके ऊपर उतारकर जिज्ञासुओंके समझानेके वास्ते लिखाते हैं। स्यात् देव अस्ति—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव करके देव है, यह प्रथम भांगा हुआ। स्यात् देव नास्ति—देव जो है सो स्यात् नहीं है, किस करके ? कुदेव करके, क्योंकि कुदेवका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके नास्तिपना है। जो कुदेव करके देवमें नास्तिपना न माने तो हमारा कोई कार्य सिद्ध ही नहीं होय, क्योंकि कुदेवमें तो कुगती देनेका स्वभाव है, और देवमें देवगति और मोक्ष देनेका स्वभाव हैं। जो देवमें कुदेवका नास्तिपणेका स्वभाव न होता तो हमारा मोक्ष-साधनका निमित्त कारण कभी नही बनता। इस वास्ते स्यात् देव नास्ति, यह दूसरा भांगा

हुआ । अब स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति भांगा कहते हैं कि-जिस समयमें देव में देव का अस्तित्व है, उसी समय देव मे कुदेव का नास्तिपना है, सो यह दोनों धर्म एक ही समयमे मोजूद हैं, इस वास्ते तीसरा भांगा कहा । अब स्यात् अवक्तव्य नाम भांगा. कहते है-स्यात् देव अवक्तव्य है, कहनेमें न आवे सो अवक्तव्य है। जिस समय देवमे देव का अस्तिपना है उसी समय देवमे कुदेव का नास्तिपना है, तो दोनो धर्म एक समय होनेसे जो अस्ति कहे तव तो नास्तिपनेका मृषावाद आता हैं, और जो नास्ति कहे तो अस्तिपनेका मृषावाद आता है, अर्थात् जूठ आता है, क्योंकि दोनों अर्थ कहने की एक समयमें वचनकी शक्ति नही, इस वास्ते अवक्तव्य है।

अब स्यात् अस्ति अवक्तव्य भांगा कहते है। स्यात् अस्ति देव अवक्तव्य, यह हुआ कि देवके अनेक धर्म अस्तितपनेमे है परन्तु ज्ञानी जान सक्ता है, और कह नही सक्ता। जैसे कोई गानेका समझनेवाला प्रवीण पुरुष गानको श्रवणकरके उस श्रोत्र-इन्द्रियसे प्राप्त हुआ जो गानका रस उसको जानता है, परन्तु वचन से यही कहता है कि अहा क्या वात है, अथवा शिर हिलाने के सिवाय कुछ कह नहीं सकता, तो देखो उस पुरुष की उस राग रागिनीं की मजा में तो अस्तिपना है परन्तु वचन करके कह नहीं सक्ता। इसरीतिसे देवमें देवपना जाननेवालेको देवपना उसके चित्त में है, परन्तु वचनसे न कह सके, इसवास्ते स्यात्अस्ति अवक्तव्य हुआ। अब छठा भांगा स्यान्नास्ति अवक्तव्य इस माफिक जानना चाहिये कि नास्तिपना भी देवमें अस्तिपनेसे है, परन्तु वचनसे कहनेमें नहीं आवे, क्योंकि जिस समयमें देवका अस्तिपना हैं उसी समय कुदेवका नास्तिपना उस देवमें बना हुआ है, जिसको विचारनेवाला चित्तमें विचारता हैं, परन्तु जो चित्तमें ख्याल है सो नहीं कह सक्ता। इसलिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य भांगा हुआ। अब स्यात् अस्ति नास्ति युगपद् अवक्तव्य भांगा कहते हैं कि जिस समयमें देवमें अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तिपना, युगपत्-अर्थात् एक कालमें अवक्तव्य-जो न कहा जा सके, क्योंकि देखो जैसे मिश्री और काली मीर्च घोंटकर गुलाब

जल मिलाकर बनाया हुआ शर्बतको जो पुरुष पीता है, उस मिश्रीका और मीर्चका एक समयमे स्वादको जानता है, परन्तु उनके जुदे २ स्वभावको एक समयमे कहनेको समर्थ नही, क्योंकि जानता तो है कि मिर्चका तिखापन है, और मिश्रीका मिठापन है, क्योंकि गलेमें मिर्च तो तेजी देती है और मिश्री मीठी शीतलता को देती है, परन्तु दोनोंके स्वादको जानकर भी एक साथ कह नही सके। इसरीतिसे देवका स्वरूप विचारनेवाला देवमें देवका अस्तिपना और कुदेवका नास्तिपना, यह दोनोंको एक समयमें जानता है, परन्तु कह नही सकता,इस करके स्यात् अस्ति नास्ति युगपद्वक्तव्य सातमा भागा कहा। इसरीतिसे सप्तभगी कही। यह आठ पक्ष पूरो भई। इसरीतिसे "उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्" यह लक्षणवाले द्रव्यत्वकी व्याख्या कही।

प्रमेय।

अब प्रमेयत्वका स्वरूप लिखते हैं जिससे चौथा सामान्य लक्षण भी जिज्ञासुको मालूम होय। प्रमेय क्या चीज है? प्रमेय किसको कहते हैं? प्रमेय नाम उसका है कि जो प्रमाणके विषयभूत होय अर्थात् प्रमाण जिसका निश्चय करे उसका नाम प्रमेय है। सो प्रमेयमें दो वस्तु है, एक तो जीव, दूसरा अजीव। सो उस जीवका स्वरूप और अजीवका स्वरूप तो हम पहले छ' द्रव्योकी सिद्धिके प्रसङ्ग में दिखा चुके हैं। इस जगह तो जैसे वीतराग सर्वज्ञ देवने अपने ज्ञानमें देखा है और भव्य जीवोंके उपकारके वास्ते जिस तरहसे जीवोंकी गणना की हैं, उसी तरह किञ्चित् दिखाते हैं कि जीव अनन्त है और उस जीव-अनन्तकी गणना कहते हैं। संज्ञी मनुष्य संख्यात, असंज्ञी असख्यात, नारकी असंख्यात, देवता असंख्यात, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय असंख्यात, बेइन्द्रिय असंख्यात, तेइ-न्द्रिय जीव असख्यात, चोइन्द्रिय जीव असख्यात, पृथ्वीकाय असंख्यात, अप्काय अर्थात् जलके जीव असख्यात, तेऊकाय अर्थात् अग्निके जीव असंख्यात, वायुकाय अर्थात् हवाका जीव असख्यात, प्रत्येक वनस्पतिका जीव असंख्यात, सिद्धका जीव अनन्त उन सिद्धके जीवोंसे बादर नि-

गोदके जीव अनंतगुण हैं। मूली, अदरक, गाजर, सूरन, जीमिकन्द, फूलन, (फफूलन) प्रमुख सब बादर निगोदमें हैं। इस बादर निगोदके जीव सूईके अग्रभाग जितनी जगहमें अनन्त है, वे सिद्ध जीवसे भी अनन्त गुण हैं। और सूक्ष्म निगोद इससे भी सूक्ष्म हैं। सो उस सूक्ष्म निगोदका विचार कहते हैं—जितना लोक-आकाशका प्रदेश है उतना ही निगोदका गोला है और उस एक २ गोलेमें असंख्यात निगोद हैं।

जिसमें अनन्त जीवोंका पिंडरूप एक शरीर होय उसका नाम निगोद है। सो उस निगोदमें अनन्त जीव हैं। उस अनन्त जीवोंको किञ्चित् कल्पना-द्वारा दिखाते हैं कि अतीत काल अर्थात् भूतकालके जितने समय होय उन सब समयोंकी गिनती करे और अनागत काल अर्थात् भविष्यत्काल के जितने समय होय वे सब उनके साथ भेला करे, फिर उनको अनन्तगुणा करे, जितना वह अनन्त गुणाकार का फल होय उतने जीव निगोद में हैं। इसलिये एक निगोदमें अनन्त जीव हैं। प्रत्येक संसारी जीवके असख्यात प्रदेश हैं। उस एक२ प्रदेशमें अनन्ती कर्म-वर्गणा लग रही है, और उस एक २ वर्गणामें अनन्त पुद्गल-परमाणु हैं, और अनन्त पुद्गल परमाणु जीवसे लग रहा है, और अनन्तगुण परमाणु जीवसे रहित अर्थात् अलग भी हैं। अब किञ्चित् जीवोंका मान कहते हैं—"गोला इहसङ्खीभूया असंखनिगोयओ हवई गोलो।

इक्किक्कम्मि निगोए अनन्तजीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥"

अर्थः— इस लोकमें असख्यात गोले हैं। उस एक २ गोलेमें असंख्यात निगोद हैं, और उस एक २ निगोदमें अनन्त जीव हैं।

"सत्तरसमहिया कीरइ आणुपाणंमि हुन्ति खुड्भवा।

सत्तीस सय तिहुअत्तर पाणु पुण एगमुहुत्तम्मि ॥१॥"

अर्थः—निगोदका जीव मनुष्यके एक श्वास-उच्छ्वास में कुछ अधिक १७ भव अर्थात् सतरह दफे जन्म-मरण करता हैं। और संज्ञि-पञ्चेंद्रिय मनुष्यके एक मुहूर्तमें ३७७३ श्वास-उच्छ्वास होते हैं।

"पणसट्ठि सहस्स पण सए य छत्तीसा मुहुत्त खुड्भवा।

आवलियाणं दो सय छप्पन्ना एग खुड्भवे ॥ १ ॥"

अर्थ—निगोद वाला जीव एक मुहूर्त में ६५५३६ भव करता है और उस निगोदवाले जीवका २५६ आवली प्रमाण आयुष्य होता हैं। यह खुल्लक भव अर्थात् छोटेसे छोटा भव होता है। भव अर्थात् जन्म-मरण। इस निगोद वाले जीवसे कम आयुष्य और किसीका नहीं होता।

"अत्थि अनन्ता जीवा जेहिं न पत्तो तसाईपरिणामो।
उववज्जन्ति-चयंति य पुणोवि तत्थेव तत्थेव ॥१॥"

अर्थः— निगोदमें ऐसे अनन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसपना कदापि नही पाया। अनन्त काल बीत गया और अनन्तकाल बीत जावेगा, तथापि वे जीव उसी जगह बारम्बार जन्म मरण करेगा, और उसी जगह बना रहेगा। ऐसे निगोदमें अनन्त जीव हैं। उस निगोदके दो भेद हैं, एक तो व्यवहार-राशि, दूसरा अव्यवहार-राशि। व्यवहारराशि उसको कहते हैं कि जिस राशि के जीव निगोद से निकलकर एकेन्द्रिय बादरपना अथवा त्रसपना प्राप्त करे। और जो जीवने कदापि निगोद से निकलकर बादर एकेन्द्रियपना अथवा त्रसपना नही पाया और अनादिकालसे उसी जगह जन्म-मरण करता है, उसको अव्यवहार-राशि कहते हैं। इस व्यवहार-राशिमें से जितने जीव मोक्ष जिस समयमें जाते है उतने ही जीव उस समयमें अव्यवहार-राशिसे व्यवहार-राशि में आते हैं।

इसरीतिसे निगोदका विचार कहा। उस निगोदके असंख्यात गोले हैं। वे निगोदवाले गोलेके जीव छः दिशाओंका पौद्गलिक आहार पानी लेते हैं। छः दिशाका आहार लेनेवाले सकल गोलें कहलाते हैं। और जो लोकके अन्त प्रदेशमें निगोदके गोले' है, उनके जीव तीन दिशाओं का आहार फरसते हैं सो विकल गोले हैं। सूक्ष्म निगोदमें एक साधारण वनस्पति-स्थावरमें ही सूक्ष्म जीव हैं, वे सूक्ष्म सर्व लोकमें भरे हुए हैं। जैसे काजलकी कोपली भरी हुई होती है तैसे ही साधारण वनस्पति सूक्ष्म निगोदवाले जीवसे भरी हुई हैं। और चार स्थावर में ऐसा सूक्ष्मपना नहीं है। उस सूक्ष्म निगोदमें रहनेवाले जीवको अनन्त दुःख है। इस अनन्त दुःख आदिके दृष्टान्त तो अनेक ग्रन्थों में लिखे हैं।

अब इन जीवोंकी जो गणना है सो एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक में आ जाती है सो भी दिखाते हैं कि जितने जीव स्थावरकाय में हैं ये सब एकेन्द्रिय जीव हैं। उस स्थावर-काय में सूक्ष्म निगोद, बादर निगोद, प्रत्येक वनस्पति, वायुकाय, तेउ (अग्नि) काय, अप् (जल) काय, पृथ्वीकाय इन सबोंका समावेश है, क्योंकि इनके जिह्वा, घ्राण (नासिका), श्रोत्र, चक्षु ये इन्द्रियाँ नही हैं, केवल स्पर्श अर्थात् शरीर है। इस इन्द्रियवाले जीव लेप आहार लेते हैं। दूसरा बेइन्द्रिय अर्थात् स्पर्श-इन्द्रिय और जिह्वा इन्द्रियवाले जीव हैं, वे जोंक, लट, कौडी, शङ्ख, एली आदी अनेक तरह के हैं। तेइन्द्रिय उसको कहते हैं कि जिसको स्पर्श इन्द्रिय, जिह्वा—रसना-इन्द्रिय और घ्राण (नासिका) इन्द्रिय ये तीन इन्द्रियाँ हैं। यूका, खटमल, चुंटी, धान्यकीट, कुंथु प्रभृति जीवों की गिनती तेइन्द्रिय जीवों में है। चतुरिन्द्रिय उसको कहते हैं कि जिसको एक तो स्पर्श इन्द्रिय, दूसरी रसना इन्द्रिय, तीसरी घ्राण इन्द्रिय, चौथी चक्षु इन्द्रिय, ये चार इन्द्रियाँ हैं। ये चौइन्द्रिय जीव बिच्छू, भँवरा, मक्खी, डाँस आदिक अनेक तरह के होते हैं। पाँचो इन्द्रियवाले को पञ्चेन्द्रिय कहते हैं अर्थात् एक तो शरीर, दूसरा रसना, तीसरा घ्राण, चौथा चक्षु, पाँचवाँ श्रोत्र, ये पाँचों इन्द्रियाँ हैं जिनको, उनका नाम पञ्चेन्द्रिय है। इस पञ्चेन्द्रिय जाति में मनुष्य, देवता, नारकी, गाय, बकरी, भैंस, हिरन, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, भेंड. सींग, सर्प, कच्छप, मच्छ, मोर, कबूतर, चील, बाज, मैना, तोता आदिक अनेक प्रकार के जीव होते हैं। इस लिये कुल जीव इन पाँच इन्द्रियों में आ जाते हैं।

८४ लाख जीवयोनि।

इन जीवों की ८४ लाख योनियां होतीं हैं। अन्य मतावलम्बी तो चार प्रकार से ८४ लाख जीव-योनि कहते हैं—१ अण्डज, २ पिण्डज, ३ ऊष्मज, ४ स्थावर। अण्डज नाम तो अंडा से उत्पन्न होय उनका है। पिंडज कहते हैं जो गर्भ से उत्पन्न होते हैं। ऊष्मज कहते हैं

जो पसीना आदिक से उत्पन्न होय, अथवा जो आपसे आप उगे उसको ऊष्मज कहते हैं और स्थावर दरख्तादिक को कहते हैं। इस रीति से चार प्रकार से ८४ लाख जीवायोनि को कहते सुनते तो हैं, परन्तु चौरासी (८४) लाख जीवायोनि की गणना अन्य मतावलम्बियों के शास्त्रानुसार देखने में नहीं आई, वे लोग केवल नामसे ८४ लाख जीवायोनि कहते हैं। और कितने ही अन्य मतावलम्बी, पृथ्वी, अप, तेयु, वायु इनको चार तत्त्व और आकाश को पाँचवाँ तत्त्व कह कर इन चार को जीव नहीं मानते। इसलिये इस अन्य मतावलम्बियों को पृथ्वी, जल, अग्नि, खर्च करने में भी करुणा नहीं आती। नास्तिक मतवाला तो बिलकुल जीव को मानता ही नहीं है। सो पहले ही इस ग्रन्थ में जीव सिद्ध करने की युक्तियाँ दिखा चुके हैं। अब इन सब झगड़ों को छोड़ कर ८४ लाख जीव योनि का किञ्चित् स्वरूप शास्त्रानुसार लिखाते हैं कि ७ लाख तो पृथ्वीकाय की योनि है। योनि नाम उसका है कि एक रीति से जो चीज उत्पन्न होय और उसका वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श में फर्क होय। जैसे काली मिट्टी, पीली मिट्टी, सफेद मिट्टी, लाल मिट्टी, कोई चिकनी मिट्टी, कोई बालू (रेत); अथवा जैसे निमक के भेद है—सैंधालोन, खारीलोन, कालालोन, साँभरलोन, पञ्च-भद्रालोन इत्यादि, अथवा जैसे पहाड़ आदि पत्थर हैं उनके भी अनेक भेद हैं, जैसे कि लाल पत्थर, सफेद पत्थर, मकरानेका पत्थर, सङ्गमरमर, स्याहमूसा पत्थर इत्यादि, अथवा हीरा, पन्ना, चुन्नी, लहसनीया, तामड़ा, पुखराज, स्फटिक, आदिक अनेक भेद हैं। इस रीति से पृथ्वी की ७ लाख योनि सर्वज्ञदेव वीतराग ने ज्ञान में देखकर बतलाई हैं। सर्वज्ञ के सिवाय दूसरा कौन इस भेद को खोल सकता है? इस रीति से ७ लाख योनि अप्काय की भी हैं। देखो कि कोई तो खारा पानी है, कोई मीठा पानी है, कोई तेलिया पानी है, कोई पानी पीने में मीठा परन्तु भारी, अर्थात् बादी बहुत करता है और कोई पीने में मीठा परन्तु अन्नादिक बहुत हजम करता है, कोई कूप का पानी है, कोई तालाब का पानी, कोई बावड़ी का। इनमें भी रस, वर्ण स्पर्श, गन्ध

आदिक के फर्क (भेद) से सर्वज्ञने ७ सात लाख योनि कही है। इसरीति से तेउकाय अर्थात् अग्निकाय की भी सात लाख योनि कही है। अग्निमें भी छाना, लकड़ी, पत्थर का कोयला, इन अग्नि का आपस में मन्दता और तेजता का भेद, अथवा सूर्य, विद्युत् (बिजली), इत्यादि अग्नि के अनेक भेद हैं। सो सिवाय सर्वज्ञ के दूसरा कोई नहीं जान सकता। हाँ, अबार वर्त्तमानकाल में जो लोग अङ्गरेजी, फारसी, अथवा कुतर्कियों के संग से शास्त्रीय प्रक्रिया और परिभाषा से विमुख होकर विवेकशून्य हुए हैं, उनकी समझ में तो यह कथन निःसन्देह आना मुश्किल है, परन्तु यदि वे लोग निष्पक्षपात होकर सूक्ष्म-बुद्धि से पदार्थ-निर्णय का विचार करेंगे तो मन्दत्व और तेजत्व की तरतमता के अनुसार इस बात की सत्यता अवश्य प्रतीत हो जायगी। वर्त्तमानकाल में इस क्षेत्र में केवलज्ञानी-सर्वज्ञ का प्रत्यक्ष अभाव है। इसलिये आत्मार्थी लोग इस विषय को एकान्त में बैठकर सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर अपने अनुभव में लावें, और कुतर्क को विसरावें, जिस से कल्याण की सूरत जल्दी पावे, तो फिर नर्क निगोद में कभी न जावे, सद्गुरु की कृपा होय तो मोक्ष को पावे, फिर जन्म मरण दुःख सभी छूट जावे। अस्तु।

अब इस रीति से ७ लाख वायुकाय की भी योनि है। जैसे कोई तो गर्म हवा है, कोई ठण्डी है, कोई न गर्म है न ठण्डी है, कोई हवा के चलने से आदमी को बिमारी हो जाती है जिसको लकवा कहते हैं, और किसी हवा से शरीर भी फट जाता है, और किसी हवा से शरीर के रोग की निवृत्ति भी हो जाती है इत्यादिक—गन्ध, स्पर्श आदि के भेदपे वीतरागदेव ने अपने ज्ञान में वायुकाय की योनि के ७ लाख भेद देखकर कहे हैं। इस माफिक इन चार काय के २८ लाख भेद हुए। वनस्पति के दो भेद हैं—एक तो प्रत्येक, दूसरी साधारण। प्रत्येक की तो १० लाख योनि है। आँब, नीबू, नारङ्गी अमरूद, (जामफल), अनार, केला, चमेली, बेला, नीम, इमली, बाँस, ताड, अशोक वृक्ष, तरकारी, भाजी, घास, फूस, बादाम, छुहारे, नारियल,

दाख, पिस्ता, अंगूर, सेव, बीर, खिन्नी, मौरशिरी, बबूल, बड, पीपल, खेजड़ा इत्यादि अनेक जाति की प्रत्येक वनस्पति है। इसमें भी एक नाम के अनेक भेद हैं, जैसे आम एक नाम है, परन्तु इसमें भी लाडुवा, लँगड़ा, चोचिया, करुआ, मालदेई, हबशी, टेंटी, सिन्दुरिया इत्यादि भेद हैं। उनमे भी रस, वर्ण, स्पर्श, गन्ध के भेद प्रत्यक्ष से बुद्धिमानों की बुद्धि में दिखाते हैं। ऐसे ही नाजादिक मे चावल आदि के भी अनेक भेद हैं, कोई तो रायमुनिया, कोई साठी, कोई हंसराज, कोई कमोद, कोई उष्ण इत्यादि। इस रीति से इस प्रत्येक वनस्पति की १० लाख योनि केवलज्ञान से श्री वीतरागदेव को देखने में आई, सो भव्य जीवोंको उपदेश कर बताई, अब साधारण वनस्पति की योनी भी सुनो भाई! साधारण वनस्पति की १४ लाख योनि हैं। एक शरीर में अनेक जीव इकट्ठे होंय उसका नाम साधारण है। साधारण में गाजर, मूली, अदरक, आलू, अरवी, सूरन, सकरकन्द, कसेरू, लहसन, प्याज, काँदा, रतालू, सलगम आदि अनेक चीज हैं। जो जमीन के भीतर रहैं और उसी जगह बढ़ैं उसको साधारण वनस्पति कहते है। इसमें भी रस, वर्ण, स्पर्श, गन्ध के भेद होने से १४ लाख जीव उत्पन्न होने की योनि है। इस रीति से स्थावर-कायकी योनि का भेद बताया, सब बावन (५२) लाख जुमले आया, अब त्रसकी योनि कहने को दिल चाया, इन भेदों को सुनकर जिज्ञासु का दिल हुलसाया, सद्गुरु के उपदेश में ध्यान लगाया, पक्षपात रहित सर्वज्ञ मत का किञ्चित् उपदेश पाया, आत्मार्थियों ने अपने कल्याण के अर्थ अपने हृदय में जमाया, शास्त्रानुसार किञ्चित् हमने भी सुनाया।

अब त्रसयोनि के भेद कहते हैं कि त्रस नाम उसका है कि जो जब कष्ट दुःख आकर पडे तब त्रास पावे, एकाएकी शरीर को न छोड़े और दुःख को उठावे। बेइन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के सब जीव त्रस कहलाते हैं। उनमें दो लाख योनि बेइन्द्रिय (दो इन्द्रियवाले) जीवों को हैं। दो इन्द्रिय में कौड़ी, शङ्ख, जोंक, अलसीया, लट, आदि अनेक तरह के जीव होते हैं। सो इनमें भी वर्ण, गन्ध,

रस, स्पर्श, आदि के भेद होने से दो लाख योनि इसकी भी सर्वज्ञदेव ने देखी। इसी रीति से दो लाख योनियाँ तेइन्द्रिय की भी हैं। ये भी कीड़ो, जू, माँकड़ आदि अनेक प्रकार के जीव हैं। इनमें भी ऊपर लिखे स्पर्शादि के भेद होने से दो लाख योनि सर्वज्ञदेव ने देखी हैं। इसी रीति से चौइन्द्रिय की भी दो लाख योनि हैं। उस चौइन्द्रिय में बिच्छू, पतङ्ग, भँवरा, भँवरी, ततैया, वर्र, मक्खी, मच्छर, डाँस आदि अनेक जीव हैं। इनकी भी ऊपर लिखे स्पर्शादिके भेद से सर्वज्ञदेव ने दो लाख योनि देखी। इन सबको मिलायकर विकले-न्द्रिय, (बे इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) जीवों की आठ लाख योनि हुई।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच की चार लाख योनि हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच के पाँच भेद हैं। एक तो स्थलचर अर्थात् जमीन पर चलनेवाले, दूसरा जलचर—पानी में चलनेवाले, तीसरा खेचर अर्थात् आकाश में उड़नेवाले पक्षी, चौथा उरपरिसर्प अर्थात् पेट से चलनेवाले, पाँचवाँ भुजपरि-सर्प अर्थात् भुजा से चलनेवाले। उनमें स्थलचर के गाय, भैंस, बकरी, गधा, ऊँट, घोड़ा, हाथी, हिरन, भेड़, बाघ, स्यारिया, मैंढ, सूअर, कुत्ता, बिल्ली, इत्यादि अनेक भेद हैं। इनकी प्रत्येक जाति में फिर भी अनेक भेद हैं। इस रीति से जलचर अर्थात् पानी में चलने वाले के भी कछुआ, मगर, मछली, घड़ियाल, नाका, आदि अनेक भेद हैं। इनके भी जाति २ के फिर अनेक भेद हैं। इस रीतिसे आकाश में उड़नेवाले मोर, कबूतर, बाज, सुआ, चिड़िया, काग, मैना, परेवा, तोता, इत्यादि में भी प्रत्येक के अनेक भेद हैं। उरपरिसर्प अर्थात् पेट से चलनेवाले के भी सर्प, दुमही, अजगरादि कई भेद हैं। फिर भी इनमें एक २ जाति में अनेक भेद होते हैं। ऐसे ही भुजपरिसर्प अर्थात् हाथ से चलनेवाले भी नोलीया, मूसा, टीटोडी वगैरः अनेक प्रकार के हैं। इस रीति से इन पाँचों तिर्यंचों में भी एक २ जाति के अनेक भेद हैं। इनकी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आदि भेद से श्रीसर्वज्ञ-देव वीतरागने चार लाख योनि कही है। इसी तरह से नारकी में

भी जो जीव रहनेवाले हैं, उनकी भी चार लाख योनी हैं। उन नारकियों मे भी वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श का भेद होने से योनी के चार लाख भेद होते हैं। देवता में भी चार लाख योनी सर्वज्ञदेव ने देखी हैं, क्योंकि देवताओं में भी नीच, ऊँच, कोई भवनपती, कोई व्यन्तर-भूत-प्रेतादि, कोई ज्योतिषी, कोई वैमानिक, कोई किलविषिया इत्यादि अनेक भेद हैं जो शास्त्रों में भी गिनाये हैं। इनमें भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि के ही भेद होने से चार लाख योनी है। इस तरह विकलेन्द्रिय से यहाँ तक मिलाय कर १८ लाख योनी हुईं। पूर्वोक्त स्थावर की ५२ लाख मिलाने से सत्तर (७०) लाख योनी हुईं। मनुष्य की योनी १४ लाख हैं इस माफिक सब मिलाकर चार गति की ८४ लाख योनी हुईं।

प्रश्न—आपने सत्तर लाख जीव-योनि तक तो वर्णन किया सो लिखे मुजब अनुमान से सिद्ध होता है, परन्तु मनुष्यों की चौदह लाख योनि क्योंकर बनेगी ?

उत्तर—भो देवानुप्रिय ! जैसे हमने सत्तर लाख योनियों का वर्णन किया, उनको अनुमान से सिद्ध करते हो, तैसे ही मनुष्यों में भी सूक्ष्मबुद्धि से देखने पर रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि भेद से अनेक प्रकार के भेद मालूम होता है। जैसे कबूतर एक जाति है, परन्तु उन कबूतरो की एक जाति में भी लक्खौ, मोतिया, अबरख, इत्यादि अनेक भेद हैं। देखते ही उनके पालनेवाले लोग उसको जानते है। अथवा जैसे घोड़ा एक नाम है, परन्तु उनमें भी अनेक तरह के भेद है, कोई टाँगन है, कोई सुरङ्ग, कोई चितकबरा है। जो लोग घोड़ो की परीक्षा कर जानते हैं, वेही उनकी जातों को भी जानते हैं। अथवा सर्प ऐसा एक नाम है, परन्तु उसमें भी कोई कागावशी है, कोई कागाडोंग है, कोई भैंसाडोम, कोई रक्तवसी, कोई पद्म, कोई कालगड़ौता, कोई पनीही, सो भी जो साँपोंके पकड़नेवाले है वे लोग उनकी जातों को भी जानते है। अथवा जैसे चावल एक नाम है, परन्तु उसमें कोई तो हंसराज हैं, कोई रायमुनिया है, कोई कौमुदी हैं, कोई

साठी है, कोई हंस है कोई उष्णा है, इस रीति से चावलों के भी अनेक भेद हैं। जैसे ऊपर लिखी हुई चीजों में रस, वर्ण, स्पर्श, गन्ध, आदि भेद होने से भेद दिखाये उसी रीति से मनुष्यों में भी भेद जानो, सूक्ष्म बुद्धि से मनुष्यों में १४ लाख योनी जानो, क्यों नाहक विवाद ठानो, सर्वज्ञों के वचन मानो, आँख मीच कर हृदयकमल ऊपर विचार कर पहचानो। इस रीति से चार गती में चौरासी (८४) लाख जीवायोनि का जुदा २ वर्णन सर्वज्ञ के सिवाय दूसरा कोई नहीं कह सकता। और अजीव का भी इस रीति से भिन्न २ निर्णय श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव ने किया है सो किञ्चित् पीछे लिख चुके हैं। इस रीति से प्रमेयरूप चतुर्थ सामान्य-लक्षण का वर्णन किया।

सत्त्व।

अब पांचवाँ सत्त्वका वर्णन सुनो कि जो वस्तुका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं वह सब सत् हैं। सत्का लक्षण भी तत्त्वार्थ सूत्र मे ऐसा कहा है कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्" सो उत्पाद व्यय लक्षण के ऊपर आठ पक्ष कह चुके है और भी किंचित इस जगह दिखाते हैं कि धर्मास्तिकायका असंख्यात प्रदेश है। उन असंख्यात प्रदेशमें एकके अगुरुलघुपर्याय असंख्यात हैं, और दूसरे प्रदेश के अनंत अगुरुलघु हैं, तीसरे प्रदेशके असंख्यात हैं। इन असंख्यात-प्रदेशो के अगुरुलघु पर्यायमें कमी और वृद्धि होती रहती है। इससे वे अगुरुलघु पर्याय सदा चल हैं, क्योंकि जिस प्रदेश में असख्यात है उसी प्रदेशमें अनंतकी वृद्धि होती है और अनतकी जगह असख्यातकी वृद्धि होती है, और असंख्यातकी जगह संख्यातकी वृद्धि होती है। इसरीतिसे जिस प्रदेशमें असंख्यात था उसमें अनंतकी तो वृद्धि हुई और असंख्यातकी हानी हुई, ऐसे ही अनंतकी जगह असंख्यातकी वृद्धि और अनंतकी हानी, और जिस जगह सख्यातकी वृद्धि हुई उस जगह असंख्यातकी हानी हुई। इसरीति से इस लोकप्रमाणमें जो धर्मास्तिकाय के असख्यात प्रदेश हैं, उन सर्व प्रदेशों में एक कालमें अगुरुलघु पर्याय फिरता रहता है, क्योंकि

जिस कालमें जिस प्रदेशमे अनंतकी हानी और असख्यातकी वृद्धि है उस कालमें अनंतपनेका तो व्यय अर्थात् विनाश, तथा असंख्यातपनेका उत्पाद और अगुरुलघुपनेका गुण ध्रुव है।

इसरीतिसे उत्पाद, व्यय, और ध्रुवता जिसमे होय वही सत् है। इसरीतिसे अधर्मास्तिकायके भी असंख्यात प्रदेशमें समय २ मे उत्पाद आदि हो रहे हैं। ऐसे ही आकाश, जीव और पुद्गल में भी जान लेना चाहिये। काल तो उपचारसे द्रव्य है, तो भी समझनेके वास्ते उसमे भी इसरीतिसे तीनों परिणामोंको उतारना चाहिये। इस तरह पांचवां सत्तत्वका किंचित् भेद दिखाया।

अब अगुरुलघुपना कहते हैं कि जिसमें गुरुत्व अर्थात् भारीपन न हो और हलकापन भी न होय उसका नाम अगुरुलघु है। अब इस अगुरु-लघुके समझानेके वास्ते दो तीन दृष्टान्त देते हैं जिससे जिज्ञासु लोग जलदी समझ सकें, क्योंकि इस अगुरुलघुका समझना, कहना अथवा दूसरेको समझाना बहुत मुश्किल है। नाम मात्रसे सब कोई कहते हैं कि हम अगुरुलघु को जानते हैं, परन्तु मेरी इस तुच्छ बुद्धि अनुसार तो अगुरुलघुका समझना और कहना बहुत मुशकिल है। अलबत्त, यदि कोई सत्पुरुष छः द्रव्योंका स्वरूप जानकर एकान्तमें बैठकर अपने आत्म-अनुभवके जोरसे उस अगुरुलघुका मनन करता रहे तो वह समझ भी सक्ता है, और कह भी सक्ता है। परन्तु जो दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्य-वाले भेषधारी लोग, अन्यमतियोंके पंडितोंसे न्याय-व्याकरणादि पढ़कर गुरुकुलवास विना अथवा शास्त्रोंके अभिप्राय जाने विना, नवीन ग्रन्थ तस्कर-वृत्तिसे इधर उधरकी बातोंको लेकर बनाते हैं और भोले जीवोंमे अपनी विद्वत्ता बतानेके वास्ते पुस्तकोंमे अनेक तरहके वाद-विवाद लिखकर दूसरेकी निन्दा और अपनी प्रतिष्ठा कर रहे हैं, वे लोग इस अगुरुलघु को यथावत् नहीं कह सक्ते, क्योंकि यह अगुरुलघुका विषय बहुत कठिन है। सो यथावत् कहनेकी तो मेरी भी ताकत नहीं, परन्तु उन सत्य उपदेशक गुरुकी चरण-कृपासे इस विषयमें कुछ कह सकता हूं कि जैसे भित्ति (दिवाल) में सफेदी आदिक है, उस सफेदीमें जो दमक

है उस दमकको न हलकी कह सक्ते हैं, न भारी कह सक्ते हैं, इससे वह अगुरुलघु है। अथवा, किसीने अपने हाथको नीचा किया फिर ऊँचा उठा लिया तो उस हाथका नीचा ऊँचा उठना तो उत्पाद और व्यय है, परन्तु नीचापना और ऊंचापनामें न हलकापन ही है न भारीपन ही। अथवा स्त्री में जो स्त्रीपना है सो हालकी जन्मी हुई कन्यामें भी है, १४।१५ वर्षकी अवस्थामें भी है, ३० वर्षकी अवस्थामें और बुढ़ापेमें भी है। सो वह शरीर-व्यक्तिमें तो जन्मसे लेकर आयुपर्यन्त उत्पाद-व्यय समय २ में हो रहा है, परन्तु स्त्रीत्व जातिमें न हलकापन है, न भारीपन है; और स्त्रीपना ध्रुव है तैसे ही अगुरुलघुपर्यायमें समझो। इसरीतिसे पुरुषपना, पशुमें पशुपना गऊमें गऊपना रूप जातिमें तो ध्रुवपना है और व्यक्ति में तो उत्पाद-व्यय होता रहता है। अथवा, जैसे आम-नीवू आदिक जिस वख्तमें वृक्षके ऊपर लगते हैं, उस वख्त नीवूमें नीलापन अर्थात् हरा रंग तथा कडुवापन और आममें खट्टापन होता है, परन्तु जब वे अपनी उम्र पर आते हैं, तब नीवू पीला पड़ जाता है और खट्टापनको प्राप्त हो जाता है; आम भी कोई पीले रंगको और कोई सुर्खको, कोई श्यामताको प्राप्त करता है और कोई तो नीला ही बना रहता है, और रस उसका मिष्ट हो जाता है। उसमें नींवूपना तथा आमपना तो पहले जैसा था वैसा ही अंततक बना रहा। परन्तु उस वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शमें उत्पाद-व्यय होने ही से पर्यायका पलटना हुआ, सो वह पलटनपना तो उत्पाद-व्यय है, परन्तु उसमें जो ध्रुवपना (नीवूपन और आमपन) सो न हलका है न भारी है इससे अगुरुलघु है। शास्त्रमें कहा हैं कि पुद्गल-परमाणु वर्णसे वर्णान्तर, गन्धसे गन्धान्तर रससे रसान्तर, स्पर्शसे स्पर्शान्तरको समय २ में प्राप्त होते रहते हैं।

प्रश्नः— आपने जो यह कहा कि पुद्गल-परमाणुओंमें वर्णसे वर्णान्तर, गन्धसे गन्धान्तर इत्यादि उलटफेर हो रहा है। सो उस परमाणु के विषय बहुत लोग शङ्का करते हैं। यद्यपि इसकी चर्चा अनेक तरहसे इस जैन मतमें हैं। तथापि यह बात बुद्धिपूर्वक समझनेमें नहीं आती। शास्त्रमें लिखा है सो तो ठीक है, परन्तु इस बातको निःसन्देह मानना बहुत शख्सोंके लिये कठिन हो जाता है।

उत्तरः— भो देवानुप्रिय ! इस अगुरुलघुके छः प्रकारके सामान्य स्वभावके नहीं जाननेसे शङ्का बनी रहती है। इस परमाणुके विषयमें श्री पन्नवणाजीकी टीकामें भी खुलासा किया है, परन्तु ग्रन्थकारके अभिप्रायको जानना बहुत मुश्किल है। श्रीअनुयोगद्वारजी में भी इस परमाणुमें वर्णसे वर्णान्तर और रससे रसान्तरकी प्राप्ति कही है। इसलिये इस अगुरुलघुको बुद्धिपूर्वक विचारोगे तो यह बात यथावत् बैठेगी।

प्रश्नः— आपने शास्त्रोंकी साक्षी दी सो ठीक है, परन्तु बादर परमाणु की अपेक्षासे उनमें वर्णसे वर्णान्तर, रससे रसान्तर कहा होगा, परन्तु सूक्ष्म परमाणु अर्थात् जिसका दूसरा विभाग नहीं होय उसकी अपेक्षासे नहीं, ऐसा हमारी समझमें आता है।

उत्तरः—भो देवानुप्रिय ! जिनमतके शुद्ध उपदेशक के अपरिचय से और आत्म-अनुभव-ज्ञान न होनेके कारण ऐसी तर्क उठती है। सो यह तर्क करना ठीक नहीं है, क्योंकि शास्त्रों में पुद्गलका लक्षण कहा है कि जो मिलन, विखरन, पूरन, गलन, सडन, पडन आदि धर्मोंसे युक्त होय उसका नाम पुद्गल है। तो यह लक्षण क्योंकर बनेगा ? क्योंकि वर्णसे वर्णान्तर, गन्धसे गन्धान्तर, रससे रसान्तर और स्पर्शसे स्पर्शान्तर यदि सूक्ष्म परमाणुमें भी न होता तो पूरण, गलन, मिलन, विखरण रूप यह लक्षण ही उसका असत्य हो जायगा। इसलिये इस बातको निस्सन्देह मानना होगा कि परमाणुमें वर्णसे वर्णान्तर, गन्धसे गन्धान्तर, रससे रसान्तर, स्पर्शसे स्पर्शान्तर होता है। कदाचित् फिर भी तुम कहो कि यह लक्षण तो स्कन्ध अथवा द्व्यणुक-त्र्यणुक आदिक के वास्ते कहा होगा। इसपर हमारा ऐसा कहना है कि पुद्गल स्वरूपमें तो परमाणु की ही प्रथम गणना है और प्रस्तुतमें पुद्गल कहनेसे परमाणु ही लिया जाता है। द्व्यणुक, त्र्यणुक, तथा संख्यात, असंख्यात, अनन्त-परमाणुके जो स्कन्ध हैं उनमें तो रूपका रूपान्तर, रसका रसान्तर, गन्धका गन्धान्तर, स्पर्शका स्पर्शान्तर होना स्थूल बुद्धिवाले को भी नींबू, आम, नारङ्गी, केला, अमरूद (जामफल), जामन, अङ्गुरादि फलोंमें प्रत्यक्ष देखने से प्रतीत होता है, सो इसमें तो किसीको सन्देह नहीं, परन्तु सर्वज्ञोंने तो यहाँ

पर लक्षण उस चीजका ही किया है कि जिसको अतीन्द्रिय ज्ञानके विना चर्मदृष्टि पुरुष सूक्ष्म बुद्धिसे भी न विचार सके। यदि सूक्ष्म परमाणुमें भी रूपसे रूपान्तर, रससे रसान्तर, गंधसे गन्धान्तर, स्पर्शसे स्पर्शान्तर न होता तो पुद्गलका पूरण, गलन, मिलन, विखरन रूप लक्षण कदापि न कहते। इसलिये पूरण, गलन, मिलन, विखरन रूप लक्षण कहनेसे ही सूक्ष्मपरमाणु में भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्शका फिरना (बदलना) सिद्ध हो गया।

दूसरा और भी सुनो कि यदि सूक्ष्म परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शका बदलना न मानोगे तो द्रव्यके छः सामान्य स्वभावोंमें से पांचवा सत्त्व स्वभाव न बनेगा, पाँच ही स्वभाव रह जायंगे, क्योंकि सत्त्व का लक्षण तत्त्वार्थ सूत्रमें ऐसा किया है कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" जो उत्पाद, व्यय और ध्रुवपना करके युक्त होय उसका नाम सत् है। श्री वीतराग सर्वज्ञदेवने जीव और अजीव दो पदार्थ कहे हैं जिसमें अजीवके चार भेद हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और चौथा पुद्गल। इसरीतिसे शास्त्रोंमें द्रव्यका वर्णन है। और द्रव्योंका सत्त्व स्वभाव है, सत्त्व नाम है उत्पाद,व्यय और ध्रौव्यसे युक्तका। यदि सूक्ष्म परमाणुमें वर्णान्तर, रसान्तर, गधान्तर और स्पर्शान्तर मानोगे नहीं तो फिर परमाणुमें उत्पाद, व्यय और ध्रुवपना क्योंकर घटेगा? सूक्ष्म परमाणुमें भी जब वर्णसे वर्णान्तर, रससे रसान्तर, गन्धसे गन्धान्तर, स्पर्शसे स्पर्शान्तरका होना मानोगे, तब ही यह पाचवां सत्त्व नामका सामान्य स्वभाव द्रव्यका बनेगा। इस लिये सूक्ष्म परमाणुमें भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श बदलता है।

तीसरा और भी सुनो कि–जब सूक्ष्म परमाणुमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का बदलना न मानोगे तो आरम्भवादमत की आपत्ति आवेगी। सो आरम्भवाद मत हैं नैयायिकोंका, वह जैनियों को मान्य नहीं है। इस आरंभवादका स्वरूप किञ्चित् तो हमने 'स्याद्वाद-अनुभव-रत्नाकर' में दूसरे प्रश्न के उत्तर में नैयायिक मत निर्णय में दिखाया है। उस आरम्भवाद के निर्णयकी कोटी बहुत क्लिष्ट है, और इस आरं-

आदि बातोंका वर्तमान कालमें जैनियोंमें कहना-सुनना बहुत कम है, इसलिये इन बाबतों की चर्चाके समझनेवाले बहुत कम है। क्योंकि जहां दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवालोंको अपनेको पूजाना है, खूब माल खाना है, मौज करना है, मान-प्रतिष्ठादि बढाना है, खूब राग-द्वेष बढ़ाना है, गच्छादि ममत्वमें गृहस्थियोंको फसाना है, आत्माके लिये ज्ञान की बात करनेका किञ्चित् भी ख्याल न कर केवल क्रिया करनेके झगड़े को उठाना है, आपसमें राग-द्वेष को फ़ैलाना है, वहां ऊपर लिखे वादोंके कहने सुनने का कम हो जाना स्वाभाविक है। और ग्रन्थ बढ़ जानेके भी भयसे आरम्भवाद का कथन यहा पर न लिखाया, किञ्चित् प्रसङ्गसे परमाणुके ऊपर भी कह सुनाया। इस रीतिसे अगुरुलघुका स्वरूप जान कर आत्मार्थी सुक्ष्म बुद्धिसे विचार करें।

इस अगुरुलघुमें छः प्रकारकी हानी और छः प्रकारकी वृद्धि होती है, सो अब उसको दिखाते हैं। पहले छः प्रकारकी हानिका नाम कहते हैं १ अनन्तभाग हानी, २ असख्यातभाग हानी, ३ संख्यातभाग हानी, ४ संख्यातगुण हानी, ५ असंख्यातगुण हानी ६ अनन्तगुण हानी यह छः हानी कही। अब वृद्धि कहते हैं-१ अनन्तभागवृद्धि, २ असख्यात-भाग वृद्धि, ३ सख्यातभाग वृद्धि, ४ संख्यातगुण वृद्धि, ५ असंख्यातगुण वृद्धि, ६ अनन्तगुणवृद्धि इस प्रकारसे छः प्रकारकी वृद्धि कही। अब इस जगह भागका भावार्थ कहते हैं कि अग्रेजीके पढे हुए तो

$$\frac{१}{१००} \quad \frac{१}{२००} \quad \frac{१}{३००} \quad \frac{१}{१०००}$$

इस रीतिसे कहते हैं, और लौकिक में एक के सौ हिस्सा, एकके२००हिस्सा, एकके ३०० हिस्स' इस रीतिसे इसकी सज्ञा हैं। सो इस जगह भी भाग नाम हिस्सा का हैं। जैसे एक चीजके अनन्त-भाग वा हिस्से, एक चीजके असंख्यातभाग वा हिस्से, इसोरीतिसे एक चीजके सख्यात भाग वा हिस्से को क्रमशः अनंतभाग आदि कहते हैं। इनको वृद्धि वा हानीमें लगा लेना।

प्रश्न — सख्यात, असख्यात, अनन्त यह तीन शब्द जैनमतमें कहे हैं,

सो ठीक नहीं, किन्तु संख्यात, असंख्यात दो ही कहते तो ठीक होता, अथवा संख्यात और अनन्त ये दो कहते तो ठीक होता, क्योंकि संख्यात कहनेसे तो गिनती आई, और असंख्यात उसको कहते हैं कि जिसकी गिनती नहीं, अनन्त भी उसको ही कहते हैं कि जिसकी गणना न होय, इससे दो का ही कहना ठीक है, तीनका कहना ठीक नहीं।

उत्तरः—भो देवानुप्रिय ! अभी तेरे को सत्य उपदेशदाता गुरुका संग हुआ नहीं, केवल दुःखगर्भित और मोह-गर्भित वैराग्य-वालों का और अंग्रेजी आदिक विद्यावालों का तथा वर्तमान कालमें नवीन दयानंद-मत आर्य-समाजवालों का संग होने से ऐसी शंका होती है। सो शंका दूर करनेके वास्ते शास्त्रानुसार कहते हैं कि शास्त्रोंमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त इस अभिप्रायसे कहा गया है कि सख्यात तो उसको कहते हैं कि जैसे गणित विद्यावाले कहीं तो १६ अंकों तक की और कोई २१ की, कोई २६ तककी गणना कहते हैं और कोई ५२ हर्फ तककी और कोई ६६ अक्षर तककी गिनतीको गणित कहते हुए संख्या बांधते हैं सो यहांतक तो संख्यात हुआ। इसके ऊपर जो एक दो हर्फ भी होय तो असंख्यात हो गया। सो संख्यासे ऊपर अर्थात् लौकिक व्यवहार की गिनतीसे ऊपरवालेको असंख्यात कहा। इस तरह सख्यात और असख्यात हुआ। अनन्तका अभिप्राय ऐसा है कि केवलि भगवान् जिज्ञासुके समझानेके वास्ते कल्पना करके बतावें उनका नाम अनन्त हैं। अनन्तके भी जैनमत में ६ भेद हैं। उन ६ भेद में कई अनंतमें तो कल्पना करके वस्तु समझाई गई हैं, और कई भेद में ऐसा कहा गया है कि कोई वस्तु ही ऐसी नहीं है कि जो इस अनन्त को पूरा करे। इस रीतिसे शास्त्रकारोंने संख्यात, असख्यात और अनन्त ये तीन भेद कहे हैं। दूसरा एक समाधान और भी देता हूं, परन्तु इस समाधानमें मेरा आग्रह नहीं है। वह यह है कि संख्यात तो उसको कहना कि जो ऊपर लिखे हरफों तककी गणनामें आ सके, असंख्यात उसको कहना कि जो उससे उपर केवली आदिक कल्पित दृष्टान्त द्वारा जिज्ञासुओं को समझावे और अनन्त उसको कहना कि केवली

जाने तो सही, परन्तु वचनसे कह नहीं सके । इसरीतिसे भी वर्तमान कालके कुतर्कों का समाधान है । इसमें जो वीतराग सर्वज्ञके वचन से विरोध होय तो मैं समस्त संघके समक्ष अर्हंतादि छओंकी साक्षीमें मिथ्या दुष्कृत देता हूं । इस रीतिसे इस अगुरुलघुकी छः हानी और वृद्धि कही । सो सर्व द्रव्यमें समय २ हो रही है । हानी अर्थात् व्यय होना, वृद्धि अर्थात् ऊपजना । इसरीतिसे उत्पाद और व्यय तो गुण तथा पर्यायमें होता है, और ध्रुवपना द्रव्य में है । जैसे जीवमें जीवपना तो ध्रुव है और ज्ञान, दर्शन चारित्र, वीर्य आदिमें उत्पाद-व्यय हैं, तैसे ही ज्ञान में ज्ञानपना तो ध्रुव है और ज्ञानमें ज्ञेयपनेका तो उत्पाद-व्यय है । इस रीतिसे पुद्गल-परमाणुमें परमाणुपना तो ध्रुव है, और उसका जो गुण गन्ध, रस, वर्ण. स्पर्श इनमें उत्पाद-व्यय है, जैसे रूपमें रूपपना तो ध्रुव है और उसमें काला, पीला, नीला, लाल, सफेदमें उत्पाद-व्यय है । इसीरीति से सर्व वस्तुमें जानो, यह द्रव्य का सामान्य स्वभाव मन आनो, और विशेष स्वभावोंका अन्य शास्त्रोंमें कथन किया है वहांसे पहचानो । मेरी बुद्धि अनुसार मैंने सामान्य स्वभावका भेद कहा । इस रीति से किंचित् द्रव्यका स्वभाव, बुद्धि अनुसार छः सामान्य लक्षण करके कहा । इन छः द्रव्यों का ही शास्त्रमें बहुत विस्तार है । मैंने तो उनका किंचित् विचार लिखाया है, इस ग्रन्थके समाप्त करनेको मन आया है, अन्त मगल करनेको भी दिल चाया है, इस ग्रंथको प्रारम से समाप्ति तक बराबर नही लिखाया है, बीच २ में तीन अन्य ग्रन्थ भी समाप्त कराया है, उनमें इस ग्रन्थकी साक्षी भी दिवाया है, इस ग्रन्थका प्रारम्भ और समाप्तिमें अनुमान वर्ष डेढके बिलम्ब आया है; इस शका निवृत्त करने के वास्ते इतनी तुर्कोंका सम्बन्ध मिलाया है, इस ग्रन्थको देखकर जिज्ञासुओंका मन हुलसाया है, आत्मार्थियोंको द्रव्यानुयोगका किंचित् भेद बताया है ।

व्यक्ति-भाव गुण रहित चिदानन्द शक्ति-भाव में धाया है ।
चिरजीव यह ग्रन्थ सदा रह जामें आत्मरूप दिखाया है ।
भानु रूप प्रकाश इसीमें किंचित् द्रव्यानुयोग जतलाया है ।

गुरुकुल-वास शरण गहि प्यारे जो जैन धर्म तैं पाया है।
मानव भव नहीं वार२ है, चिदानन्द ने यह उपदेश सुनाया है।

दोहा।

सुमिरन करो श्री वीर का, शासनपति महाराज।
मनवांछित फल होत है, सफल होत सब काज ॥ १ ॥
श्री पार्श्व फलौधी ग्राममें, कीनो मैं चौमास।
पार्श्वनाथकी शरणमें, पूरण ग्रन्थ समास ॥ २ ॥
गछ कोटि शाखा वयर, उत्तम कुल चन्द्र बखान।
खरतर बिरुद धारक सदा, करते आतम ध्यान ॥ ३ ॥
कियो ग्रन्थ मन रंगसे, चिदानद आनंद।
रुचि सहित इसको पढे, मिले सदा सुख कन्द ॥ ४ ॥
युगल वाण निधि इन्दुमें (१९५२) संवत् विक्रम जान।
कातिक शुक्ला सप्तमी, गुरु वार पहचान ॥ ५ ॥
रुचि सहित इसको पढे, शुद्ध उपदेश होय मेल।
तब अनुभव इसका मिले, जिम दूध मिश्री होय मेल ॥ ६ ॥
द्रव्य अनुभव रत्नाकर, सदा रहो विस्तार।
रवि चन्द्र जबतक रहे, तब तक ग्रन्थ प्रचार ॥ ७ ॥
ग्रन्थ देख खल पुरुषको, ऊपजे द्वेष अपार।
चिदानन्द नहीं दोष कछु, उनके कर्मों की है मार ॥ ८ ॥
पक्षपात इसमें नहीं, अनुभव कियो प्रकाश।
करे मनन इस ग्रन्थका, सफल होय मन आश ॥ ९ ॥
चिदानन्दकी सीख यह, सुनियो चतुर सुजान।
वार वार इसको पढ़े, आतम मिले निधान ॥ १० ॥
चिदानंद निज मित्रको, प्रतिबोधन यह ग्रन्थ।
उपकारी सब संघमें, जिन वाणी निज पन्थ ॥ ११ ॥
व्यक्तिभाव गुण रहित हूं, शक्ति भाव निज कन्द।
गुरु कृपा से मैं भयो, चिदानद आनंद ॥ १२ ॥

जैन धर्मका दास हूं, संयम किंचित् लेश।
भाँड चेष्टा को करत हू, भरता पेट हमेश ॥ १३ ॥
जिन वाणी गंभीर है, आशय अति गंभीर।
अल्प बुद्धि मैं बाल हूं, सुनियो जिन आगम धीर ॥ १४ ॥
बुद्धि भ्रमसे जो कछु, जिन वाणी विपरीत।
मिथ्या दुष्कृत देत हूं, मन वच काय समीत ॥ १५ ॥

इति श्रीजैनधर्माचार्य महामुनि श्रीचिदानंदस्वामि विरचितः
श्रीद्रव्य-अनुभव-रत्नाकरनामा ग्रन्थः समाप्तः ॥

समाप्त।

श्रीमद्–अभयदेवसूरि-ग्रन्थमाला ।

तय्यार–पुस्तकें—

नम्बर	पुस्तकका नाम ।	मूल्य
१	नित्य-स्मरण-पाठमाला (द्वितीयावृत्ति)	अमूल्य
२	शुद्धदेव अनुभव विचार	,,
३	द्रव्यानुभव रत्नाकर	२॥)
४	जिनदर्शन-पूजन-सामायिक विधि प्रकाश	।≶)

छपती हैं—

१ राइय-देवसिय-प्रतिक्रमण सूत्र ।

२ अध्यात्म-अनुभव-योग प्रकाश ।

३ आगमसार का हिन्दी भाषान्तर ।

छपनेवाली—

१ खरतर गच्छ पञ्च प्रतिक्रमण सूत्र अर्थ-सहित ।

२ प्राचीन स्तोत्र रत्नमाला (इसमें प्राचीन विख्यात आचार्योंके बनाये हुए कई अद्भुत स्तोत्र-रत्नोंका समावेश हैं) ।

३ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण सूत्र ।

अन्य पुस्तकें—

१	स्याद्वादानुभव रत्नाकर ।	१॥)
२	पर्युषणा निर्णय ।	अमूल्य

मिलनेका पता—

१—श्रीमद्-अभयदेवसूरि-ग्रन्थमाला,
बड़ा उपाश्रय, बीकानेर (राजपूताना)

२—बाबू भैरवदानजी अमीचन्दजी,
३, मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता ।

३—आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल,
रोशन मोहल्ला, आगरा ।

छपता है ! छपता है !! छपता है !!!

प्राकृत भाषाका कोष ।

जिसकी वर्षों से जैन-समाज तथा प्राकृत-भाषाके प्रेमि-गण अति-उत्कठासे प्रतीक्षा कर रहे थे, वही प्राकृत-भाषाका सुंदर और महान् कोष, कई वर्षोंके लगातार भारी परिश्रम और द्रव्य-व्ययसे तय्यार होकर प्रेसमें जा रहा है ।

इस कोषमें जैन आगमों के अतिरिक्त प्रसिद्ध २ नाटकों एवं प्राकृत-भाषाके कई महाकाव्यों, जैसे द्व्याश्रय, गौडवध, सेतुबन्ध, सुरसुन्दरीचरित्र, सुपासनाहचरित्र वगैर. से, तथा उपदेश-पद आदि प्राकृत-साहित्य के अनेक दुर्लभ और महान् ग्रन्थोंसे भी शब्द लिये गये हैं ।

इस कोषकी रचना नवीन-पद्धति के अनुसार की गई है। अकारादि क्रमसे प्राकृत शब्दों का संस्कृत और हिन्दी में अर्थ सुचारु-रूपसे लिखा गया है, एव जो शब्द जहासे लिया गया है उस ग्रन्थ के नाम और स्थान का भी उल्लेख प्रत्येक शब्दमें किया गया है ।

इस महान् ग्रन्थको पूर्ण छपाकर प्रसिद्ध करनेमें बहुत द्रव्य की आवश्यकता है । प्रार्थना करने पर कई उदार महानुभावों ने कुछ २ सहायताके वचन भी दिये हैं, लेकिन अभी तक जो सहायता मिली है उससे कार्य चल नहीं सक्ता । इससे समग्र जैन बधुओ तथा प्राकृत के प्रेमि-जनों से सानुरोध प्रार्थना की जाती है कि वे इस पवित्र एवं समयोचित कार्यके लिये हमें द्रव्यकी सहायता करें, ताकि इसको पूर्णतया छपनेमें और प्रसिद्ध होनेमें व्यर्थ विलम्ब न हो ।

जो महाशय सहायता करने को चाहें वे सयहाता की रकम नीचे के पते पर भेज देनेकी कृपा करें। प्रकट होने तक जिन महाशयोंको तर्फ से सहायता मिलेगी, उनकी सेवामें दर रू० २५) में इस ग्रन्थकी एक २ कापी, ग्रन्थ छप जाने पर, तुरन्त भेजी जायगी।

और जिन महाशयोंकी अभीसे सहायता करने की सामर्थ्य या इच्छा न हो, किन्तु छपने पर इस ग्रन्थको मगाने की इच्छा हो, उनको चाहिये कि वे अभीसे ग्राहक-श्रेणीमें अपना नाम लिखाने के लिये हर एक कापीके लिए एडवासके तौर पर पाँच रूपये नीचेके पते पर भेज दें जिससे उन लोगोंको भी २५) में एक कापी दी जायगी। ग्रन्थ प्रसिद्ध होनेके बाद ग्राहक होनेवालों के लिये इस ग्रन्थकी कीमत ३५) पडेगी।

2043

पता——

बाबू भैरवदानजी अमीचन्दजी,

नं० २ मल्लिक स्ट्रीट कलकत्ता।